Abhinav Gaveshna

(Multi Disciplinary Quarterly International Peer Reviewed/Refreed Research Journal)

Our PATRON

Sri Manvendra Swaroop, En. Gaurvendra Swaroop

Secretary : Dayanand Shikshan Sansthan, Kanpur

Editor-in-Chief

Dr. Anshul Dubey

Head & Assist. Professor Dept. of Sanskrit

Tilak Degree College, Auraiya-206122

Editor

Dr. Pankaj Kumar Verma

Assist. Profesor-Military Studies

Dharm Samaj College, Aligarh-202002

Peer-Review Board

◆**Dr. Filip Rodriguez-e-Melo** (Principal) S.S. Ambiye Govt. College of Arts & Commerce, Virnoda, Pernem (Gova) ◆**Dr. M. G. Kalavadiya** (Principal) Smt. R. P. Bhalodiya Mahila Arts, Commerce & Science College, Upleta, Rajkot (Gujrat) ◆**Prof. K. R. Jain** (Principal) D. A-V. College, Dehradoon (U.K.) ◆**Dr. Shyla** (Principal) Kuriyakose Gregorios College, Pampady, Kottayam (Kerala State) ◆**Dr. Alok Agarwal** Chinmay Degree College, Ranipur, Haridwar (U.K.), ◆**Dr. Surajbhan Singh Senger** D. N. (P.G.) College, Fatehgarh, ◆**Dr. Amit Saxena** Khalsa Girls Degree College, Kanpur,◆ **Prof. Amar Srivastava** H. S. (P.G.) College, Kanpur ◆ **Dr. Archna Verma** D. G (P.G.) College, Kanpur◆ **Prof. Anju Choudhary** M. M. V., Kanpur, ◆ **Prof. Anil Kr. Mishra** D. B. S. College, Kanpur, ◆ **Prof. Manoj Jouhari** D.A-V. College, Kanpur, ◆ **Prof. Brajesh Kr.** Sri Varshney College, Aligarh, ◆ **Prof. Geeta Asthana** J.D.V.M., Kanpur, **Prof. Poonam Viz** K.V.M., Kanpur, ◆ **Dr. Srikrishan Patel** D.A-V. Trainining Centre, Kanpur, ◆**Prof. Mukesh Kr. Singh** Armapur (P.G.) College, Kanpur, ◆ **Prof. Ranju Kushwaha** Juhari Devi Girls (P.G.) College, Kanpur ◆ **Prof. Amit Srivastav** Pratap Bahadur Post Graduate College, Pratapgarh City, Pratapgarh, ◆ **Prof. Gitanjali Maurya** Kulbhaskar Ashram P.G. College, Prayagraj.

Editorial Board

Hindi-

Dr. Amrita Desai Dhinge S. S. Ambiye Govt. Arts, Science & Comm. College, Virnoda, Pernam (Goa)
Prof. Nirmala Kumari S.V. College, Aligarh
Dr. Rakhi Upadhyay D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)
Dr. Mane Anl Lakshman Sridatt College Arts, Commerce & Science, Hadgaon, Naded, (Ms)

English-

Prof. B. D. Pandey P.P.N. College, Kanpur
Dr. Nishi Singh M. M. V., Kanpur
Dr. Nivedita Tandan D.G.(P.G.) College, Kanpur
Dr. Poonam Dubey D.S.N. College, Unnao

Sanskrit-

Prof. Savita Bhatt D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)
Dr. Preeti Vadhwani D.G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Puja Srivastava M. M. V., Kanpur
Dr. Pradeep Dixit V.S.S.D. College, Kanpur

Education/Teacher Education-

Prof. Arvind Narain Mishra Uttarakhand Sanskrit University, Haridwar (Uttarakhand)
Dr. Alpna Rai J.D.G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Bindumati Dwivedi Sanskrit University, Haridwar (Uttarakhand)
Prof. Sudha Rajput S.V. College, Aligarh

Political Science-

Dr. Vijay Pratap Singh D. A. V. College, Kanpur
Dr. Preeti Singh D. B. S. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Archna Dixit J. D. Girls P.G. College, Kanpur
Prof. Sudha Rajput S.V. College, Aligarh

Sociology-

Dr. Smrit Purwar D.A.V. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Satyam Dwivedi D.A-V. (P.G.) College, Ddn
Prof. Krishna Agarwal S.V. College, Aligarh

Economics-

Prof. Suneet Awasthi D.A.V. College, Kanpur
Dr. Shiv Kumar Singh S.V. College, Aligarh
Dr. Alka Soori D.B.S. College, Dehradoon
Dr. Ranjeet Yadav D.B.S. College, Kanpur

Psychology-

Dr. Rashmi Rawat D. A. V. College, Dehradoon
Dr. Monika Sahai S.N.Sen (P.G.) College, Kanpur
Dr. Pratima Verma M. M. Vidyalaya, Kanpur

Math-

Dr. Anila Tripathi D. A. V. College, Kanpur
Dr. Anokhe Lal Pathak B.N.D. College, Kanpur
Dr. Shikha Gupta Chinmay College, Haridwar

History-

Dr. Chandani Saxena J.D.G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Archna Shukla M.K.P. College, Dehradoon
Prof. Pratibha Sharma S.V. College, Aligarh
Dr. Shalini Gangwar J. D. P. G. College, Kanpur

Drawing & Painting-

Dr. Vandana Sharma M. M. V., Kanpur
Dr. Sarika Bala A.ND.N.N.M. College, Kanpur
Dr. Saurabh Saxena B.J.G.P. (P.G.) College, Unnao

Physics-

Dr. A. K. Agnihotri B.N.D. College, Kanpur
Dr. Prakesh Dubey Janta Degree College, Bakewar
Dr. Manoj Kr. Verma S.V.(P.G.) College, Aligarh

Chemistry-

Dr. Archna Pandey B. N.D. College, Kanpur
Prof. Neerja Sharma S.V. College, Aligarh
Dr. (Smt.) Roli Agarwal S.V.(PG) College, Aligarh
Dr. Om Kumari K. K. College, Etawah

Zoology-

Dr. Harendra Gaur S.V. College, Aligarh
Dr. Ajai Kumar Chinmay College, Haridwar
Dr. Madhu Sahgal Jalta College, Ajitmal-Auraiya

Botany-

Dr. Vishal Saxena D. A. V. College, Kanpur
Dr. Manisha Ji Chinmay College, Haridwar
Dr. Santosh Bhatnagar A.N.D. College, Kanpur

Geography-

Dr. Anita Nigam D. B. S. College, Kanpur
Dr. Nandita Singh S.V. College, Aligarh
Dr. Anjana Srivastava D. G. College, Kanpur

Commerce-

Dr. Ravi Rastogi B. N.D. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Yogesh Shukla Janta (P.G.) College, Bakewar
Dr. Ajai Gupta D.S.N. (P.G.) College, Unnao
Dr. Amit Gupta D. A.V. (P.G.) College, Kanpur

Music-

Prof. Deepali Srivastava M. M. V., Kanpur
Dr. Mohini Shukla J.D.G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Kajal Sharma A. N. D. College, Kanpur
Dr. Gunjan Srivastava M. M. V., Kanpur

Home Science-

Dr. Ranju Kushwaha J.D.G.(P.G.) College, Kanpur
Dr. Alka Tripathi D. G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Richa Saxena Juhari Devi (PG) College, Knp.

B. Ed. -

Dr. Ankur Singh D. W. T. Centre, Kanpur
Dr. Pragya Srivastava M.M.V., Kanpur
Dr. Reeta Srivastava A. N. D. College, Kanpur

Law-

Prof. (Dr.) Ghanshyam Mishra M. A. H. Garhwal University, Pauri Garhwal (U.K.)
Dr. P. N. Trivedi V. S. S. D. College, Kanpur
Dr. (Smt.) Gunjan Agarwal S.V.(PG) Clge, Aligarh

Defence & Strategic Studies-

Prof. A. K. Singh P. P. N. College, Kanpur
Dr. Rama Bhatia D.A.V. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Vishal Srivastava D.A.V. (P.G.) College, Kanpur

Managing Editor & Publisher-
Sarveish Tiwari `Rajan'
World Bank Barra, Kanpur-208027

सभी संपादकीय दायित्व पूर्णतः अवैतनिक हैं।

नोट- प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक व प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है । समस्त वाद का क्षेत्र कानपुर होगा।

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं प्रबन्ध सम्पादक सर्वेश तिवारी `राजन'** द्वारा **पूजा प्रिन्टर्स** हमीरपुर रोड, नौबस्ता, कानपुर-208022 से मुद्रित एवं **सुपर प्रकाशन** के-444 `शिवराम कृपा', विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 से प्रकाशित। सम्पादक- डॉ. पंकज कुमार वर्मा मोबा.– **9335715562 **सम्पर्क**- मो.- 08896244776,

E-mail: super.prakashan@gmail.com, Website : www.abhinavgaveshana.com

ISSN : 2394-4366

सम्पादक की कलम से ......

प्रिय पाठकों,

उच्च शिक्षा और अनुसंधान का वर्तमान परिदृश्य तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। वैश्विक स्तर पर विकसित हो रही नई प्रौद्योगिकियाँ, बदलती सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ, पर्यावरणीय चुनौतियाँ, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल परिवर्तन तथा सतत विकास के लक्ष्य यह संकेत देते हैं कि आज की समस्याओं का समाधान किसी एक विषय की पारंपरिक सीमाओं में संभव नहीं है। ऐसे समय में शोध का स्वरूप भी निरन्तर परिवर्तित हो रहा है, जहाँ ज्ञान का वास्तविक विकास विभिन्न विषयों के बीच सार्थक संवाद, सहयोग और समन्वय के माध्यम से संभव हो रहा है। इसी व्यापक दृष्टि के साथ अभिनव गवेषणा शोध पत्रिका का यह अंक अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण शैक्षणिक दायित्व का भी अनुभव हो रहा है।

हमारा विश्वास है कि शोध केवल उपाधि प्राप्त करने अथवा प्रकाशनों की संख्या बढ़ाने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह ज्ञान के विस्तार, समाज की आवश्यकताओं की पहचान तथा मानवीय जीवन की गुणवत्ता में सुधार का सशक्त उपकरण है। प्रत्येक गंभीर शोध एक प्रश्न से प्रारम्भ होता है और समाजोपयोगी उत्तर की दिशा में आगे बढ़ता है। इसलिए शोध का उद्देश्य केवल नवीन जानकारी प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि ऐसी वैचारिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि विकसित करना भी है जो नीति–निर्माण, शिक्षण, प्रौद्योगिकी, प्रशासन और सामाजिक विकास में सार्थक योगदान दे सके।

इक्कीसवीं शताब्दी का अनुसंधान स्वभावतः अंतःविषयक (Interdisciplinary), बहुविषयक (Multidisciplinary) तथा अंतरविषयक सहयोग (Transdisciplinary Collaboration) की ओर अग्रसर है। आज पर्यावरण अध्ययन में भूगोल, जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र और लोकनीति का समन्वय आवश्यक हैय राष्ट्रीय सुरक्षा के अध्ययन में रक्षा अध्ययन, अंतरराष्ट्रीय संबंध, साइबर प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का समावेश अपरिहार्य हो चुका है। वहीं शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, संस्कृति और शासन से जुड़े अधिकांश प्रश्न भी बहुआयामी दृष्टिकोण की अपेक्षा करते हैं। ऐसे में अंतःविषयक शोध केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

'अभिनव गवेषणा' शोध पत्रिका ऐसे शोध कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो विषयगत सीमाओं से आगे बढ़कर नए अनुसंधान क्षेत्रों का अन्वेषण करें। हम विशेष रूप से उन अध्ययनों का स्वागत करते हैं जिनमें भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और डेटा विज्ञान, मानविकी और डिजिटल प्रौद्योगिकी, नीति अध्ययन और नवाचार अथवा स्थानीय अनुभवों और वैश्विक विमर्श के बीच रचनात्मक संवाद स्थापित किया गया हो। हमारा उद्देश्य ऐसा बौद्धिक मंच विकसित करना है जहाँ विविध विषयों के विद्वान अपने अनुभव, पद्धतियाँ और दृष्टिकोण साझा करते हुए नए ज्ञान का सृजन कर सकें। नवाचार केवल नई तकनीकों के विकास तक सीमित नहीं है, यह नए शोध

ISSN : 2394-4366

प्रश्नों की पहचान, नवीन शोध पद्धतियों के उपयोग, वैकल्पिक विश्लेषण, स्थानीय समस्याओं के व्यवहारिक समाधान तथा नीति–उन्मुख ज्ञान के सृजन में भी निहित है। शोध तब अधिक सार्थक बनता है जब वह समाज, उद्योग, शासन और समुदाय के बीच सेतु का कार्य करे तथा उसके निष्कर्ष वास्तविक जीवन की चुनौतियों के समाधान में उपयोगी सिद्ध हों। साथ ही, गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान का आधार वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बौद्धिक ईमानदारी और शोध नैतिकता है। मौलिकता, प्रमाणिक स्रोतों का समुचित उपयोग, साक्ष्य–आधारित विश्लेषण, पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व प्रत्येक शोधकर्ता के मूल मूल्य होने चाहिए। इसी भावना के अनुरूप पत्रिका की सम्पादकीय एवं समीक्षात्मक प्रक्रिया निष्पक्षता, गुणवत्ता और शैक्षणिक उत्कृष्टता के मानकों पर आधारित है, ताकि प्रकाशित प्रत्येक शोध–पत्र अकादमिक समुदाय के लिए विश्वसनीय और उपयोगी संदर्भ बन सके।

इस अंक में प्रकाशित शोध–पत्र समकालीन विमर्श के विविध आयामों को स्पर्श करते हुए नए शोध क्षेत्रों की संभावनाओं को रेखांकित करते हैं। हमें विश्वास है कि ये अध्ययन न केवल विषय–विशेष के विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, बल्कि युवा शोधार्थियों को भी अंतःविषयक अनुसंधान, नवाचार तथा उत्तरदायी ज्ञान–सृजन की दिशा में प्रेरित करेंगे। ज्ञान की प्रगति तभी संभव है जब जिज्ञासा को स्वतंत्रता मिले, विचारों को संवाद का अवसर मिले और अनुसंधान समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से जुड़ा रहे।

अन्त में मैं इस अंक के सभी लेखकों, समीक्षकों, सम्पादकीय मंडल के सदस्यों तथा हमारे सम्मानित पाठकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आपका विश्वास और सहयोग ही इस पत्रिका की सबसे बड़ी शक्ति है। आशा है कि अभिनव गवेषणा शोध पत्रिका भविष्य में भी उत्कृष्ट, नवाचारी, अंतःविषयक तथा समाजोन्मुख अनुसंधान को प्रोत्साहित करते हुए भारतीय उच्च शिक्षा एवं वैश्विक अकादमिक जगत में सार्थक योगदान देती रहेगी।

डॉ. पंकज कुमार वर्मा
सम्पादक – 'अभिनव गवेषणा'
(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)
एवं
असिस्टेन्ट प्रोफेसर – सैन्य अध्ययन विभाग,
डी. एस. महाविद्यालय, अलीगढ़–202002 (उ.प्र.)

Index

Editorial Board -
Dr. Anshul Dubey - Chief Editor- Abhinav Gaveshna (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & Associate Professor & Head, Dept. of Sanskrit, Tilak Digree College, Auraiya-206122 (U.P.)
&
Dr. Pankaj Kumar Verma : Editor - Abhinav Gaveshna (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed / Peer Reviewed Research Journal) & Assist. Prfessor Department of Militery Studies, D. S. College, Aligarh-202002 (U.P.)

1-	**Role of AI (Artificial Intelligence) in E-Commerce and Digital Marketing**	- Miss Shweta Prakashrao Shinde	**07**
2-	**Digital Banking and Financial Inclusion**	- Miss Vaishnavi Shankarrao Ghodekar	**11**
3-	**Contribution of the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor to India's Defence Self-Reliance : An assessment of Atmanirbhar Bharat Initiative's**	- Mudit Chaturvedi - Dr. Ajay Kumar Sinha	**15**
4-	**A Cotmparative Effect of Yogic Practices and walking on total Cholesterol of old aged people**	- Sanjana Srivastava - Prof. Alka Nayak	**20**
5-	**Technology Adoption in Small Business Management**	- Vaibhav Kumar Dwivedi - Dr. Pradeep Kumar Singhal	**23**
6-	**Promoting Student Well-Being Through Academic Learning, Positive Social Behaviour, and Healthy Lifestyle Practices**	- Shyam Sundar Patnayak - Dr. Swati Pandey	**26**
7-	**Glimpses of Vaishnavism in the Vedic Literature**	- Dr Meera Tripathi - Dr. Poonam Shukla	**35**
8-	**Samiti Beyond the Monastery**	- Jain Mitali Arvind - Dr. Dinanath Sharma	**38**
9-	**Carys Davies : A Writer of Human Emotions**	- Ishwar Chandra Vidyasagar Agnihotri	**46**
10-	**The Impact of Active vs Passive Social Media Use in Emotional Regulations Among Indian Youth : A Qualitative Study**	- Prof. Neeta Mishra - Prof. Pratibha Srivastava	**52**
11-	**Characterization and Analysis of CNSL-Based Polymer Composites Physicochemical, Thermal, Structural, Morphological and Electrical Characterization of the Prepared Polymer Composites**	- Smt. Rekha Shukla - Dr. Akhand Pratap Singh	**59**

12-	गीतांजलिश्री के 'माई' उपन्यास में चित्रित नारी चेतना	– वैशाली आण्णासाहेब आढाव	67
13-	शहरी एवं ग्रामीण युवतियों की शिक्षा एवं नौकरी में सामाजिक असमानता का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	– श्रेया श्रीवास्तव – डॉ. रुपाली शर्मा	72
14-	वसुधैव कुटुम्बकम : वैश्विक शांति और भारत का नेतृत्व	– डॉ. दिनेश कुमार रावत – श्री मोहन सिंह धनगर	79
15-	डिजिटल मीडिया और सामाजिक परिवर्तन : ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रभाव – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	– रिषभ कुमार – डॉ. वीरेन्द्र यादव	89
16-	भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में : मिथिला के लोक चित्र	– डॉ. ईश्वर चन्द गुप्ता	97
17-	गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	– डॉ. नम्रता तिवारी	103
18-	रुद्रयामल तन्त्र एवं आधुनिक न्यूरो–फिजियोलॉजी के परिप्रेक्ष्य में त्रिनाड़ी स्वर विज्ञान, कोशिकीय चक्रानुक्रम एवं सूक्ष्म शरीर (Astral Body) : एक तुलनात्मक एवं प्रयोगात्मक अनुशीलन	– मनोज कुमार मिश्रा – डॉ. हितेश कुमार सिंह	107
19-	संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में महिला कलाकारों की भूमिका Role of Women Artists in Various Fieldsof Music	– डॉ. सुमन लता	111
20-	झुन्झुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं की जनसहभागिता एवं लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व : एक राजनीतिक अध्ययन	– प्रवीण चौधरी	115
21-	रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन : भारत की विदेश नीति के विशेष संदर्भ में	– राहुल कुमार झाझड़िया	121
22-	मन एवं मानसिक स्वास्थ्य	– डॉ. राजीव प्रताप सिंह	127
23-	बैंकिंग व वित्तीय सेवाओं में इन्टरनेट के प्रयोग से बदलता ग्रामीण परिवेश	– डॉ. राकेश कुमार	134
24-	21वीं सदी में भारत–अमेरिका रक्षा एवं सामरिक सम्बन्ध	– डॉ. अनिल कुमार सिंह	137
25-	भारत विजयनाटकम् का समीक्षात्मक विश्लेषण	– सुनीत – डॉ. अंशुल दुबे	144
26-	बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली : एक समीक्षात्मक अध्ययन	– सरोजिनी बघेल – डॉ. मनोज कुमार सिंह	149
27-	महाकवि कालिदास प्रणीत 'रघुवंशमहाकाव्यम्' में निहित मानवीय मूल्यों का समीक्षात्मक अध्ययन	– ज्योति – प्रो. (डॉ.) सुनन्दा त्रिवेदी	158

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 10 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Role of AI (Artificial Intelligence) in E-Commerce and Digital Marketing

- Miss Shweta Prakashrao Shinde
Assistant Professor-
Department of Commerce,
Shri Datta Arts, Commerce and Science College, Hadgaon - 431712, Naded (Ms)

E-mail – shindesweta098@gmail.com

Abstract

Artificial intelligence has emerged as a transformative force in modern business, particularly in e-commerce and digital marketing.The use of AI in e-commerce helps merchants to Improve behavior and reduce risk AI is used as the most advanced technology in e-commerce. By leveraging machine learning, natural language processing and predictive analytics, organisations can enhance customer experience, strategies, decision making,personalisation, automation and predictive analytics. This paper explores the role of AI technologies in enhancing customer experience, optimize operations, and improving decision making effectiveness. It also explores challenges, benefits and future implications of AI adoption. It highlighting its role in future global marketing and customer relationship operations.

Introduction -

Digital marketing and e-commerce have grown rapidly with the expansion of internet usage and online platforms. E-commerce is the buying and selling of goods and services over the internet. Digital marketing is the act of promoting products, services, and brands through digital channels to reach target audiences build relationships and increase sales. AI refers to the simulation of human intelligence in machines that can learn, reason and make decisions. AI is becoming a critical tool for businesses in the digital era. This paper explores how AI is reshaping E-Commerce and digital marketing landscapes.

Role of AI in E-Commerce -

(1) Personalized Recommendations - This makes it easier to search for online shopping by studying their preferences and recommending the right products to them, thus increasing the sales of the merchants while also getting the products of their choice to the customers.

Example. Amazon gives the option for customer " Recommended for you"

(2) Chatbots and customer Service - AI provides

24×7customer service, allowing customers to shop anytime and purchase items of their choice convenientiy.

(3) Demand forecasting - This makes it possible to estimate the future demand of the product and thus makes it easier for the businesses to supply the product in the right quantity at the right time.

(4) Dynamic pricing - Dynamic pricing is a strategy where AI adjusts prices based on market competition, demand and price changes with time so dynamic pricing helps traders to set the market prices correctly.

(5) Fraud Detection - The use of AI helps identify suspicious transactions in online transactions and avoid them thereby providing security to customers while doing online transactions and increasing the confidence of customers in online transactions

(6) Visual Search - Customers can find the product they want by uploading a photo, making it very easy and convenient for the customer to find the product online, thus making it easier for the customer to purchase the product and also save the time required to search for the product.

(7) Logistics and Delivery Optimization- AI helps customers to get their goods to the right place by using the right route to reach the customers and reduce delivery times.

(8) Search and Voice Shopping - By using it, customers get the option to do whatever they want and vice-based purchasing of goods and services.

Role of AI in Digital Marketing -

(1) In-depth study of customers - AI processes large amounts of data to provide marketers with detailed customer insights that help them understand customer preferences, behavior and purchasing patterns.

(2) Personalized Marketing - In today's digital age, personalized marketing provides customers with a better experience. Personalized marketing allows companies to connect with their customers more effectively.

By using new technology, it has become possible to expand the scope of personalized marketing.

(3) Chatbots and Customer Support - Nowadays, many companies are using AI chatbots for their customer service. Chatbots provide 24/7 information to customers.AI-based services improve customer experience and reduce costs.

(4) Content creation and Automation - Content creation and automation using AI technology greatly benefits businesses. This automation saves time and allows for more effective communication with customers. Using AI enhances the quality of content, social media posts and emails.

(5) Ad Optimization - Ad optimization makes marketing campaigns more effective.AI analyzes digital ad results and shows the best ads.For example, Google Ads helps with ad optimization. This reduce costs and increase customer reach using ad optimization technology.

Key challenges for AI -

(1) Data privacy - It uses a large amount of customers personal data so that the customer's information can be used without their permission and the potential for misuse of that information is high.

(2)Data Security - Data security has become an important topic in today's digital age.Cyber-attacks can pose a threat to customer's confidential information, making data security measures essential.

(3) Algorithmic Bias - AIoutputs depend on the data used for training, so the information contained in it may not be correct, AI can also make biased decisions using that information, so there is a possibility of doing injustice to a person.

(4) High Cost - The technology seems to be developing a lot and the cost of developing it is also very high so it is not affordable for a small business.

(5) Technical Complications - These

technologies are very difficult to understand and also difficult to manage.

(6) Impact on Human Employment - A new shift in this is reducing human employment as business becomes more competitive and demand for AI expertsincreases.

(7) Lack of Transparency - Not all decisions made by AI are accurate and many times wrong decisions are also taken, thus reducing the user's trust in AI.

Ethical Considerations-

(1) Respect for rivacy - It is important to keep the customer's information safe in AI and to ensure that their information is not misused.

(2) Transparency - It is important to inform consumers about how AI is using their information.

(**3) Responsibility -** Consumers need to know who is responsible for the decisions made by AI systems.

(4) Fairness - All consumers who use AI must be given the same information and no one should be discriminated against.

(5) Customer Consent - The customer information contained in it should not be used anywhere without their consent and the data should not be used without customer consent.

(6) Human Control - Humans should maintain control over AI systems than being completely dependent on it.

(7) Avoidance of Misuse - Responsibility must be taken to ensure that AI is not used for any wrong purpose.

Advantages in e-commerce and digital marketing -

(1) Customer Satisfaction Increases - In e-commerce, AI personalizes the customer experience, making shopping easier and more enjoyable. In digital marketing, AI helps create precise advertising campaigns by analyzing data, which increases return on investment.AI-based chatbots provide 24/7 customer service, ensuring quick answers to customer queries and enhancing their satisfaction.

(2) Business Efficiency - AI increases business efficiency and makes work easier. Due to technological advancements, business efficiency is increasing. These changes improve the overall efficiency of the business.

(3) Marketing Becomes More Effective - Marketing becomes more effective with AI, making it easier to attract customers. Due to AI's data collection capabilities, customers can receive products and services tailored to their preferences. Businesses can accurately meet customer needs using AI, leading to increased sales.

(4) Saves Time and Cost - The use of AI provides businesses with necessary information in moments, which not only saves their time but also reduces additional expenses. Effective planning saves time and money. UsingAI saves time and reduces operational costs.

(5) Easy to Manage Business - Business management has become easier due to Artificial Intelligence (AI).With the use of AI, businesses get necessary information instantly, which makes decision-making easier. In today's era, AI technology is revolutionizing business management.

Limitations of AI in e-commerce and digital marketing -

(1) High Cost - High cost often proves to be a major hurdle in adopting new technology. High costs are not affordable for small businesses. It is important to consider the high cost when using new technology.

(2) Data Privacy Risk - Ensuring data privacy in AI systems is a significant challenge. Strict privacy policies are necessary to protect customer information.The risk of data misuse is increasing due to the use of AI.

(3) Technical Difficulties - Technical difficulties may disrupt operations. Technical difficulties may arise when installing new software.Service was interrupted in the telecommunications department due to technical

ISSN : 2394-4366

difficulties.

(4) Impact on Human Employment - The increased use of AI technology shows a negative impact on human employment.E-commerce impacts traditional businesses, leading to changes in employment opportunities. The growth of digital marketing has created new job opportunities, but has also affected some sectors.

Conclusion-

The research shows that AI is a highly effective technology in e-commerce and digital marketing. Its use makes it easier for merchants to interact directly with customers. The customer experience becomes more personalized and effective. It plays an important role in attracting customers.

However, the use of AI poses serious challenges such as data privacy, data security, algorithmic bias, high costs, technical complexity, and lack of transparency.

This is why the use of AI needs to focus on its ethical side along with its technological advancements. A balanced and fair trade of AI with proper policy regulation and human oversight can bring long-term benefits to business and society.

References

1. Davenport, T. H.,and Ronanki,R.(2018). Artificial Intelligence for the real world . Harvard Business Review.
2. Chaffey, D. (2022). Digital Marketing strategy, Implementation and Practice. Pearson Education.
3. Kotler, P., Kartajaya, H., and Setiawan, I. (2021) Marketing 5.0Technology for Humanity. Wiley.

ISSN : 2394-4366

Received: 12 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Digital Banking and Financial Inclusion

- Miss Vaishnavi Shankarrao Ghodekar
Assistant Professor-
Department of Commerce,
Shri Datta Arts, Commerce and Science College, Hadgaon - 431712, Naded (Ms)

E-mail – vaishnavighodekar347@gmail.com

Abstract

Digital banking is such a facility through which customers receive banking services via the internet. Due to the availability of facilities like e-banking, mobile banking, ATM, and UPI, it has become very easy for customers to carry out financial transactions. Because of digital banking, customers are able to complete any financial transaction anywhere and at any time. Financial inclusion means that every individual in society should benefit from banking services. Efforts are still being made to achieve this, as there are still some people in rural areas who are far from digital banking. The aim is to provide such people with the benefits of banking and financial services. This includes savings accounts, loans, insurance, pensions, and digital payments. Due to internet banking, efficiency in transactions has increased significantly, and considerable savings in time and cost are also being observed. People in rural areas are also increasingly conducting transactions using their mobile phones without visiting banks. Due to various government schemes such as Jan Dhan Yojana and Digital India, the expansion of financial services has increased significantly. Due to e-banking transactions, transparency is now visible in transactions on a large scale. Because digital banking transactions do not take place through cash, it greatly helps in controlling black money. Also, since government subsidies are directly deposited into the beneficiaries accounts, the need for intermediaries has decreased, which has helped to curb corruption to a large extent. Furthermore, due to UPI and digital payments, even small transactions have become easy to carry out. This research studies in detail the impact of digital banking on financial inclusion in India, the opportunities within it, and future directions.

Introduction -

In today's era, due to the large-scale development in information and communication technology, significant changes have also occurred in the banking sector. In paper-based transactions, customers had to personally visit the bank to carry out transactions, which required a considerable amount of time. However, now that banking transactions have taken an online

form, customers can conduct their transactions from anywhere with the help of the internet and mobile, without visiting the bank.Internet banking services have become available 24 hours. Also, due to internet banking, financial transactions have become easier, faster, and more reliable. Digital banking includes services such as internet banking, mobile banking, automated teller machines, unified payment interface, and digital wallets. Due to various policies of the Reserve Bank of India and the Government of India, the promotion of banking is taking place on a large scale. Under the Digital India campaign, the Government of India has encouraged digital transactions on a large scale. As a result, today even people in remote areas are using digital banking services. The concept of financial inclusion is trying to reach banking services to every section of society. Especially poor rural women and remote groups are being included in banking services. In the past, services were mostly limited to urban areas, but due to digital banking, they have now reached remote areas as well. Therefore, due to digital banking, transactions have become easy and fast, and financial inclusion has gained momentum. This research will study the role, benefits, and challenges of digital banking.

Statement of the Problem -

Although digital banking is widely used in India, there are still many difficulties, and due to these difficulties a large number of people ignore banking services.

The main problems are as follows-

(1) In remote areas, even today there is a lack of internet facilities.

(2) Elderly and illiterate people face many difficulties while using technology.

(3) Sometimes, due to improper internet functioning, technical issues arise in work.

(4) Due to expensive digital devices, some people are unable to use them.

(5) Due to complicated processes in banking apps, it feels difficult to use them.

(6) In digital transactions, there is sometimes a possibility of incorrect information being recorded.

(7)While doing online transactions, people fear whether their information will remain secure or not.

(8) In digital payments, extra charges are taken or restrictions are seen while sending money.

(9) In remote areas, banking repres-entatives are available in very small numbers.

(10) If customers are financially cheated, it takes a lot of time to resolve their frauds.

Importance of study -

(1) To study in order to understand the current situation of e-banking.

(2) To identify the problems in financial inclusion and make efforts to resolve them.

(3) To study the mindset of customers.

(4) To identify the differences between remote and urban areas and make efforts to remove the difficulties in remote areas.

(5) To find out the level of digital literacy and make efforts to increase it.

Objective-

The objective of this research is to study in detail the relationship between digital banking and financial inclusion. For that, the following objectives have been presented.

(1) To understand the concept and working method of digital banking-

To study in detail what e-banking means, what its types are such as mobile banking, internet banking, UPI and what their functions are. To understand what are the benefits of e-banking and what limitations it has compared to the traditional banking system.

(2) To practically analyze e-banking in financial inclusion-

To study how e-banking helps to include the elements of society who are away from the banking system, such as poor women or people in rural areas, in banking services. In this, to examine the impact of systems such as Jan DhanYojana,

DBT and UPI.

(3) To identify the differences in the use of digital banking in rural and urban areas-

To comparatively study how much e-banking is used in rural and urban areas, and what problems users face while using this banking and what facilities they get. For example, to examine the impact of internet, smartphone and digital literacy.

(4) To identify the factors affecting the adoption of the e-banking system-

To find out why people adopt e-banking or why they avoid it. For example, if looked at, what is the level of education, what is the available technical knowledge, or because of security factors, people adopt e-banking. For example, those who have education, their income is good, they can buy mobile, or they have information about technology and they have trust in the e-banking system; such individuals consider this system appropriate. But people who do not have information about e-banking, or who do not have proper knowledge about that technology, and their income is also not enough that they can purchase electronic things, or they do not have trust in the e-banking system, such people avoid accepting this system.

(5) To identify the obstacles and risks in e-banking-

The main objective is to identify the obstacles and risks in e-banking. In this, technical difficulties and internet problems are studied by conducting cyber-based research. Due to the lack of digital literacy, many people are away from e-banking. Examining their shortcomings, trying to remove them, and building trust among them about the e-banking system is the final goal of this objective.

(6) To analyze government policies and initiatives-

The objective of this goal is to examine how useful the government's e-banking and financial inclusion-related schemes are. Through this policy, to identify the areas where e-banking services have reached to some extent and the areas where they have not reached, and to try to remove them.

Limitations-

(1) Insufficient Sample - Due to the inclusion of a small number of respondents in this study, it is not possible to accurately represent the entire population.

(2) Accuracy of Information - The information provided by respondents may not always be completely accurate; sometimes it may be incorrect.

(3) Technological Changes - As changes occur frequently in the banking sector, the information in the study may change in the future.

(4) Time Constraint - Due to limited time, it was not possible to collect extensive information.

(5) Geographical Limitation - Since the study was conducted only in selected areas, the conclusions may not be applicable to all states or the entire country.

Research Methodology-

In this research, a scientific and systematic method has been adopted to understand the impact of e-banking on financial inclusion. To ensure the accuracy of the research, both primary and secondary data have been used.

Type of Research-

In this study, both descriptive and analytical types of research have been used. A detailed study has been conducted on the advantages, problems, and the impact of e-banking on financial inclusion.

Sources of Data-

Primary Data - Primary data has been collected by directly asking questions to customers. In some places, data has also been collected through observation.

Secondary Sources - Secondary data has been obtained from various official reports, research papers, banking-related publications, and

bank websites.

Sampling Method-

In this study, a convenience sampling method has been used. While selecting the sample, people from rural and urban areas have been included. A total of 100 individuals have been included.

Sample Size-

In this study, responses from 100 individuals have been collected. This sample includes individuals using e-banking from different age groups, educational levels, and economic backgrounds.

Data Collection Tools-

For collecting data, questionnaire and observation methods have been used.

Research Area-

This study includes both urban and rural areas, and examines the impact of e-banking on financial inclusion.

Research Period-

The research has been completed within a limited time period, and conclusions have been drawn based on the data collected during that time.

From the above information, it is concluded that out of 100% people, 80% use e-banking methods, while 20% still use traditional banking methods. It is observed that people in urban areas use e-banking in large numbers, whereas compared to urban areas, people in rural areas still use e-banking to a lesser extent.

Conclusion-

From the above research, it is seen that e-banking has significantly accelerated the process of financial inclusion in India. Due to digital tools such as internet banking, mobile banking, ATM, and UPI, financial transactions have become easier, faster, and more transparent. E-banking has made an important contribution in delivering banking services even to remote and economically weaker sections. Through various government initiatives such as Jan DhanYojana, DBT, and Digital India, beneficiaries have started receiving direct financial assistance in their bank accounts, thereby reducing their dependence on intermediaries. As a result, transparency and trust among beneficiaries have increased. However, due to factors such as lack of digital literacy, absence of proper internet facilities, cybersecurity issues, and technical difficulties, the process of financial inclusion has not yet reached the desired level everywhere. Therefore, for the effective functioning of e-banking, it is necessary to improve awareness, security, and basic infrastructure.

Summary-

In banking, banking services are made easily available and simple through technology. For example, by using mobile banking, UPI, internet banking, digital payment, we can make our transactions quickly. In financial inclusion, through e-banking, financial services reach all sections. If seen, because of Jan DhanYojana, Aadhaar link, direct benefit transfer, trust about e-banking is being created among people.

Reference

1. Reserve Bank of India (2024) Report on Trend & progress of Ranking in India (2023-2024) HUS: RBI publication.
2. Reserve Bank of India (2023) Annual Report 2022, 23 Mumbai RBI.
3. National payments corporation of India (2024) - National Annual Report 2828-24 HAS NP C7.
4. Government of India (2024) Digital payment Ecosystem Report New Dehli ministry of Finance.
5. Department of financial Services (2024) Annual Report 2023-24.
6. World Bank (2023) financial Inclusion & Digital Bank Report – D.C Washington.

ISSN : 2394-4366

Received: 14 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Contribution of the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor to India's Defence Self-Reliance : An assessment of Atmanirbhar Bharat Initiative's

- Mudit Chaturvedi
Research Scholar
Department of Defence Studies, University of Lucknow, Lucknow-226007 (U.P.)

E-mail: chatmudit1995@gmail.com

Research Supervisor-
- Dr. Ajay Kumar Sinha
Assistant Profesor-
Department of Defence Studies, Baiswara (P.G.) College, Lalganj, Raebareli - 229206 (U.P.)

Affiliated with the University of Lucknow-226007 (U.P.)

Abstract

This conceptual review analyses the role of Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor (UPDIC) in India's defence self-reliance efforts under the Atmanirbhar Bharat initiative. It explores the workings of the corridor in enhancing the native defence manufacturing capability through infrastructure establishment, investment facilitation, partnerships among public and private sector, and contribution of MSMEs, research institutions, and defence public sector units. The review discusses some of the notable achievements like commitments of investments exceeding ?8,000 crore, doing strategic projects such as BrahMos Aerospace and Bharat Dynamics Limited, and implementing favourable policies that have helped in the creation of UPDIC. It covers some of the challenges of the initiative related to dependence on technology and delay in implementation, as well as R & D capacity.

Keywords - ***Atmanirbhar Bharat, Defence Self-Reliance, Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor, Defence Industrial Policy.***

Introduction-

India's quest for defence self-sufficiency was given enormous momentum by the Atmanirbhar Bharat programme to enhance local production, technology creation, and strategic independence. Historically, India's defence industry has been characterized by dependence on foreign weapons, making India one of the world's biggest arms importers (Singh, 2023). This dependence on imports gave rise to enormous financial costs but also left India vulnerable to supply chain disruptions and geopolitical upheavals. To mitigate these issues, the Indian Government launched a series of reforms under the Make in India and Atmanirbhar Bharat programmes based on domestic production, private sector participation, foreign investments, and

research-based developments (Ministry of Defence, 2021).

In this context, we see how the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor (UPDIC) was announced in 2018, as a strategic move for building a progressive defence production ecosystem. It is a multi-city project covering six different cities- **Aligarh**, **Agra**, **Jhansi**, **Chitrakoot**, **Kanpur**, and **Lucknow**- which brings together defence public sector units (DPSUs), private industries, MSMEs, research institutions, and start-ups for supporting indigenisation and job creation (Nayyar &Sigchi, 2022). By enhancing the industrial infrastructure, creating enabling environment for investments, and driving technology development, the corridor directly promotes India's aim of reducing dependence on imports while also ensuring preparedness in defence.This conceptual review carries out an effective assessment of how UPDIC helps India with its vision of self-reliance in defence sector.

Conceptual Background : *Atmanirbhar Bharat*, Defence Self-Reliance-

The idea of Atmanirbhar Bharat (Self-Reliant India) was introduced by the Indian government in May 2020 as a complete framework to strengthen local capacities, decrease dependence on other countries, and improve its resilience. The field of defence manufacturing is of greatest importance in this strategy since military preparedness and technological superiority are essential for national sovereignty and security (Singh, 2023). Defence self-reliance refers to a technical capability of the state that involves using local resources for the design, development, production, maintenance, and export of defence products with the least dependence on global vendors (Ministry of Defence, 2021).

The Make in India initiative, implemented in 2014, is aligned with the Atmanirbhar Bharat initiative by stimulating domestic production, technology transfer, foreign direct investment (FDI), and private sector involvement in defence industry. Some of the measures which have strengthened India's defence production ecosystem considerably are increasing the limit of FDI up to 74% under the automatic route, establishing the lists for positive indigenisation, implementation of defence innovations through the Technology Development Fund (TDF), and allocation of a specific part of the defence procurement budget to domestic units. The programs mentioned above have served the purpose of reducing import dependency and ensuring the global competitiveness of the country's defence industrial capacity. In this regard, the defence corridors have become one of the most important institutional instruments in transforming Atmanirbhar Bharat vision into the practical outcomes in terms of industry and strategy (Nayyar &Sigchi, 2022).

Contribution of Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor to India's Defence Self - Reliance-

India has launched numerous institutional efforts to establish defence self-sufficiency. One of such initiatives is the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor (UPDIC). The UPDIC was inaugurated in 2018, and the corridor connects six important locations such as **Aligarh**, **Agra, Jhansi**, **Kanpur**, **Lucknow**, and **Chitrakoot** to develop an integrated defence manufacturing interface. The corridor takes advantages of Uttar Pradesh's strong infrastructure, including Eastern Dedicated Freight Corridor and extensive railway and highway network, as well as national and international airports, which allows for the reduction of logistics costs (Nayyar &Sigchi, 2022).

The corridor has significantly boosted India's local defense manufacturing capabilities by drawing in financing from Defence Public Sector Undertaking's (DPSUs), independent businesses,

ISSN : 2394-4366

Table-1

Investment Commitments under the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor

S. No.	Defence Node	Land Procured (ha)	Investment Promised (? Crore)
1.	Jhansi	1,034.6	4,253.30
2.	Chitrakoot	101.7	—
3.	Kanpur	184.5	477.58
4.	Aligarh	83.4	2,037.75
5.	Lucknow	141.9	1,094.00
6.	Agra	—	200.00
	Total	**1,546.1**	**8,061.63**

Source: Nayyar, M., &Sigchi, V. (2022). *Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor: Securing the Nation*. Invest India.

MSMEs, and startups. Uttar Pradesh already houses prominent defense companies including Hindustan Aeronautics Limited (HAL), Bharat Electronics Limited (BEL), Advanced Weapons and Equipment India Limited, and Gliders India Limited, in addition to top institutions such as the Defense Research and Development Organization (DRDO), IIT Kanpur, and IIT-BHU. The already-established infrastructure for manufacturing and research facilitates knowledge transfer, innovations, and the development of the workforce that are necessary for sustainable defense independence (Nayyar & Sigchi, 2022). **(See Table - 1 Investment Commit-ments under the Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor.**

The investment pattern in the industrial corridor reveals that cities like Jhansi, Aligarh, and Lucknow have been identified as the leading growth hubs in the region. As reported by Invest India, it has been stated that 63 industrial Memorandum of Understandings have been signed which has facilitated a total investment of ?2,527.68 crore through 25 executed MOUs of which ?1,827.68 crore is from private industries and ?700 crore is from Defence Public Sector Units (Nayyar &Sigchi, 2022). Major industrial ventures like BrahMos Aerospace manufacturing unit in Lucknow and Bharat Dynamics Limited missile propulsion facility in Jhansi will be generating lakhs of job opportunities in addition to enhancing indigenous missile manufacturing capabilities. The different types of incentives of state such as capital subsidy; land subsidy; exemption of stamp duty; support to technology development and MSME creation allow for effective participation from the private sector and enhance the level of integration of local supply chain in the region. Hence, the UP Defence Industrial Corridor can be seen as not merely an industrial cluster but as a strategic platform that provides for innovation, employment, growth of the region and production of indigenous defences. **(See Figure-1 on Next Page)**

Figure-1

Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor showing six defence manufacturing nodes.

Source : Nayyar, M., & Sigchi, V. (2022). *Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor: Securing the Nation*. Invest India.

Critical Assessment and Challenges-

The Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor (UPDIC), despite the positive strides made thus far, has several structural and operational issues that may prevent it from making any significant long-term contribution to India's defence self-reliance. Although massive investments and MoUs have been declared, the implementation and commissioning of various projects are occurring at different speeds in each of the six nodes involved. Many planned investments remain in a developmental stage, suggesting a gap between funding commitments and industrial production (Nayyar &Sigchi, 2022). Besides, the Indian defence manufacturing ecosystem still depends on foreign technologies and systems, further minimizing the level of indigenous manufacturing (Singh, 2023).

The need for stronger collaboration among Defence Public Sector Undertakings (DPSUs), private enterprises, MSMEs, research institutions, and start-ups is another critical issue. While the corridor creates a supportive policy environment, achieving internationally competitive capabilities

necessitates additional investments in R&D, technology transfer, workforce training, and innovation. Moreover, the long time required to complete defence procurement procedures, the licensing of technology, and other procedures connected with private sector defence production can demotivate private sectors. Improving the situation so that planned activities can be implemented requires effective leadership, the creation of modern infrastructure, constant governmental support, and more fruitful collaboration between industry and academia (Ministry of Defence, 2021; Nayyar & Sigchi, 2022).

Conclusion-

Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor is a vital project undertaken as a part of India's mission of becoming a self-sufficient country when it comes to defence requirements due to Atmanirbhar Bharat. By bringing together defence entities, departments, MSMEs, startups, and public companies at six different key locations, the corridor is a crucial establishment of the domestic defence network. The funds provided to construct the infrastructure, incentives for different industries to invest in the project, and key projects such as the one built in BrahMos Aerospace and Bharat Dynamics Limited (Nayyar &Sigchi, 2022). However, due to additional efforts regarding investment in R&D, project implementation, purchase of cutting-edge technology, and cooperation between industries, educational institutions, and government needed to be made. If issues are dealt with properly, UPDIC can effectively become a facilitator of technological advancement, jobs creation, defence economy, and even strategic independence (Singh, 2023; Ministry of Defence, 2021).

Reference

1. Ministry of Defence. (2018). Defence Production Policy 2018. Government of India.
2. Ministry of Defence. (2020). Atmanirbhar Bharat Defence Industry Outreach Webinar. Government of India.
3. Ministry of Defence. (2020). Make in India in Defence Sector. Government of India.
4. Ministry of Defence. (2021). Annual Report 2020–21. Government of India.
5. Press Information Bureau. (2026, June 17). The Defence Decade : Enhanced capability, greater capacity, and stronger credibility. Government of India. https://www.pib. gov.in/PressReleasePage.aspx? PRID = 2273854 & reg = 3 & lang =1
6. Singh, Dr. Archna (2023) Defending India: A Study of the Role of AtmaNirbhar Bharat and Make-in-India Policies in Strengthening India's Defence Industry, Volume 11, Issue 7 July, IJCRT, https://ijcrt.org/papers/IJCRT2307850.pdf
7. Uttar Pradesh Defence Industrial Corridor Securing the Nation, By Mishika Nayyar and Vivek Sigchi (2022). https://static.investindia.gov.in/s3fs-public/2022-02/Arteries%20of%20Growth.pdf.

ISSN : 2394-4366

Received: 28 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

A Cotmparative Effect of Yogic Practices and walking on total Cholesterol of old aged people

- Sanjana Srivastava
Assistant Professor-
Department of
Physical Education,
Kr. R. C. Mahila Degree
College, Mainpuri- (U.P.)

Email -
swadi20h@gmail.com

Research Supervisor -
- Prof. Alka Nayak
Department of
Physical Education,
R. D. V. V. Jabalpur-482001
(M.P.)

Email -
aloanayak11@gmail.com

Abstract

The objective of this study was to determine the comparative effect of yoga practices and walking on total cholesterol of old aged people. The subjects for this study were sedentary male from Kanpur. A total of sixty male subjects were selected and used as two experimental groups (20 subjects each) and control group (20 subjects). Yogic practices and walking was considered the independent variable and total cholesterol was considered as the dependent variable. 2 ml of blood in plain vial was taken as the criterion measures and Total Cholesterol CHOD-PAP method (modified Roeschlau's method) was used. Training was given for three month, five days a week with each session of 45 minutes. The Pre Test- Post Test randomized group design was used for this study. Tests were administered before the training program and after the completion of the treatment again test was administered. ANCOVA was used to locate significant effects of yogic practices and fast walking on total cholesterol at 0.05level of significance. In relation to total cholesterol, effect of yogic practices and walking was found significant.

Keywords: ***Yogic Practices, Walking and Total Cholesterol, Old age people.***

Introduction -

Yogic practices and walking to reduce cholesterol are in large amount. It is basic to comprehend the capacity of cholesterol. Some studies highlighted that yogic practices and walking plays an important role in risk modification for various systemic diseases. The experience of unity or oneness with inward contemplations and sentiments are all around decided in Yoga. The dissolving idea of duality of mind and matter into the supreme is considered as unity. As an enlightening way, it was resolved that it is investigation of truth. Many physical, physiological and mental cures are archived and gentle to detectable changes are noted while doing different asana, pranayama's and meditation. There is a progression of different asana, which is done in a successive way. It

Results Table-1 : Descriptive Statistics of Groups in the Variable of Total Cholesterol

Groups	Test	Mean	Std. Deviation
Yogic	Pre Test	191.61	37.16
Practices	Post Test	171.61	33.67
Fast	Pre Test	204.50	26.29
Walking	Post Test	170.61	22.39
Control	Pre Test	201.12	28.68
Group	Post Test	204.24	27.11

includes distinctive kinds of asana which can perform effortlessly. Fast Walking is for the most part recognized from running in that just a single foot at any given moment leaves contact with the ground. In the present quick paced life, individuals are driving an exceptionally unfortunate way of life. The expanding rates of wellbeing sicknesses, feelings of anxiety, need or deficient rest are caused because of the quick paced way of life. So the research angle in the study was to find out whether there will be any difference in the effect of yogic practices and brisk walking on Cholesterol.

Methodology-

Total ninety sedentary male individuals with their age ranging between 40-50 years were selected from Kanpur U.P., randomly. The subjects divided into three groups of thirty subjects in each group. All subjects were almost from the same economic group and were found to be physically fit for the type of programme they were selected , The total cholesterol measured by 2 ml of blood in plain vial and it was measured based on CHODPAP method (modified Roeschlau's method). Pre-test and post-test randomized group design was employed where the subjects were divided into two experimental groups and a control group. The experimental group was imparted training of five days a week and each session scheduled for 45 minutes yogic practices and fast walking training for three month. The training of experimental group was given in the Yoga practice inMotiJheel Kanpur. The subject practiced yogic practices and walking for a period of 45 minutes in the morning for five days in a week. The training continued for a period of three month. To find out the effect of yogic practices and fast walking on the variable of total cholesterol among old aged men descriptive and comparative statistics was used and tested at 0.05. **(See Table-1)**

Results Table -1: Descriptive Statistics of Groups in the Variable of Total Cholestrol.

Table 1 revealed that there were thirty subjects in each group. The mean and standard deviation of yogic practices experimental showed that in pretest and posttest the scores were 191.61 ± 37.16 and 170.61 ± 33.67 respectively. The mean

Table-2 : Univariate Anlyses of Various groups in the Factor of Total Cholesterol

Sources		SS	DF	MSS	F
Pre Test	Between Group	2252.642	2	1126.32	1.16
	Within Group	83961.770	87	905.16	
Post Test	Between Group	20607.47	2	10303.74	13.03
	Within Group	68764.986	87	790.402	

*Significant at 0.05 level of significance f (0.05) (2, 86) =3.09

Table -3 Comparisons of Various Groups in the Variance of Total Cholesterol

	SS	Df	MSS	F
Contrast	19709	2	9854.88	103.27
Error	8206.71	86	95.42	

*Significant at 0.05 level of significance f (0.05) (2, 86) =3.09

and standard deviation of fast walking in pretest and posttest were 204.50 ± 26.29 and 171.69 ± 22.39 respectively. The mean and standard deviation of control group in pretest and posttest were 201.12 ± 28.68 and 204.24 ± 27.11 respectively in the variable of total cholesterol. **(See Table-2 on back page).**

In relation to pretest, table - 2 revealed that the obtained 'F' value of 1.16 was found to be insignificant at 0.05 level, in the total cholesterol since this value was lower than the tabulated value 3.09 at 2,87 df. In relation to post test, significant differences was found among experimental groups and control group pertaining to total cholesterol, since 'F' value of 13.03 was found significant at 0.05 level. **(See Table-3)**

Table 3 revealed analysis of co-variance which was calculated to find out the impact of three month training on total cholesterol. The obtained 'F' value 103.27 was found significant at 0.05 level of significance as calculated value was found higher than the tabulated value 3.09.

Discussion -

The present study evaluated effect of three month training on total cholesterol on sedentary male. The findings of this study demonstrated that three month yogic practices and fast walking training have significant effect on total cholesterol. The result of the study on total cholesterol indicated that both the experimental groups (yogic practices & fast walking) significantly improved after the training. The results of the study also indicated that there was a significant difference on total cholesterol between the yogic practices and control and fast walking and control group after three month training. However the fast walking group was found to be better in decreasing the total cholesterol level in blood than yogic practices group.

Reference

1. Arya Sandhya & Parimal Devnath (2015). Yoga Education, NCTE New Delhi : 102-105.
2. Complete Exercise. New York: Ballantine Books Trade Paperback Edition, 68.
3. Prasad et. al, (2006). Impact of Pranayam and Yoga on Lipid Profile in Normal Healthy Volunteers, Journal of Exercise Physiology (Online) Vol 9 (1), 1-6.
4. Comprehensive Yogic Practices on Lipid Profile of Urban Population. International Journal of Science and Consciousness; 3(2): 24-28.

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 30 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Technology Adoption in Small Business Management

- Vaibhav Kumar Dwivedi
Research Scholar-
Department of Commerce,
Major S. D. Singh University,
Fatehgarh, Farrukhabaad - 209601 (U.P.)

E-mail:
vaibhavdwivedi747@gmail.com

Research Supervisor-
- Dr. Pradeep Kumar Singhal
Associate Professor,
Department of Commerce,
Major S. D. Singh University,
Fatehgarh, Farrukhabaad - 209601 (U.P.)

E-mail:
pradeepkrsinghal1@gmail.com

Abstract

Technology adoption has become a key factor in enhancing the competitiveness, productivity, and sustainability of small businesses. Small and medium enterprises (SMEs) contribute significantly to employment generation and economic development, yet many struggle with adopting digital technologies due to financial, technical, and organizational barriers. This paper examines the importance of technology adoption in small business management, identifies the major drivers and challenges, and discusses its impact on business performance. The study is conceptual and based on secondary data collected from books, research articles, government reports, and published literature. The findings indicate that the adoption of technologies such as cloud computing, digital payments, e-commerce, accounting software, artificial intelligence, and customer relationship management systems improves operational efficiency, customer satisfaction, and business growth. However, factors such as high implementation costs, cybersecurity concerns, lack of digital skills, and resistance to change continue to hinder technology adoption. The paper concludes with recommendations for policymakers and business owners to encourage digital transformation among small businesses.

Keywords - ***Technology Adoption, Small Business Management, Digital Transformation, SMEs, Innovation, Business Performance.***

1. Introduction-

Small businesses play an essential role in the economic development of both developed and developing countries. They generate employment opportunities, contribute to GDP, encourage entrepreneurship, and promote regional development. With rapid advancements in digital technologies, small businesses are increasingly required to integrate technology into their operations to remain competitive.

Technology adoption refers to the process through which organizations implement new technological tools and systems to

improve efficiency and decision-making. In recent years, cloud computing, mobile applications, digital payment systems, artificial intelligence, big data analytics, enterprise resource planning (ERP), and e-commerce platforms have transformed the way small businesses operate.

Despite these opportunities, many small businesses face challenges related to financial constraints, limited technological knowledge, inadequate infrastructure, and organizational resistance. Therefore, understanding the factors affecting technology adoption is essential for improving small business management.

2. Objectives of the Study-

- To examine the significance of technology adoption in small business management.
- To identify the major technologies adopted by small businesses.
- To analyze the benefits of technology adoption.
- To examine the challenges affecting technology adoption.
- To suggest strategies for improving technology adoption among small businesses.

3. Research Methodology-

The present study is descriptive and conceptual in nature. It is based entirely on secondary data collected from:

Research journals.

Books.

Government reports.

RBI publications.

Ministry of MSME reports.

International reports published by OECD and World Bank.

Published conference papers.

The collected information was analyzed through qualitative interpretation.

4. Literature Review-

Several researchers have emphasized the importance of technology in improving business performance.

Davis (1989) introduced the Technology Acceptance Model, explaining that perceived usefulness and ease of use influence technology adoption.

Rogers (2003) explained the Diffusion of Innovation Theory, highlighting how innovations spread among organizations.

Bharadwaj (2000) argued that information technology enhances organizational performance by creating competitive advantages.

OECD (2021) reported that digital transformation significantly improves SME productivity and resilience.

World Bank (2022) emphasized that digital technologies support financial inclusion and market expansion for small businesses.

The literature indicates that technology adoption positively influences innovation, operational efficiency, and customer satisfaction.

5. Technology Adoption in Small Business Management-

Modern small businesses are adopting various digital technologies, including:

(a) Cloud Computing - Cloud services reduce infrastructure costs and improve accessibility of business data.

(b) Digital Payment Systems - UPI, mobile banking, internet banking, and QR-code payments have simplified financial transactions.

(c) Accounting Software- Software such as Tally and Zoho Books helps businesses maintain accurate financial records and comply with taxation requirements.

(d) Customer Relationship Management (CRM)- CRM software enables businesses to improve customer communication and enhance customer satisfaction.

(e) E-commerce Platforms- Online marketplaces and business websites expand market reach and increase sales opportunities.

(f) Artificial Intelligence- AI-powered chatbots, predictive analytics, and automation improve customer service and operational

efficiency.

6. Benefits of Technology Adoption-

Technology adoption offers several advantages:

Improved operational efficiency.

Faster decision-making.

Reduced operational costs.

Better customer relationship management.

Increased sales and profitability.

Improved financial management.

Enhanced communication.

Competitive advantage.

Better inventory control.

Access to national and international markets.

7. Challenges of Technology Adoption-

Small businesses often face the following challenges:

High implementation costs.

Lack of skilled workforce.

Limited digital literacy.

Cybersecurity risks.

Poor internet infrastructure.

Resistance to organizational change.

Data privacy concerns.

Difficulty integrating new technologies with existing systems.

8. Strategies to Promote Technology Adoption-

To encourage digital transformation, the following measures are recommended:

Government financial assistance and subsidies.

Digital literacy and training programs.

Affordable cloud-based software solutions.

Strong cybersecurity practices.

Improved internet infrastructure.

Collaboration with technology providers.

Awareness programs regarding digital benefits.

Development of technology support centers for SMEs.

9. Findings-

The study reveals that:

Technology adoption significantly improves business productivity.

Digital payment systems have become essential for business operations.

Cloud computing reduces infrastructure costs.

Technology enhances customer satisfaction and business competitiveness.

Financial constraints remain the primary obstacle for SMEs.

Digital skills training is necessary for successful implementation.

Government initiatives play a significant role in promoting digital transformation.

10. Conclusion-

Technology adoption has become a necessity rather than an option for small businesses. Organizations that embrace digital technologies are more productive, competitive, and resilient. Although challenges such as financial limitations, cybersecurity threats, and skill shortages remain significant, appropriate government support, affordable technological solutions, and continuous digital education can accelerate technology adoption. Future research may focus on empirical analysis of technology adoption among SMEs across different sectors and regions.

References

1. Bharadwaj, A. S. (2000). A Resource-Based Perspective on Information Technology Capability and Firm Performance. MIS Quarterly.
2. Davis, F. D. (1989). Perceived Usefulness, Perceived Ease of Use, and User Acceptance of Information Technology. MIS Quarterly.
3. OECD. (2021). The Digital Transformation of SMEs.
4. Rogers, E. M. (2003). Diffusion of Innovations (5th ed.). Free Press.
5. World Bank. (2022). Digital Development Report.
6. Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises (Government of India). Annual Report.
7. Reserve Bank of India. Reports on Digital Payments.
8. Porter, M. E. (1985). Competitive Advantage. Free Press.

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 02 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Promoting Student Well-Being Through Academic Learning, Positive Social Behaviour, and Healthy Lifestyle Practices

- Shyam Sundar Patnayak
Research Scholar-
Department of Education,
Bharti University, Durg-491002
(Chhattishgarh)

E-mail:
shyampatnaik37@gmail.com

Research Supervisor -
- Dr. Swati Pandey
Assistant Professor-
Department of Education,
Bharti University, Durg-491002
(Chhattishgarh)

E-mail:
swatipandey@gmail.com

Abstract

Student well-being has become a fundamental priority in contemporary education due to its significant influence on academic success, psychosocial development, and lifelong health. This paper examines the interconnected roles of academic learning, positive social behaviour, and healthy lifestyle practices in fostering holistic student well-being through a conceptual synthesis of contemporary educational and psychological perspectives. It explores how meaningful learning experiences, supportive interpersonal relationships, and health-promoting behaviours collectively enhance students' cognitive engagement, emotional resilience, social competence, and overall quality of life. The paper further discusses integrated school-based strategies and emerging educational challenges while emphasizing the need for collaborative approaches involving educators, families, and policymakers. It concludes that sustainable educational development requires comprehensive well-being frameworks that balance academic excellence with psychological, social, and physical flourishing, thereby preparing students for productive and resilient lifelong learning.

Keywords: ***Student Well-Being; Academic Learning; Positive Social Behaviour; Healthy Lifestyle Practices.***

Introduction-

Student well-being has emerged as one of the most significant priorities in contemporary education, reflecting a paradigm shift from a narrow emphasis on academic achievement to a broader concern for learners' holistic development. Educational systems across the world increasingly recognize that students' cognitive growth, emotional stability, social competence, and healthy lifestyle practices are interdependent dimensions that collectively determine educational success and lifelong well-being. Global organizations such as the World Health Organization

(WHO), UNESCO, OECD, and UNICEF have consistently emphasized that schools should not merely function as centers of academic instruction but should also promote physical health, psychological resilience, positive social relationships, and responsible life choices. Consequently, student well-being is now regarded as a multidimensional construct encompassing academic engagement, emotional security, social connectedness, physical health, and life satisfaction. Contemporary educational research further suggests that learners who experience supportive school environments and positive interpersonal relationships demonstrate greater academic motivation, stronger resilience, and improved psychological adjustment (WHO, 2021; OECD, 2019; UNESCO, 2021).

Academic learning represents one of the strongest determinants of student well-being because meaningful learning experiences enhance learners' confidence, competence, and self-efficacy. Rather than viewing academic learning solely through examination performance, modern educational perspectives define learning as a continuous process of knowledge construction, critical thinking, creativity, collaboration, and lifelong competence development. Students who actively participate in engaging learning environments generally report higher levels of academic satisfaction, intrinsic motivation, and emotional well-being than those exposed to highly competitive and examination-oriented systems. Research has consistently demonstrated that supportive classroom environments, learner-centered pedagogies, formative assessment practices, and positive teacher expectations significantly improve both academic outcomes and psychological adjustment. Conversely, excessive academic pressure, performance anxiety, fear of failure, and limited instructional support often contribute to stress, burnout, and reduced educational engagement among learners (Durlak et al., 2011; Hattie, 2009; Wang & Eccles, 2012; Suldo et al., 2011). These findings indicate that academic learning should be conceptualized not merely as an educational outcome but also as a significant contributor to students' overall quality of life.

Equally important is the role of positive social behaviour in promoting healthy developmental outcomes throughout childhood and adolescence. Schools function as complex social environments where students continuously develop interpersonal relationships, communication skills, empathy, cooperation, emotional regulation, and responsible decision-making. Positive social behaviour strengthens students' sense of belonging, enhances peer acceptance, reduces behavioural problems, and facilitates collaborative learning experiences. Numerous investigations have reported that constructive teacher-student relationships and supportive peer networks significantly improve academic engagement while simultaneously protecting students against loneliness, anxiety, bullying, and social isolation. Social and Emotional Learning (SEL) frameworks have further demonstrated that systematic development of emotional intelligence, empathy, conflict resolution, and responsible behaviour contributes substantially to academic achievement and psychological well-being. Educational environments characterized by mutual respect, inclusiveness, and positive school climate encourage learners to participate actively in classroom activities while fostering resilience and healthy social adjustment (CASEL, 2020; Durlak et al., 2011; Wentzel, 2017).

Healthy lifestyle practices constitute another essential dimension influencing student well-being and educational success. Lifestyle behaviours such as balanced nutrition, regular physical activity, adequate sleep, responsible digital engagement, mindfulness, and stress management significantly affect cognitive functioning, emotional regulation, concentration,

and academic productivity. Increasing technological dependence, sedentary behaviour, unhealthy dietary habits, insufficient physical exercise, and prolonged screen exposure have emerged as major concerns affecting learners worldwide. Research indicates that healthy lifestyle behaviours enhance memory, attention, executive functioning, emotional stability, and classroom participation, whereas unhealthy routines contribute to fatigue, psychological distress, behavioural difficulties, and poor academic performance. Furthermore, the interaction between physical health and mental health has become increasingly evident, highlighting the necessity of integrating health promotion within educational settings. Schools therefore have an important responsibility to cultivate healthy behavioural practices alongside academic competencies to ensure sustainable student development (WHO, 2021; Basch, 2011; Rasberry et al., 2011).

Recent literature increasingly advocates an integrated perspective in which academic learning, positive social behaviour, and healthy lifestyle practices are viewed as mutually reinforcing rather than independent domains. Bronfenbrenner's ecological systems perspective, positive psychology, self-determination theory, and whole-school approaches collectively suggest that student well-being develops through continuous interactions among individual characteristics, family environments, peer relationships, school climate, community support, and broader educational policies. Students experiencing positive learning environments often develop stronger social competencies and healthier lifestyle habits, while physically and emotionally healthy learners demonstrate greater academic engagement and interpersonal effectiveness. Similarly, schools implementing comprehensive well-being programmes that combine quality instruction, social-emotional learning, health education, counselling support, and family engagement consistently report improved educational and psychosocial outcomes. This integrated understanding has encouraged educational researchers to examine student development through multidisciplinary frameworks rather than isolated variables (Bronfenbrenner, 1979; Deci & Ryan, 2000; Seligman, 2011).

Despite substantial progress in educational and psychological research, important conceptual and contextual gaps continue to exist regarding the integrated relationship among academic learning, positive social behaviour, healthy lifestyle practices, and student well-being, particularly within developing educational systems. Much of the existing literature investigates these variables independently, whereas relatively fewer studies attempt to synthesize their reciprocal relationships within a comprehensive educational framework. Rapid technological transformation, changing family structures, increasing academic expectations, mental health concerns, and post-pandemic educational realities have further intensified the need for multidimensional perspectives on student well-being. Developing a comprehensive understanding of how academic learning, social behaviour, and lifestyle practices collectively shape students' psychological and educational outcomes is therefore essential for designing evidence-informed educational policies, effective school interventions, learner-centred pedagogies, and sustainable well-being programmes. Such a perspective can strengthen educational practices by promoting not only academic excellence but also resilient, socially responsible, mentally healthy, and holistically developed learners capable of thriving in increasingly complex educational and societal environments.

Student Well-Being Perspectives-

Student well-being has become a central concern in contemporary educational discourse because it reflects the overall quality of students'

academic, psychological, social, and physical functioning. Modern educational systems increasingly acknowledge that successful learning extends beyond cognitive achievement and includes emotional security, positive interpersonal relationships, resilience, and a sense of purpose. Rather than treating well-being as the absence of psychological distress, current perspectives conceptualize it as a dynamic state in which learners experience positive emotions, meaningful engagement, supportive relationships, and opportunities for personal growth. This multidimensional understanding is influenced by positive psychology, ecological systems theory, and holistic education, all of which emphasize the interaction between individual capabilities and environmental conditions. Consequently, schools are expected to create inclusive and nurturing environments that encourage students to flourish academically and personally. Student well-being has therefore evolved into a key indicator of educational quality, influencing not only learning outcomes but also long-term health, responsible citizenship, and lifelong personal development.

Contemporary perspectives further recognize that student well-being is shaped through continuous interactions among family, school, peers, community, and digital environments. Educational research demonstrates that learners who experience supportive teacher relationships, positive peer interactions, psychological safety, and equitable learning opportunities are more likely to develop confidence, self-regulation, motivation, and adaptive coping skills. Conversely, chronic academic pressure, social exclusion, unhealthy competition, and inadequate emotional support can diminish students' engagement and overall quality of life. International educational frameworks increasingly advocate whole-school approaches that integrate social-emotional learning, mental health promotion, health education, and student participation into everyday educational practices. Such approaches acknowledge that academic excellence and well-being are mutually reinforcing rather than competing educational goals. Therefore, promoting student well-being requires coordinated efforts involving educators, families, policymakers, and communities to establish educational ecosystems that simultaneously nurture intellectual achievement, emotional resilience, social responsibility, and healthy personal development.

Academic Learning Dimensions

Academic learning is a multidimensional process through which students acquire knowledge, develop higher-order thinking skills, construct meaningful understanding, and apply learning to real-life situations. Contemporary educational philosophy emphasizes that effective learning extends beyond memorization and examination performance, encompassing inquiry, creativity, collaboration, problem-solving, and reflective thinking. Competency-based education has further strengthened this perspective by encouraging learners to demonstrate conceptual understanding, transferable skills, and responsible decision-making. Learning environments characterized by active participation, learner autonomy, formative assessment, and constructive feedback significantly enhance students' academic engagement and intrinsic motivation. Equally important is the role of teachers in facilitating intellectually stimulating experiences that accommodate diverse learning needs and encourage continuous improvement. Consequently, academic learning is increasingly viewed as a developmental process that promotes intellectual growth while simultaneously supporting emotional confidence, self-efficacy, and lifelong learning competencies necessary for successful participation in an evolving knowledge society.

The dimensions of academic learning are closely associated with students' psychological well-being, behavioural adjustment, and

educational persistence. Research increasingly indicates that meaningful learning experiences strengthen academic resilience by enabling students to overcome challenges, regulate emotions, and maintain motivation despite difficulties. Collaborative learning environments, inquiry-based instruction, interdisciplinary experiences, and authentic assessment practices further contribute to deeper cognitive engagement and positive academic identity. Simultaneously, inclusive classroom cultures that recognize individual differences reduce learning anxiety and foster greater participation among diverse groups of learners. Technological innovations, digital learning resources, and personalized instructional approaches have expanded opportunities for differentiated learning; however, they also require balanced implementation to prevent cognitive overload and digital fatigue. Therefore, understanding academic learning through multiple interconnected dimensions enables educators to design educational experiences that simultaneously enhance scholastic achievement, critical thinking, emotional well-being, and adaptive competencies, thereby contributing to students' holistic educational development rather than merely improving examination outcomes.

Positive Social Behaviour

Positive social behaviour represents a fundamental dimension of student development that extends beyond interpersonal courtesy to include empathy, cooperation, mutual respect, responsibility, and ethical decision-making. Within educational settings, these behaviours contribute significantly to creating learning environments where students experience psychological safety, trust, and social acceptance. Positive social behaviour is not merely an inherent personality characteristic but a developmental competency cultivated through continuous interactions with teachers, peers, families, and the broader school culture. Contemporary educational perspectives emphasize that students who consistently demonstrate cooperation, active listening, emotional regulation, and constructive conflict resolution are more likely to establish supportive relationships that enhance both academic engagement and emotional well-being. Furthermore, classrooms characterized by respectful communication and collaborative learning encourage intellectual risk-taking, reduce fear of failure, and strengthen learners' confidence in expressing diverse perspectives. Consequently, fostering positive social behaviour has become an essential objective of holistic education, promoting environments that simultaneously support academic excellence, social inclusion, and responsible citizenship while preparing learners to function effectively within increasingly interconnected and culturally diverse societies.

The development of positive social behaviour is strongly influenced by the quality of relationships that students experience throughout their educational journey. Teachers play a pivotal role by modelling respectful communication, fairness, empathy, and inclusive practices that shape students' behavioural expectations. Similarly, peer interactions provide opportunities for collaborative problem-solving, leadership development, emotional support, and shared responsibility, enabling learners to acquire essential interpersonal competencies through authentic experiences. Family involvement further reinforces these behaviours by establishing consistent social values and promoting constructive communication beyond the classroom. Educational research increasingly suggests that schools implementing structured social-emotional learning programmes, cooperative learning strategies, restorative disciplinary practices, and student participation initiatives demonstrate higher levels of classroom engagement and reduced behavioural conflicts. Such environments encourage students to appreciate diversity, develop cultural sensitivity, and respond positively to differing viewpoints.

Therefore, positive social behaviour should be understood as a product of interconnected educational experiences rather than isolated behavioural instruction, requiring coordinated efforts among schools, families, and communities to sustain meaningful social development and lifelong interpersonal competence.

Beyond its immediate influence on classroom interactions, positive social behaviour contributes substantially to students' long-term psychological well-being, academic persistence, and life satisfaction. Learners who demonstrate empathy, self-control, cooperation, and social responsibility generally experience stronger peer acceptance, higher levels of school connectedness, and greater emotional resilience when encountering academic or personal challenges. These protective factors reduce the likelihood of social isolation, bullying, behavioural misconduct, and psychological distress while simultaneously strengthening motivation, self-esteem, and educational aspirations. In contemporary educational contexts characterized by increasing digital communication and multicultural diversity, positive social behaviour has acquired additional significance because students must navigate complex interpersonal relationships across both physical and virtual environments. Consequently, educational institutions must intentionally integrate opportunities for collaborative learning, civic engagement, peer mentoring, and reflective dialogue within the curriculum to strengthen students' social competence. Such comprehensive educational practices cultivate emotionally intelligent, ethically responsible, and socially adaptable individuals who are capable of contributing positively to democratic societies while maintaining healthy interpersonal relationships throughout their personal, academic, and professional lives.

Healthy Lifestyle Practices-

Healthy lifestyle practices constitute an essential foundation for promoting student well-being because they directly influence physical health, cognitive functioning, emotional stability, and academic performance. Contemporary educational research recognizes that healthy behaviours extend beyond physical fitness to encompass balanced nutrition, adequate sleep, regular physical activity, effective stress management, personal hygiene, responsible digital engagement, and emotional self-care. These practices collectively enhance students' capacity to concentrate, regulate emotions, solve problems, and participate actively in learning activities. Schools increasingly acknowledge that healthy learners are more likely to demonstrate sustained academic engagement, higher attendance, and stronger motivation than peers experiencing unhealthy lifestyle patterns. Conversely, insufficient sleep, sedentary routines, poor dietary habits, excessive screen exposure, and unmanaged stress often contribute to reduced attention, emotional exhaustion, behavioural difficulties, and diminished educational outcomes. Consequently, healthy lifestyle practices should be viewed as integral components of educational development rather than supplementary health initiatives, requiring systematic support through coordinated school policies, family involvement, and community-based health promotion programmes.

The promotion of healthy lifestyle practices requires a comprehensive educational approach that integrates health education with everyday learning experiences and positive school culture. Educational institutions can foster sustainable behavioural change by encouraging regular physical exercise, nutritious eating habits, mindfulness practices, digital wellness, and preventive health awareness within both curricular and co-curricular activities. Teachers, parents, healthcare professionals, and community organizations share collective responsibility for establishing environments where healthy choices become accessible, meaningful, and culturally

appropriate. Furthermore, rapidly evolving technological lifestyles demand that students develop balanced patterns of digital engagement that enhance learning without compromising physical or psychological well-being. Schools adopting health-promoting frameworks often observe improvements in students' self-discipline, resilience, classroom participation, and interpersonal relationships alongside better academic achievement. Therefore, healthy lifestyle practices should be understood as lifelong competencies that strengthen students' overall well-being while preparing them to make informed decisions supporting productive, balanced, and healthy lives throughout adulthood.

Integrated Development Framework

Student well-being cannot be adequately understood through isolated educational, psychological, or health-related perspectives because academic learning, positive social behaviour, and healthy lifestyle practices continuously interact to shape overall development. An integrated development framework recognizes these domains as interconnected components of a dynamic educational ecosystem where progress in one dimension positively influences growth in others. Meaningful academic experiences strengthen confidence and self-efficacy, positive social interactions foster emotional security and collaborative competence, while healthy lifestyle practices enhance cognitive functioning and psychological resilience. Together, these dimensions create mutually reinforcing pathways that support holistic student development rather than fragmented educational outcomes. Such a framework moves beyond traditional achievement-oriented models by emphasizing balanced growth across intellectual, emotional, social, and physical domains. Consequently, student success is interpreted not solely through academic performance but through the capacity to thrive personally, socially, and educationally within diverse and evolving learning environments.

An integrated framework also highlights the collective responsibility of schools, families, communities, and educational policymakers in promoting student well-being through coordinated interventions. Rather than implementing isolated programmes, educational institutions should establish comprehensive systems that align curriculum design, social-emotional learning, health education, counselling services, family engagement, and supportive school leadership within a unified developmental vision. This collaborative perspective enables educators to address multiple determinants of student well-being simultaneously while responding to individual diversity and contextual challenges. Furthermore, integrated educational practices encourage continuous monitoring of learners' academic progress, behavioural development, emotional adjustment, and health-related behaviours, facilitating timely support before difficulties become persistent barriers to learning. Such multidimensional educational ecosystems cultivate resilient, responsible, and self-directed learners capable of adapting successfully to changing academic expectations and societal demands. Ultimately, the integrated development framework provides a sustainable foundation for advancing educational quality while ensuring that student well-being remains a central objective of twenty-first-century education.

School Well-Being Strategies

1. Creating a Supportive School Climate

A supportive school climate promotes safety, respect, inclusion, and trust, enabling students to participate confidently in academic and social activities. Positive classroom interactions and equitable educational practices strengthen students' sense of belonging and psychological security.

2. Strengthening Social-Emotional Learning

Integrating Social-Emotional Learning (SEL) into everyday teaching develops self-awareness, emotional regulation, empathy, responsible decision-making, and interpersonal competence. These competencies improve academic engagement while reducing behavioural and emotional difficulties.

3. Promoting Student Mental Health-

Schools should establish accessible mental health support through counselling services, early identification of psychological concerns, stress management programmes, and awareness initiatives that encourage students to seek timely assistance without stigma.

4. Encouraging Healthy Lifestyle Practices-

Educational institutions should promote balanced nutrition, regular physical activity, adequate sleep, digital well-being, mindfulness, and health education to strengthen students' physical health, cognitive functioning, emotional stability, and overall educational performance.

5. Enhancing Teacher and Parent Engagement-

Collaborative partnerships among teachers, parents, and school leaders create consistent academic guidance, emotional support, and behavioural expectations, thereby strengthening students' motivation, resilience, and overall well-being across home and school environments.

6. Integrating Inclusive Educational Practices-

Inclusive educational practices ensure equitable learning opportunities by respecting individual diversity, accommodating different learning needs, preventing discrimination, and fostering collaborative participation among students from diverse social, cultural, and educational backgrounds.

7. Implementing Comprehensive Well-Being Policies-

Schools should adopt evidence-informed well-being policies that integrate academic learning, health promotion, student protection, social inclusion, continuous monitoring, and community participation to establish sustainable educational environments that support holistic student development and lifelong well-being.

Challenges and Future Directions-

1. Addressing Academic Pressure- Increasing academic expectations, examination-oriented learning, and competitive educational environments often create psychological stress, anxiety, and emotional exhaustion among students. Future educational systems should promote balanced assessment practices that value conceptual understanding, creativity, and holistic development alongside academic achievement.

2. Managing Digital Influences-While digital technologies have expanded educational opportunities, excessive screen time, social media dependency, and digital distractions continue to affect students' concentration, sleep quality, social relationships, and mental health. Future strategies should encourage responsible digital citizenship and balanced technology use.

3. Reducing Mental Health Disparities- Many educational institutions continue to experience limited access to professional counselling services, mental health awareness programmes, and early psychological intervention. Strengthening school-based mental health infrastructure should become a priority to ensure timely identification and comprehensive support for students experiencing emotional challenges.

4. Promoting Inclusive Educational Environment - Educational diversity requires schools to address inequalities associated with socioeconomic background, gender, disability, culture, and learning differences. Future educational policies should strengthen inclusive practices that ensure equitable learning opportunities, participation, and well-being for every learner.

5. Strengthening Family– School Partnerships-Student well-being is significantly influenced by meaningful collaboration between

families and educational institutions. Future initiatives should encourage continuous communication, shared decision-making, and parental engagement to create consistent academic, emotional, and behavioural support systems.

6. Advancing Evidence- Based Educational Practices-Future educational planning should increasingly rely on empirical evidence, continuous monitoring, and multidisciplinary research to evaluate well-being programmes and learning interventions. Integrating educational research into institutional decision-making will improve programme effectiveness and long-term student outcomes.

Conclusion-

Promoting student well-being requires a comprehensive educational perspective that recognizes the interconnected roles of academic learning, positive social behaviour, and healthy lifestyle practices in shaping holistic development. These dimensions function as complementary rather than independent components of the educational experience, collectively influencing students' cognitive growth, emotional stability, interpersonal competence, and physical health. Educational environments that encourage meaningful learning, respectful social interactions, and health-conscious behaviours create conditions in which students develop resilience, intrinsic motivation, and lifelong adaptive capabilities. Consequently, student well-being should be considered a fundamental indicator of educational quality, extending beyond academic performance to encompass sustainable personal and social development.

A holistic approach to student well-being demands collaborative engagement among schools, families, communities, and policymakers in designing supportive educational ecosystems. Integrating learner-centred pedagogy, inclusive school culture, social-emotional learning, mental health promotion, and healthy lifestyle education can strengthen students' capacity to respond effectively to contemporary educational and societal challenges. Future educational initiatives should prioritize evidence-informed practices that simultaneously advance academic excellence, responsible citizenship, psychological well-being, and lifelong health. Such an integrated educational vision will contribute to developing resilient, socially responsible, and intellectually competent learners capable of achieving both personal fulfilment and meaningful societal participation.

References

1. Basch, C. E. (2011). Healthier students are better learners : A missing link in school reforms to close the achievement gap. Journal of School Health, 81(10), 593–598.
2. Bronfenbrenner, U. (1979). The ecology of human development. Harvard University Press.
3. Collaborative for Academic, Social, and Emotional Learning (CASEL). (2020). What is SEL? CASEL.
4. Deci, E. L., & Ryan, R. M. (2000). The "what" and "why" of goal pursuits: Human needs and the self determination of behavior. Psychological Inquiry, 11(4), 227–268.
5. Durlak, J. A., Weissberg, R. P., Dymnicki, A. B., Taylor, R. D., & Schellinger, K. B. (2011). The impact of enhancing students' social and emotional learning: A meta-analysis. Child Development, 82(1), 405–432.
6. Hattie, J. (2009). Visible learning. Routledge.
7. OECD. (2019). OECD future of education and skills 2030. OECD Publishing.
8. Rasberry, C. N., Lee, S. M., Robin, L., et al. (2011). The association between school-based physical activity and academic performance. Preventive Medicine, 52(Suppl. 1), S10–S20.
9. Seligman, M. E. P. (2011). Flourish. Free Press.
10. Suldo, S. M., Thalji-Raitano, A., Kiefer, S. M., & Ferron, J. M. (2011). Conceptualizing high school students' mental health through a dual-factor model. School Psychology Review, 40(4), 548–567.
11. Wang, M. T., & Eccles, J. S. (2012). Social support matters: Longitudinal effects of social support on students' engagement. Child Development, 83(3), 877–895.
12. Wentzel, K. R. (2017). Peer relationships, motivation, and academic performance at school. In Handbook of Competence and Motivation (2nd ed.). Guilford Press.
13. World Health Organization. (2021). Guideline on school health services. World Health Organization.

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 09 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Glimpses of Vaishnavism in the Vedic Literature

- Dr Meera Tripathi
Head &
Senior Assistant Professor -
Department of History,
Mahila Mahavidyalaya, Kidwai Nagar, Kanpur-208011 (U.P.)

E-mail:
tripathimeera13@gmail.com

- Dr. Poonam Shukla
Assistant Professor-
Department of B.Ed,
Mahila Mahavidyalaya, Kidwai Nagar, Kanpur-208011 (U.P.)

E-mail:
punamshukl1979@gmail.com

The Ramayana, the Mahabharata, the Harivasmsa, the Puranas and some other ancient works contain interesting accounts of Krishna, Vasudeva or Vishnue's life and the Entire central India witnessed vast impact of Vaishnavism from the early Vedic up to 1200 A.D. As in the Ashtadhyayi of Panini traces of the worship of Vasudeva are discernible. The commentator of Patanjali refers to the "Vasudevakas". In the work Mahabhashya referred about the existence of the temples of Kesava, Rama, Balarama and Kubera. In Mahabharata interesting accounts of Krishna"s life is depicted as the chief character and avatar of Vishnu who was regarded as emancipator and born for the upliftment of righteousness, for the destruction of evil and thus he was regarded as a divine being. He was identified as Narayana-Vishnu, one of the chief Vedic deities who is also identified as Krishna. The Mahabharata calls Krishna "Narayana Gopa". The Harivamsa gives the designation "Gopavesa Vishnu" to Krishna.This work also describes Krishna as two-handed, bearing the ayudhas chakra and gada.

The early stone- scriptures in several parts of the country represent Vasudeva-Vishnu discovered at Malhar district Bilaspur of M.P. It is four handed life size statues carved in the round, similar to the archaic yaksha statues. It stands erect on a stone pedestal. The upper part of the deity is bare. The lower part wears a garment of palm leaves, indicating the gopavesa of Mathura. The head wears a crown of leaves and flowers. One of the hands holds a heavy mace and the left holds a chakra. The rest two joined hands hold a conch, which is also disfigured due to the chiseling of the upper portion of the image at the hands of some later miscreants .There is small sword attached to the waist on the left .This image of Malhar is the mot remarkable early representation of Vasu-deva-Vishnu, having four hands.

It may be pointed out here that the three ayudhas, viz. chakra, gada and asi associated with Krishna signify his valour as a great warrior. Samkha (conch) represents his victory over the evil forces. These attributes and his chivalrous deeds are noticeable in the images of Vasudeva-Vishnu discovered at Mathura, Bhitargaon, Sravasti, Deogarh, Garhwa, Eran, Paharpur, Khajuraho, Mandor, Badami and several other sites in the country. Many scholars may say that the cult images of Krishna are lacking in early Vishnu images, found in different parts of the country

represent Vasudeva form of duty and that of Vasudeva-Vishnu. The majority of the images are four-handed. A few images are only two-handed holding various ayudhas .some images are only two-handed; indicate the human aspect of the duty.

The Agamic cult of Bhagavatism found ardent followers in the Gupta family which made notable contribution to the acceleration of art activity. In the vast Pantheon of indian divinities, Vishnu, the god par excellence of the Bhagavatas, stands distinct with his royal personality capable of answering the imperial ambitions of the Gupta kings. Indeed, the kingly qualities of Vishnu recognized since the Vedic period and elaborated in later works specially the Mahabharata, fully blossomed in the Bhagvata concept of Chakravartin. The Vayu Purana asserts. "The Chakravartins are born in each age as the essence of Vishnu. They have lived in the ages past and will come again in future". In the same view the Vishnu purana says that the Chakravartins have the figure of Vishnu's chakra in their hand due to which their influence remains ineffaceable in the ten quarters. It seems that the early Gupta kings utilized the Bhagavata concept of chakravartin intimately associated with Vishnu, which served as a powerful means of furthering their political interests.

The personality of the Gupta's rulers presents a picture in contrast to that of the kushana kings. It is true that Harisexna, the author of the Allahabad pillar Inscription, elevates his patron Samudra Gupta to divine status by using such epithets as Apratiratha and Achintya which stands for Vishnu"

Man of the Gupta age attained the unsurpassed glory and importance in the Gupta age no matter its art or literature, human form is supreme as a new philosophy of life which regarded "Karma" (action) to be important which assures that man could achieve anything under the sun through stead fast action. The belief and faith in man was divine and man or king was considered like god. Theory of incarnation was recognized much and lord Vishnu appeared in many images of the time thus the position of man was elevated to such a height that even gods desired to be born as human beings on the earth.

The Gupta art is dominated by human figures of divine or worshipful beings.

The sculptural material of the early medieval period, known from several parts of central India, tends to indicate that the vaishnava and Saiva cults were more popular than the other cults prevalent during the time. Among the various forms of Vishnu, the Varaha incarnation became quite popular particularly in its composite-human-animal form. The Narmisha or manlion incarnation was also found in different forms. The Gupta images of Narsimha in composite form are known form Udaigiri, Pawaya, Eran and Tigwa. At Eran three shrines, one each of Vishnu,Varaha and Narsimha have been discovered.

In the early medieval (C.650-1200 A.D) Vaishnavism continued to flourish in central India. The Gupta aesthetic norms are discernible in the later art to some extent. At the same time attention was paid to iconographic details and ornamentation in art. In the Vindhyas and Chhattisgarh regions of central India several temples of Vishnu were constructed during this period.

As stated by Prof. K.D. Bajpai in his work five phases of India art; several Vishnu images and those of his incarnations, particularly of Varaha, Narsimha, Rama and Krishna, have been found at sites such as Ramgarh (Ramagiri of Kalidasa) Khajuraho, Vidisa, Badoh-Pathari, Kadwaha, Kharod, Sirpur, Malhar, Shabarinarayana and Janjgir in Madhya Pradesh. Some of the Vishnu images found at these sites show him in all-pervasive form. His syncretistic images with Siva are of special interest. Similarly, the sarvatobhadra images showing Vishnu with other important Hindu deities are also along with him.(Vishnu)and present special form and features. The Ramayana and Krishnayana scenes are known form several of

the abovementioned and other sites. It indicates to the greater popularity of Rama and Krishna with the numerous incarnations of Vishnu in central India.

The ten chief incarnations of Vishnu are carved together on a large number of panels found at various sites of this region. At Bandhogarh in the shahdol district of Madhya Pradesh separate shrines for each of the ten Avataras were constructed in the 10th century A.D.

A newly discovered Gupta stone inscription from Ramtek is of unusual importance. It is written in Brahmi and refers to the construction of a Vishnu temple and a tank named sudar-sanaladaga. The Vakutaka queen Prabhavati Gupta seems to have got this temple constructed at the religious centre of Ramtek. The names of Chandra Gupta and Ghatotkacha have also been deciphered in the record. The stone sculptures found at Ramtek indicate an advanced classical style of the 5th&6th century A.D. The Gana figures on the door jambs found there show a similarity with those found at Nachna and Bhumra in central India, Likely an image of Narsimha is a kind of the statue of the duty at Tigwa (Jabalpur of M.P).

The site of Paunar has been identified with Pravarapur, earlier the capital of vakatakas. Many interesting stone sculptures have been discovered as an image of Surya seated on chariot, Seshasayi Vishnu. Several scenes from the Ramayana and Bhagavata are portrayed there such lamentation of Dasratha, meeting of Rama and Bharta and the killing of Dhenuka, Pralamba and Kamsa by Krishna. This sculpture may be assigned to 5th and 6th centuries A.D.

It may be pointed out than from the time of Emperor Samudra Gupta of the Gupta dynasty the ideal of chakravarti was well established and was shown in their art and various artistic forms. This ideal is found enunciated in the Arthasastra of Kautilya. The grandiloquent titles of the Gupta emperors signify an all pervasive power and glory befitting a chakravarti king. The duties like Vishnu assumed dignified and all pervasive status in this age.

References

1. Ashtadhayai IV 3.68.
2. Buddhist works as Niddesa and Milindapanho.
3. Mahabharata VIII 4.39 .
4. Harivamsa II 25.21.
5. Harivamsa II 26.21 .
6. Taittiriya Samhita , III 1.10.3.
7. Vajasane Samhita , I .4 .
8. Satapatha Brahmana ,I .3.4.16.
9. Taittiriya Brahmana , I .7.4.4.
10. Mahabharata ,Santiparva ,59.112-34 .
11. Vayu Purana , XlVII.72 .
12. Vishnu Purana ,I.13.46 .
13. Sircar ,D – C , select Inscriptions. Pp. 258 – 59.
14. Sorenson, S. , An Inddex to the Names in the Mahabharata , pp – 746-47.
15. Maskandeya Purana , L VII -63.
16. Maskandeya Purana , L VII -62 .
17. Ramagiri of Kalidasa .
18. Prof . K. D. Bajpai pg .77.

ISSN : 2394-4366
Received: 09 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Samiti Beyond the Monastery

- Jain Mitali Arvind
Research Scholar-
Centre for Jain Studies, Teerthankar Mahaveer University, Moradabad-244001 (U.P.)

Email:
jainmitali10392@gmail.com

Research Supervisor -
- Dr. Dinanath Sharma
Professor - Centre for Jain Studies, Teerthankar Mahaveer University, Moradabad-244001 (U.P.)

E-mail:
dinanathsharma11@gmail.com

Abstract

While A?uvrata (minor vows) primarily prescribe what ought to be avoided, Samiti prescribes what ought to be practiced. In essence, Samiti is not merely the cessation of action but the regulation of vigilant action (Samyak Prav?tti) undertaken to prevent violence toward living beings. It encompasses carefulness in movement, carefulness in speech, carefulness in the acceptance of food, carefulness in handling and placing objects, and carefulness in disposal. The carefulness prioritizes the protection of even the minutest life forms over personal comfort or bodily needs. These bodily actions accompanied with the intention behind them and the passionless serve the true purpose of Samiti.

Introduction-

In Jaina philosophy, the metaphysical path of getting rid of all karmas and attaining liberation (*mok?a*) is strictly defined by the unison of three essential components, collectively known as the *Ratnatraya* or the "Three Jewels". As articulated in *Tattvārthasūtra* by *Umāsvāmi*, Right Faith (*Samyag-darśana*), Right Knowledge (*Samyag-jñāna*), and Right Conduct (*Samyak-cāritra*) constitute the path of liberation[1]. While Faith and Knowledge provide the correct worldview and understanding of reality respectively, Conduct is the operative force and the actual treading of the path essential for shedding karma.

Vow is an essential component of conduct. They serve as instrument for self-restraint guiding the practitioner toward spiritual liberation. Among all the vows, the five *Samiti* (rules of carefulness) are traditionally viewed as strictly monastic observances. However, various scriptural sources directly or indirectly extend these practices to the laity. This paper aims to define and contextualize the types and scope of *Samiti* for laity. Additionally, it offers a contemporary and digital reinterpretation of these practices. By moving beyond the religious lens, this paper also illustrates how the mindful observance of *Samiti* offers a highly relevant, practical approach for achieving the environmental, ethical, moral and similar goals in today's world.

Classification of Conduct -

In the Jaina ethical framework, the perfection of the conduct is non-negotiable for direct salvation. This absolute standard is embodied in the institution of Monkhood (*Muni Dharma*), characterized by *Sakala Cāritra* (Complete Conduct). For the seeker who possesses the Right Faith and Knowledge but lacks the spiritual or physical strength to get rid of complete renunciation, the tradition prescribes the path of the Householder or Laity (*Śrāvaka Dharma*) known as *Vikala C*āritra.[2] *Am?tacandra* in *Puru?ārthasiddhyupāya*, articulates that while the ultimate goal is to follow the path of total asceticism, those who are unable to follow the strict and complete renunciation must instead adhere to the discipline of partial renunciation prescribed for the laity.[3]

A layperson believes that any sin is a hindrance to liberation but since he is not able to inculcate major vows, he settles with the minor vows which are more moderate. As it is said by *Kundakunda* in *Darśana-Pāhu?a*, one should perform the actions or vows that are within one's capacity, and for those that cannot be performed, one should have faith in them[4]. This distinction of conduct is not an objective distinction but of implementation, scaled down to align with the householder's worldly constraints.

What is *Samiti*?

In the Jain ascetic tradition, specifically within the *digambara* framework, the code of conduct for ascetics is crystallized into twenty-eight Primary Attributes (*Mūla-gu?as*). One of the critical subsets of these attributes is the five *Samiti* (Carefulness), which serve as the applied mechanism for the supreme vow of non-violence. While the Major Vows or *mahāvrata* constitute the intention to abstain from harm, *Samiti* embodies the action required to fulfil that resolve.

Etymologically, the Sanskrit term '*Samiti'* is constructed from the prefix *'sam'* (properly/ rightly), the root *'i'* (to move/act), and the suffix *'ti'* (denoting the act)[5]

Therefore, *Samiti* literally translates to 'the act of rightful and mindful movement,' emphasizing that it is not the cessation of activity, but rather the perfection of conscious, non-violent action. Defined as *samyak prav?tti*, regulated activity undertaken in strict accordance with ethical discipline, *Samiti* demands a state of continuous vigilance for the specific purpose of avoiding injury or pain to living beings.[6]

These five regulations encompass the spectrum of interaction with the world:

1. *Iryā Samiti* (Carefulness in Movement),
2. *Bhā?ā Samiti* (Carefulness in Speech),
3. *E?anā Samiti* (Carefulness in acceptance of Food),
4. *Ādāna-nik?epan Samiti* (Carefulness in Handling and Placing Objects),
5. *Utsarga Samiti* (Carefulness in Disposing).[7]

The detail of each *Samiti* shall be discussed in further sections of this paper.

Why is *Samiti* necessary for Householder?

The universal philosophical oxymoron that 'to restrict is to liberate' is central to the Jain system of vows. Far from being arbitrary limitations, these vows require the conscious restriction of one's actions and desires, transforming everyday conduct into an instrument of inner discipline and liberation.

For a soul to attain liberation, it must completely free itself from all karmas. This requires, first and foremost, the cessation of further karmic inflow. In Jain karma theory, this process is known as *Sa? vara*, which signifies the stoppage of the inflow of karmas into the soul. *Sa? vara*, thus stands in direct opposition to *Āsrava*, the process through which karmas enter the soul. Factors responsible for *Sa? vara* according to the famous *Tattvārthasūtra* are Gupti (control), *Samiti* (carefulness), *Dharma* (virtue), *Anuprek?ā* (contemplation), *Parī?ahajaya* (conquest by endurance), and *Cāritra* (conduct).[8]

If the goal for both, a householder and an ascetic is liberation and the obstacle for both is *Karma*, the method of prevention (*Samvar*) must be applicable to both ascetic and laity, only differing in intensity. Just as the *A?uvrata* serves as the 'molecular' version of the *Mahāvrata*, similarly, *Samiti* also possesses a miniature or scaled-down counterpart for laity which can be known as *A?u-Samiti*.

Additionally, given that the householder is deeply engaged in domestic and professional activities in daily lives, their tendency to commit violence (*Himsa*) is significantly higher than that of an ascetic who has renounced worldly engagement. Thus, it is the householder who is surrounded in complex networks of potential violence and requires *Samiti* more than the ascetics.

In Jain philosophy, violence is categorized into four distinct types: *Sankalpī* (Intentional), *Ārambhī* (Occupational/Domestic), *Udyogī* (Industrial/Professional), and *Virodhī* (Defensive). While a householder is required to completely renounce Intentional violence, they may unavoidably incur the other three types within the limits of necessity.[9]

It is in this delicate balance that the relevance of *Samiti* for the laity becomes undeniable. *Samiti* functions as the ethical governor that prevents permissible 'necessary violence' from degenerating into forbidden 'intentional violence'. For instance, a householder driving a vehicle engages in *Ārambhī Himsa* (necessary activity); however, if this action is performed with negligence (*pramāda*) such as reckless driving, it transforms into *Sankalpī Himsa*.

Textual Evidences of *Samiti* in Lay Practice -

The application of *Samiti* within the householder's ethical framework remains a largely unexplored dimension in modern Jain studies, primarily due to its traditional categorization as an exclusive attribute of the ascetic (*Muni Dharma*). However, this is challenged by specific authoritative texts within the tradition itself. A critical examination of *Śrāvakācāra* literature reveals that the mandate for *Samiti* extends to the laity also as mentioned in the ***Dharmasa? graha Śrāvakācāra*** by *Medhāvī*[10] and the ***Lā?ī Sa? hitā*** by *Rājmalla.*[11]

These scriptures affirm that while the intensity may differ as it differs in the Minor Vows (a?uvrata) the obligation to follow the five *Samiti* is binding upon the laity as well. Beyond these primary sources, various other texts implicitly or explicitly prescribe the observance of *Samiti* for the householder as illustrated by the following references:

1. The ***Tattvārtha Sūtra*** include *Īryā, E?a?ā* and *Ādāna-Nik?epa?a Samiti* as part of the five *Bhāvanās* (contemplations) required to protect a householder's vow of non-violence.[12]
2. The first three transgressions of *Pro?adhopavāsa* given in ***Sāgara Dharmām?ta*** are related to following
3. *samiti* and since this vow is for a Laity, the transgressions are to be avoided by Laity. This includes carefulness in taking or placing items, carefulness in spreading a mat or bed and carefulness in disposing of bodily waste. All these come under the bracket of *Ādāna-Nik?epa?a* and *Vyutsarg samiti*.[13]
4. Commentary of ***Sāgara Dharmām?ta*** explains that a *Śrāvaka* (layperson) observes the *Samiti* (rules of carefulness) as per their capacity. These *Samiti* are not meant only for monks; *Śrāvaka* who aspire to become monks should also practice them. If the *A?uvrata* (minor vows) and *Mahāvrata* (major vows) are accompanied by the *Samiti*, they are called *Sa? yama* (self-restraint); otherwise, they are merely *Virati* (abstinence).[14]
5. Another chapter of the same scripture

Sāgara Dharmām?ta states that the conduct prescribed for the great monks such as the *Samiti* (rules of carefulness), *Gupti* (restraints), and so on should also be practiced by the *Shravak* (householders), after carefully considering their own capacity and their stage of self-restraint.[15]

Thus, this paper posits that the Five *Samiti* are crucial for the householder, serving as the foundational mindfulness required to transition from Partial Conduct toward Complete Conduct since they act as a guard for minor vows of a laity as quoted in *Dharmasa? graha Śrāvakācāra* [16]

The Five *Samiti* in Ascetic, Laity and General citizen's Conduct -

After examining the need for *Samiti* among the laity across various references, this paper now delves into its application through a three-tiered framework based on the practitioner: the Ascetic, the Laity, and the General Citizen. Within the traditional spiritual model, both the ascetic and the householder practice *Samiti* with the ultimate metaphysical goal of *Sa? vara - t*he stoppage of karmic influx. For the Ascetic, this observance is absolute and uncompromising. For the Laity, *Samiti* is applied pragmatically within the boundaries of domestic and occupational life which is the part of their survival. While their adherence is partial due to worldly responsibilities, their foundational motivation remains spiritual: to cultivate continuous mindfulness, halt the influx of new karmas during essential daily routines and practice the ascetic's *Samiti* as per the capability.

However, the utility of *Samiti* can be extended beyond the pursuit of spiritual liberation, serving as a universal ethical blueprint for the general citizen which may not be a cause of *sa? vara* but becomes a profound expression of civic sense and social morality. In this context, the practice of *Samiti* translates directly into everyday responsible behaviour actively conserving the environment for ecological balance. Ultimately, whether pursued for the spiritual cessation of *karma* or for the moral betterment of society, *Samiti* stands as a universal mechanism for replacing negligence with conscious, responsible action.

It is essential to note that the practical, civic application of *Samiti* outlined for the general citizen are equally applicable and binding upon the Jain laity in their everyday lives.

Note - In the following points, the traditional ascetic perspective is presented as articulated in *Mūlācāra* (Mu.) and *Uttarādhyayana* (Ut.), respectively.

***(i) Īryā Samiti* (Carefulness in Movement) -**

(A) *Īryā Samiti* for the ascetic is defined as follows -

The movement performed during the daytime by a monk - who, for a specific purpose, carefully observes the ground up to four cubits ahead and proceeds along a clean and unobstructed path, while consciously avoiding injury to living beings (*Mū.*). Going by paths trodden by men, beasts, carts and looking carefully so as not to occasion the death of any living creature (*Ut.*).

(B) *Īryā Samiti* for the laity can be observed by following behaviours -

(1) Watch out the path while walking or riding bicycle to avoid injury to minute creatures.

(2) Engage only in purposeful movement, strictly avoiding aimless wandering.

(C) *Īryā Samiti* for the general citizen can be practiced through following actions -

(1) Strictly adhere to traffic rules, including the use of footpaths, zebra crossings, and traffic signals to prevent injury to any living being.

(2) Maintain regulated speed limits and avoid reckless driving.

(3) Avoid distractions such as talking on the phone, texting, or gossiping while walking to ensure full mindfulness.

(4) Prioritize walking or cycling for short distances to minimize environmental harm.

(5) Utilize public transport or carpooling whenever possible to reduce individual carbon

footprint and violence.

(6) Choose eco-friendly vehicles (electric/low-emission) to limit harm to air and earth bodies.

(ii) Bhasha Samiti (Carefulness in Speech) -

(A) *Bhā?ā Samiti* for the ascetic is defined as follows -

Refraining from gossip, abusive language, harsh speech, slander, self-praise, and idle or harmful talk, one should speak in a manner that is beneficial both to oneself and to others (*Mū.*). Anger, pride, deceit and greed, laughter, fear, loquacity and slander; these eight faults should a well-disciplined monk avoid; he should use blameless and concise speech at the proper time (*Ut.*).

(B) *Bhā?ā Samiti* for the laity can be observed by following behaviours -

(1) Refrain from speech motivated by anger, pride, deceit, or greed to prevent verbal violence.

(2) Practice *Hit-Mit-Priya* speech : speak only what is beneficial, measured, and sweet.

(3) Abstain from self-praise (*ātma-praśa? sā*) and the criticism or slander of others (*para-nindā*).

(4) Refrain from using harsh, demotivating, or humiliating language under the guise of feedback.

(C) *Bhā?ā Samiti* for the general citizen can be practiced through following actions -

(1) Avoid gossip, including idle talk about politics, food, or other people's affairs.

(2) Maintain digital hygiene by avoiding trolling, spreading fake news, or posting mindless comments on social media.

(3) Speak only when the time, place, and occasion are appropriate, favouring silence over unnecessary chatter.

(4) Avoid exaggeration and ensure all statements are grounded in factual truth.

***(iii) E?a?ā Samiti* (Carefulness in Acceptance of Food) -**

(A) *E?a?ā Samiti* for the ascetic is defined as follows -

Partaking of food that is free from the forty-six faults, obtained through proper means, purified according to the ninefold criteria, and consumed with equanimity toward hot and cold (*Mū.*). A monk should avoid the faults in the search, in the receiving, and in the use of the three kinds of objects, viz. food, articles of use, and lodging (*Ut.*).

(B) *E?a?ā Samiti* for the laity can be observed by following behaviours -

(1) Strictly avoid the five categories of *Abhak?ya* (forbidden foods): *Trāsa-ghāta* (e.g., meat, honey), *Bahu-ghāta* (e.g., root vegetables), *Nāśa-kāraka* (e.g., alcohol), *Ani??akāraka* (e.g., unhealthy/harmful combinations), and *Anupasevya* (e.g., saliva-tainted or improper items).

(2) Renounce *Rātri-bhojana* (night eating) completely to prevent injury to the micro-organisms that proliferate in the absence of sunlight.

(3) Uphold strict hygiene and purity in the kitchen area to prevent the breeding of insects and bacteria.

(4) Source groceries and vegetable solely through ethical, fair-trade means, ensuring no exploitation is involved in the procurement.

(5) Exercise moderation in consumption, eating slightly less than one's appetite to control lethargy and passions.

(6) During food preparation, mindfully observe Jain methodology, ensuring that grains and other ingredients are meticulously inspected and used strictly within their prescribed shelf-life.

(C) *E?a?ā Samiti* for the general citizen can be practiced through following actions -

(1) Mindful consumption and the strict avoidance of food wastage, ensuring a more equitable distribution of resources within society

while simultaneously promoting optimal personal health.

(2) Maintain mindfulness during meals by refraining from distractions like television, mobile phones, or idle gossip.

(3) Abstain from consuming food prepared in unregulated or impure environments.

(4) Practice strict non-wastage by taking only what is needed and never leaving leftovers on the plate.

***(iv) Ādāna-Nik?epa?a Samiti* (Carefulness in Handling and Placing Objects) -**

(A) *Ādāna-Nik?epa?a Samiti* for the ascetic is defined as follows -

The careful and deliberate acceptance and placement of instruments of knowledge, instruments of self-restraint, instruments of cleanliness, or any other necessary articles (*Mū.*). Receiving and keeping of the things necessary for religious exercises, after having carefully examined them (*Ut.*).

(B) *Ādāna-Nik?epa?a Samiti* for the laity can be observed by following behaviours -

(1) Inspect and clean floor mats or seating areas gently before sitting in temples or home shrines, to avoid harming unseen insects.

(2) Lift heavy objects (furniture, cylinders) carefully rather than dragging them across the floor to prevent violence.

(3) Maintain meticulous cleanliness in the kitchen and living areas to prevent pest infestation, thereby reducing the need for violent pest control.

(4) Organize shoes, slippers and clothes neatly in designated racks, inspecting them before wear to ensure no small creatures are hiding inside.

(C) *Ādāna-Nik?epa?a Samiti* for the general citizen can be practiced by following actions -

(1) Handle dangerous items like medicines, knives, and scissors with extreme care and store them securely to prevent accidental injury.

(2) Park vehicles responsibly in designated spots, checking underneath to ensure no sleeping animals are harmed.

(3) Segregate unwashed and washed clothes/utensils strictly in fixed places to maintain hygiene and prevent the growth of bacteria.

(4) Ensure general household hygiene is maintained to minimize the accumulation of dust and dirt.

***(v) Vyutsarga Samiti* (Carefulness in Disposing) -**

(A) *Vyutsarga Samiti* for the ascetic is defined as follows -

The elimination of excreta and bodily waste in a secluded place that is free from living beings, away from residence, concealed, spacious, and free from obstruction or opposition (*Mū.*) Performing the operations of nature in an unfrequented place (*Ut.*).

(B) *Vyutsarga Samiti* for the laity can be observed by following behaviours -

(1) Practice by strictly using clean, designated sanitary facilities for urination and defecation, ensuring no living beings are harmed in the process.

(2) Ensure proper hand hygiene by washing your hands thoroughly after sneezing or coughing, and cover your mouth to prevent saliva from contaminating surrounding surfaces or objects.

(C) *Vyutsarga Samiti* for the general citizen can be practiced through following actions -

(1) Segregate household waste rigorously into dry (recyclable) and wet (compostable) bins to facilitate non-violent waste processing.

(2) Clean bodily secretions (nose, ears, eyes) using proper cloth or tissue and dispose them off immediately to maintain hygiene.

(3) Strictly refrain from spitting in public or open spaces to prevent the spread of germs

and disrespect to the environment.

(4) Cover the mouth fully while coughing or sneezing to prevent the dispersal of aerosols and protect others from infection.

(5) Collect and dispose off nail clippings and hair safely to prevent them from becoming breeding grounds for bacteria or being ingested by organisms.

(6) Never dispose off trash or bodily waste into water bodies (rivers, ponds etc.) to protect aquatic life.

(7) Strictly abstain from littering in public or private spaces, ensuring all refuse is placed in proper receptacles.

(8) Actively reduce the use of single-use plastics and non-biodegradable materials that cause long-term harm to the earth.

(9) Practice responsible e-waste disposal by recycling batteries and electronics through certified channels rather than general trash.

(10) Maintain digital hygiene by decluttering or maintaining the files and folders.

***Bhāva Samiti* -**

Although the popular interpretation of *Samiti*, as discussed above, limits the concept to the act of saving lives of living beings, *Pa??ita ?odaramala* deeply analyses *Samiti* in the *Mok?amārga Prakāśaka* to give a deeper nature of *Samiti*. He raises a critical point : if the simple act of saving living beings causes *Sa? vara* (the stoppage of karma), then what causes *Pu?ya-bandha* (the bondage of good karma)? He clarifies that the intention to save a living being is driven by mild passion (*manda-ka?āya*), which only results in *Pu?ya-bandha* and not *Sa? vara*. Thus, true *Samiti* is not merely a *kriyā* (physical action) of the body; it is a *Bhāv* (thoughts) of the consciousness, where the protection of life is the natural byproduct of a vigilant mind.[17]

It requires the simultaneous presence of three elements: the physical action, the mindful thought behind that action, and an underlying state of passionless-ness (*vītarāgatā*). For instance, true *Īryā Samiti* occurs only when the physical act of walking carefully is combined with mindful intent behind it and passionless-ness. This required level of passionless-ness depends on one's stage of spiritual development (*Gu?asthāna*). For a layperson in the 5th stage, it means the absence of two levels of passion or the four partial vow preventing passion or *ka?āya cauka?ī*[18], whereas for a monk in the 6th stage, it requires the absence of three levels of passion or the perfect right conduct preventing passion.

With a clear understanding of *Bhāv Samiti* (internal intent), we must apply this crucial dimension to all the points discussed above. Whenever we study *Samiti* or any other vow, it must be approached from this internal perspective. Without this foundation of passionless-ness, these practices cannot effectively cause the stoppage of karma (*Sa? vara*) for either the monk or the layperson.

Conclusion -

While A?uvrata (minor vows) primarily prescribe what ought to be avoided, *Samiti* prescribes what ought to be practiced. In essence, *Samiti* is not merely the cessation of action but the regulation of vigilant action (*Samyak Prav?tti*) undertaken to prevent violence toward living beings. It encompasses carefulness in movement, carefulness in speech, carefulness in the acceptance of food, carefulness in handling and placing objects, and carefulness in disposal. The carefulness prioritizes the protection of even the minutest life forms over personal comfort or bodily needs. These bodily actions accompanied with the intention behind them and the passionless serve the true purpose of *Samiti*.

For moral and civilized conduct too, one must follow these *samiti*. Thus, *Samiti* is not merely an ascetic ritual but a practical mechanism for the laity to maintain the boundary between survival and negligence. Mindfulness acts as the conscious antidote to negligence (*pramāda*) by

replacing absent-mindedness with vigilant awareness, thereby cutting off the root of violence. *Samiti* makes inner carefulness visible and effective by turning awareness into disciplined daily behaviour that reduces violence. Hence, *Samiti* is not a ritual for the chosen few, but a universal method of mindfulness.

By adopting *Samiti*, the householder transforms mundane daily activities (walking, talking, eating) into spiritual practice (*sādhana*), bridging the gap between the material and the spiritual, ultimately, progressing toward the goal of liberation through the attainment of complete conduct. Thus, *Samiti* serves a dual purpose: it purifies the soul of the aspirant while simultaneously acting as a shield against ecological destruction, protecting the diverse life forms that rely on those habitats and ensuring a life that is beneficial not just for the self, but for the entire web of existence. By consciously restricting how much we take from the earth and carefully watching where we step, what we consume, and how we dispose of waste, the internal spiritual discipline naturally becomes an active, physical defense of the environment. Personal liberation and planetary preservation are achieved through these same mindful actions.

In nutshell, *Samiti* plays a crucial role in stopping the influx of *karma*, ensuring that such restraint is practiced with mindfulness and precision. Its primary function is to neutralize negligence, the root cause of violence, by ensuring extreme carefulness during all essential daily activities.

Primary sources -

1. Am?tacandra. (1933). *Puru?ārtha-siddhyupāya* (A. P. Jain, Trans.). The Central Jaina Publishing House.
2. Āśādhara, Pt. (2004). *Sāgara Dharmām?ta* (Kailāśacandra, Comm.). Bhāratīya Jñānapī?ha.
3. Baraiyya, G. (2004). *Primer of Jain principles: Jain siddhānta praveśikā* (K. Gosalia, Trans.). Jain Svādhyāya Mandir, Songadh, Florida.
4. Bhargava, D. (1968). *Jaina ethics*. Motilal Banarsidass.
5. Jain, V. (2023). *Jain ācāra pradīpikā*. Bhāratīya Jñānapī?ha.
6. Jacobi, H. (Trans.). (2010). *Uttarādhyayana Sūtra* (The Sacred Books of the East, Vol. 45, Ch. 24). Motilal Banarsidass.
7. Kundakunda. (2019). *Darśanapāhu?a* (Pranamyasāgara, Trans. & Comm.). Ācārya Akala?kadeva Jainvidyā Śodhalaya Samiti, Ujjain.
8. Rājmalla. (1984). *Lā?ī Sa? hitā* (Lālarāma, Trans. & Comm.). Mā?ikacandra Digambara Jain Granthamālā Samiti.
9. Samantabhadra. (2022). *Ratnakara??a-śrāvakācāra* (H. Lodha, Trans.). Jain Hemant Lodha.
10. ?odaramala, Bhāva Pa??ita. (1992). *Kundakunda kahā? tīrtha?* (Br. Hemacandra Jain, Trans.). Surak?ā Trust, Bombay.
11. Umāsvāmi. (1960). *Tattvārtha Sūtra: That which is* (S. A. Jain, Trans.). Vīra Śāsana Sa?gha.
12. Va??akera. (1999). *Mūlācāra*. Bhāratīya Jñānapī?ha.
13. Unknown. (1910). *Dharmasa?graha śrāvakācāra*.
14. Pūjyapāda. (2005). *Sarvārthasiddhi* (S. Phūlacandra, Trans.). Bhāratīya Jñānapī?ha.

Secondary sources -

1. Saad, K. (2023, January 1). *Environmental issues: Causes, effects, solutions*.
2. Kimber, R. B. (n.d.). *Environmental problems and solutions*.

References

1. Tattvārthasūtra 1.1
2. Ratnakara??a Śrāvakācāra verse 50
3. Puru?ārthasiddhyupāya verse 17
4. Darśana pāhu?a verse 22
5. ? ?+ ?? ?+ ? ????
6. Sarvārthasiddhi Chapter 9, verse 2, 789
7. Mūlācāra verse 10
8. Tattvārthasūtra 9.2
9. Sāgara Dharmām?ta Chapter 4, verse 12
10. Dharmasa? graha Śrāvakācāra Chapter 9, verse 4-8
11. Lā?ī Sa? hitā chapter 5, verse 185
12. Tattvārthasūtra 7.4
13. Sāgara Dharmām?ta Chapter 5, verse 40
14. Sāgara Dharmām?ta Chapter 5, verse 55
15. Sāgara Dharmām?ta Chapter 7, verse 59
16. Dharmasa? graha Śrāvakācāra verse 1, 2
17. Mok?amārga Prakāśaka chapter 7
18. ka?āya cauka?ī, Tattvārthasūtra 8.9 .

ISSN : 2394-4366

Received: 17 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Carys Davies : A Writer of Human Emotions

- Ishwar Chandra Vidyasagar Agnihotri
Assistant Professor - Department of English, Laxmi Yadunanden Degree College, Station Road Kaimgang, Kasganj- 209502 (U.P.)

Email: icvsagnihotri@gmail.com

Abstract

Carys Davies is a prominent English short story writer and novelist of the 21st century. She is the recipient of the Royal Society of Literature's V.S. Pritchett Prize, the Society of Authors' Olive Cook Short Story Award, a Northern Writers' Award, a Cullman Fellowship at the New York Public Library.She is the author of the two collections of short stories, SOME NEW AMBUSH and THE REDEMPTION OF GALEN PIKE.In all her stories she gives a psychological description of her characters and presents their interior self. In her stories what characters think is more important than what they do. They have emotions of love, affection, hatred, revenge, greed, possession, grief, repentance, compassion towards animals and mentally disabled persons, etc. which are responsible for their actions and create a deep impact on their mutual and family relations and on the social harmony. Her characters feel for each other, share their joys and sorrows, and try to make others happy. They dedicate themselves to the service of all in need. They spread humanity around them and make life worth living. In her stories the reader lives with characters and shares their emotions. This is why all her stories end up with the feeling of satisfaction, not with those of grief and remorse.

Key Words- ***commandments, groaned, infuriated, felon, possession, psyche, desperate, gobbling, fabricated, rosette, exaltation, murmuration.***

Carys Davies is a writer of human emotions.We find the moral strength of a woman in Waking the Princess,the psyche of a childless woman in Pied Piper,one-sided love and the knowledge of birds in Metamorphosis, power of love and a criminal's psychology in The Redemption of Galen Pike, the real picture of husband and wife relations in The Travellers,and man and animal closeness in Boot.

Davies' story WAKING THE PRINCESS brings to light the moral strength of a widow who never succumbs to the amorous proposals and persuasions of her neighbour, and never loses her dignity before him. In the story Elizabeth, the widow of a Customs House clerk, lives in a small dark house with her children and

manages to run her family in poverty. A young man Henry of the same town desires to have her. In order to attract her, he brings her gifts like paper-flowers, tea canister, a pair of combs, etc. But every time she throws them out of her home for others to take away. She screws up his letters and poems also in her fist and discards them into the sewers. Once, overpowered with physical hunger, when he tries to kiss her, she violently reacts to it, abuses him and shuts the door. "I had tried to kiss her once outside her front door... a terrible, greedy, darting, desperate sort of lunge I have always regretted... and after that she took to shouting at me through the window when I came to call. 'Lizard! she shouted. 'Toad!'... she closed the door in my face and shouted at me through the window and I was left to loiter in the street outside her house with nothing to do but wait and watch for a glimpse of her."[1]

Then he decides to attract by giving her some unique present. He makes a smooth and shining cushion carpet with his own hands from different raw materials like China clay, linseed oil, cork, resin, jute, pumic, varnish etc. Hoping to succeed in his mission to influence the woman and taking the carpet wrapped in paper, he reaches her home late in the evening with throbbing heart after a long gap of nearly one year. As expected, she becomes excited and excessively happy to see this precious present. First time she addresses him by his name Henry asking him its name and repeating it as Linoleum. But the man, seeing it as an opportunity not knowing how to win the heart of a woman, starts kissing her and opening her clothes. "But I lunged forward then, burying my face in her hair and covering her neck with dry, hungry kisses. 'Elizabeth,' I groaned and pulled her close. One of my knees began to pry its way between her sturdy legs. My fingers fumbled with the tiny buttons at her throat."[2] Her happiness and enthusiasm suddenly vanishes; she gets infuriated, abuses him and pushes him out saying, " 'Snake,'... 'Goat,' she said, in a hard, quiet voice and pushed the precious cloth across the floor towards me with the edge of her toe.... and said, how could I ever have thought she would be that easy?"[3]

Davies' story PIED PIPER is also a psychological analysis of a childless woman who desperately desires for a baby and develops peculiar habit to avoid her loneliness. Mary Owen, a middle aged forty-six years old fat woman, lives with her husband Will in a valley town. There is a coal mine behind the town, and an ever-increasing slag-heap in the form of a hill just beside the children school. Mary married Will at the age of twenty, and even after twenty six years of their married life they couldn't get a child. In her depression she develops strong desire for cockles (mollusk) to avoid her loneliness and grief. On every Tuesday she goes by bus to the Ogmore beach to collect cockles in her blue plastic basket. "She always came on Tuesdays to look for cockles. She'd developed a yen for them, dressed in vinegar and eaten with spoon.... She was gobbling up her own bitterness with each sour bowl."[4]

On her forty-sixth birthday, a Tuesday, when Mary reaches the lonely beach, she finds a new-born male baby wrapped in white Lenin cloth and stained with sand on the mouth. Unexpectedly getting what she has desired all her life, she bends over the child but hesitates to lift him due to her mother's teaching in her childhood. "As a girl, she'd taken things. She had a longing for the nice things other people had in their houses ... But Mary's mother had always discovered her daughter's crimes. She'd reminded Mary of the Commandments. Thou shalt not covet. Thou shalt not steal."[5] She suspects that like other stolen things of childhood she may not have to return this gift of God. But her overpowering desire justifies it, and taking the baby she returns home. She fabricates a story of giving birth to the baby on the beach and organises a party. All men and women join the party with attractive gifts for the baby to make her happy. "We all wanted her to be happy, you see, to have what she wanted, to have what the rest of us had."[6] Mr. Davies, the minister of the

town chapel, baptises him and names him Thomas. Time passes, child grows big with the affection of his parents, and at the age of four years is sent, along with other children of the town, to the same school near the slag-hill. After two years of his schooling, one day when Thomas is not sent to school due to illness, the slag-hill collapses on the school and all the hundred and twenty-two children of the town get buried under it, leaving all the women of the town childless except Mary. This creates a vacuum in the town and shakes their faith in God. The minister Mr. Davies is the most affected. He leaves the chapel for ever and become silent after this incident. "He didn't come back into the chapel after that, and spent his days at home."[7] Mary goes to Mr. Davies one night with her husband and confesses the truth about Thomas in front of him. She also thinks herself responsible for the mishap. Next day Mary's family leaves the town to settle somewhere else, and the narrator woman who has also lost her child with others, begins to go to the beach at Ogmore with the hope of the same miracle again.

In METAMORPHOSIS Davies describes the psychology of a one-sided lover and its impact on his life. Five persons - Howard (the narrator, forty-eight years), Arthur (narrator's friend), Philip Meakin (in early thirties), Gail and Alice (a beautiful girl) are the employees in a library in Euston. Howard falls in deep love with Alice and she becomes his existence. But his love is only one sided; the creation of his own heart as Alice is unknown of it. Alice and Philip Meakin love each other and Alice marries Philip. This breaks the heart of Howard. He can't adapt himself to the situation. In emotional excitement he leaves the job, remains at home, feels empty, aimless and almost dead.To take him away from Alice's memory, he reads many bird books and discovers new knowledge and strange facts about them. He comes to know that the wandering albatross possesses a special locking device which fixes its giant wings in position, allowing it to float above the ocean for weeks and months on end without touching land. He also comes to know about some collective nouns of birds like a parliament of owls, an exaltation of larks, a murmuration of starlings, etc. He sticks a bird slogan on his shaving-mirror.

Hope is the thing with feathers that perches in the soul.[8]

He watches a bird-video The Flight of Eagles as many as twenty-five times and acquires strange facts about them. He knows that the world's largest eagle Harpagornis, now extinct, with nine foot wingspan preyed on the large flightless ostrich-like moas of New Zealand. He also comes to know that a big eagle beats its wings twenty-four times a minute. This fascinates him and he practices it daily in the evening using his kitchen-clock and wants to fly like an eagle. "I begin flapping my arms and counting. One potato, two potato. Very slow: pota-to. I have practised this at home a thousand times, with and without the video. When I count, and flip my arms, it gives exactly the right number of wing beats per minute. Twenty-four. The same as an eagle."[9] Ultimately he leaves Euston for Manchester with the memories of Alice and Arthur, and the dream of an eagle like flight.

THE REDEMPTION OF GALEN PIKE, another story of Davies, emphasizes the power of simple, selfless, humanitarian and Gandhian behaviour (hate the sin, not the sinner) to turn the heart of even the hardest person of the world. This is the story of a thirty-six years old Quaker spinster named Patience Haig who lives in a small village of Piper City of the United States with her brother Walter Haig. She is the member of a religious and social group named 'Piper City Friends' Meeting' comprising of nineteen members, and working for the salvation and social welfare of the people believing that the light of God shines in every man.

There is a prison in that town named Piper City jail house where criminals are kept before the execution of death punishment. For years Patience has been visiting these felons to uplift their spirits

and brighten the light of God in them. She believes in the precept that "If the preparation of the heart is taken seriously the right words will come."[10] Once an obstinate felon named Galen Pike is brought to the jail to be kept there for seven days before the capital punishment. He is kept alone in a twelve feet square cell, tied to a chair with rope and chains. Patience visits Pike for the first time with her sweet behaviour, warm biscuits and strawberry cordial. " 'Good morning Mr. Pike,' she said, stepping through the barred door and hearing it clang behind her.... 'I have warm biscuits,' continued Patience, setting her basket on the narrow table between them, 'and strawberry cordial.'... 'I am your friend.' "[11] In her sweet, simple and friendly manner she serves the refreshment to Pike and tells him that she would daily come to him at eleven in the morning and sit near him as a friend to cheer his spirits up according to his wish. "She told Galen Pike that she would sit with him; that she would come every morning if he desired it. In the meantime, if he wanted to, he could unburden himself about what he had done, she would not judge him. Or they could talk about other things, or if he liked she would read to him, or they might sit in silence if he preferred. She didn't mind in the least, she said, if they sat in silence, she was used to silence, she liked it almost more than speaking."[12]

In few days she gradually changes the heart of Pike by patiently answering his insulting remarks and questions. One day when Patience does not visit him due to her grief after her demand of making a hostel for the unwed mothers is rejected by the Mayor of the town Byron Lym, Pike keeps waiting for her throughout the day and misses her.This shows a gradual shining of the light of God in him. Next day when Patience comes to meet him, he becomes passionate and discloses his dark past before her. "Since his mother died he'd done all manner of wicked things. Since she passed away, years and years and years ago, there'd been no one to tell him how to behave; no one in the world he'd wanted to please, whose good opinion mattered at all. If he'd wanted to do something, he'd gone ahead and done it."[13] He feels the image of his mother in Patience and says, "You remind me, a little, Miss Haig, of my mother."[14] He also presents a self-made rosette made out of one of his shirt buttons and fibres of the rope he was tied with. He requests Patience to shave him the next day (the day of his execution), cut his hair and bring him a clean shirt to wear before death. He also requests her to be present at the place of his hanging. Next day at the place of execution, on being asked if he has any last word to express, he expresses his gratefulness to Patience and requests her not to think bad of him."Pike said he wanted to thank Miss Patience for the tasty biscuits and the cordial and the clean shirt and the shave but most of all he wanted to thank her for her sweet quiet company. She was the best and kindest person he had ever known. He had not deserved her but he was grateful and he wished he had something to give her, some small remembrance or lasting token of appreciation to show his gratitude, but he had nothing and all he could hope was that if she ever thought of him after he was dead it would not be badly."[15]

After his hanging Patience, despite having complete control over her emotions of happiness and grief, can't stop crying. "Miss Haig struggled with her famous composure; that behind the rough snap of the cloth and the clatter of the scaffold's wooden machinery, he heard a small high cry escape from her plain upright figure."[16]

In the story THE TRAVELLERS Davies explains how sometimes bitter relations in married life reach such an extent that they never come to an end and continue till the physical existence of husband and wife. This situation arises mainly due to the sense of ego in life partners. In the story Harriet and her husband Geoffrey, in Birmingham develop differences between them over a small issue of route selection during their trips to relatives. Gradually the differences increase, their love is lost and she starts hating her husband. "I

thought of how my heart shrivelled up into a tiny dry peanut without the tiniest drop of love left inside it for Geoffrey, until the only thing left to do was to ... cry and silently repeat the chant, I hate you Geoffrey Parker, I hate you, I hate you, I hate you.[17]" Ultimately she decides to break relationship. She leaves her home in search of a new peaceful life and travels a long distance to Siberia. There she opens an inn in a small town to provide warm food and night stay to travellers with a kitchen, a room with a fireplace for dinner, a dormitory with six bunks and two private rooms, each with a single bed. She appoints a hard working and reliable local man Pyotr for her assistance and outside works.

Time passes and she gets settled into a peaceful routine enjoying her cooking, serving travellers and learning Russian. But, once in a cold winter night when all the travellers have gone to sleep after taking dinner and Harriet and Pyotr are finishing the work, a sledge stops outside. A wild and fierce man looking like a Cossack bursts in, sits in front of the fire and demands vodka (hot drink). They see a women (Cossack's wife) sitting on the sledge wrapped only in a shawl covered with snow in that frozen night. From their behaviour it seems that no love is lost between them and they hate each other. "...she was as angry as he was. Both of them had exactly the same expression- sullen, furious, unyielding. She hated him and he hated her back. You could feel it, plain as anything, the poison between them."[18]

After sometime the Cossack goes out to the sledge in anger, asks his wife to come in, but she refuses. On this he angrily throws his coat on her shoulders and goes back in and sits in front of the fire. Harriet, though frightened with the unusual appearance and behaviour of the Cossack, goes twice to the woman in the sledge to give her a fur blanket and stew, and to bring her in. But she refuses to come in as long as her husband is there. "Twice in the night I went out with Pyotr, once with a fur wrap and once with some stew; she thanked us for both but when I said, would she come in out of the cold and sit by the fire? she shook her head. 'Not if he's in there."[19] In the early morning Harriet once more goes out with Pyotr and finds the woman stiff and stuck to the sledge with snow. They find her dead.

This incident which has taken the life of the woman due to their hatred for each other and unpleasant marital relations, affects Harriet so deeply that her anger for her husband dispels and her ego vanishes. She realises her mistake and decides to go back to her husband and lead a happy married life with him. "I would walk out into the snow and climb on the first train that was heading west out of Siberia and I would keep going until I got back to Geoffrey, and once I was there I would do what I should have done years ago,...I would take Geoffrey's hands in mine and tell him I loved him."[20]

Davies' story BOOT is the story of a pet dog who begins to think himself as an important and governing member of the family, as important as the master himself. Nicky and her husband Ian live in a beach town with their girl baby and their pet dog Boot. Nicky loves Boot too much and treats and feeds him like her own baby. Boot follows her everywhere; in the kitchen, in the drawing-room, in the bedroom, upstairs, outside during rides in car and during the baby walk in the pram. He barks and rushes at the people who come to meet them. "Apparently it made him feel important. Apparently it made him think he owned us, it made him think we belonged to him."[21]

She never stops Boot from doing anything. She allows him to rest on the sofa in the afternoon and lie on the threshold of their bedroom. This gives Boot a sense of importance and he starts behaving like that. Boot breaks the limit when he begins to sleep with Nicky on her bed beside her in Ian's absence. It reaches the climax when Boot bites Ian when he tries to lie next to Nicky on their bed after his return from a trip early in the morning. "No, I should have said, on the nights when Ian's

work took him out of town, and he started creeping into our bed, stretching out in the empty hollow on Ian's side. No, I should have said, because when Ian's taxi brought him home from the airport very early one morning, and he tried to slip into bed next to me, Boot didn't like it, he didn't like it at all."[22]

After this incident all their friends and relatives blame Nicky for her excessive love to Boot. "I'd misled him, apparently. I'd confused him. Everything I'd done, they explained, had combined to encourage him in his delusions."[23]

On the suggestion of their friends and vet's assistant they begin to deal with Boot very strictly. Ian brings his sister's cat Beulah and a guinea pig from a pet shop to make Boot feel that his rank comes at last even after other animals in the family. Whenever Boot intrudes, Ian gives him a sharp kick. After some resistance for few days Boot begins to realise his new position and becomes silent and compromising. "Boot changed. By the end of a few weeks he was a different animal. Quiet, docile, humble. He slept obediently on the kitchen floor. When I came down in the mornings, he just lifted his shoe-shaped nose in a sort of muted, gentle greeting."[24] Everything becomes normal. Ian becomes happy. But seeing the miserable and neglected condition of Boot and his pathetic face Nicky becomes internally grieved and sympathetic to him and wishes for the previous position of Boot in the family. "Only that it killed me to see him like that. Only that I knew I liked him better the way he was before, that I preferred things the way they used to be, and that there had always been more than two options."[25]

References

1. Carys Davies- "WAKING THE PRINCESS," SOME NEW AMBUSH, (London: SALT Publishing, 2011), pp.10-11.
2. Ibid., p.15.
3. Ibid., p.15.
4. Carys Davies- "PIED PIPER," SOME NEW AMBUSH, (London: SALT Publishing, 2011), p.46.
5. Ibid., p.48.
6. Ibid., p.51.
7. Ibid., p.54.
8. Carys Davies - "METAMORPHOSIS," SOME NEW AMBUSH, (London : SALT Publishing, 2011), p.82.
9. Ibid., p.87.
10. Carys Davies - "THE REDEMPTION OF GALEN PIKE," THE REDEMPTION OF GALEN PIKE, (Norfolk : SALT, 2015), p.91.
11. Ibid., p.92.
12. Ibid., p.93.
13. Ibid., p.102.
14. Ibid., p.103.
15. Ibid., p.104.
16. Ibid., p.104.
17. Carys Davies - "THE TRAVELERS," THE REDEMPTION OF GALEN PIKE, (Norfolk: SALT, 2015), p.34.
18. Ibid., p.28.
19. Ibid., p.30.
20. Ibid., p.35.
21. Carys Davies - "BOOT," SOME NEW AMBUSH, (London : SALT Publishing, 2011), p.56.
22. Ibid., p.57.
23. Ibid., p.57.
24. Ibid., p.58.
25. Ibid., 3.59.

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 19 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

The Impact of Active vs Passive Social Media Use in Emotional Regulations Among Indian Youth : A Qualitative Study

- Prof. Neeta Mishra
Professor -
Department of Psychology,
Mahila Mahavidyalaya,
Kidwai Nagar, Kanpur-208011 (U.P.)

Email:
neetashumishra@gmail.com

- Prof. Pratibha Srivastava
Professor & Head,-
Department of Psychology,
Mahila Mahavidyalaya,
Kidwai Nagar, Kanpur-208011 (U.P.)

Email:
pratibhasri1504@gmail.com

Abstract

In this era of 21st century,we witness a drastic technical advancement in every sphere of life. The various platforms of Social Media are one such miraculous development that has influenced the day to day life of one and all these days. The call of reach from these platforms is so intense that no person in the population is left uneffected from it. The difference is that some are active participant on these platforms while few are passively engaged there . Both kind of participation is time taking and engaging as they are really good source of worldwide news and information. They are helpful for us to express our views and opinions as well,specially in this era when nobody is seen free to spare time to listen someone else.

If evaluating the importance of social media from the view how it impacts emotional regulation among indian youth, it is found through this theoretical research that active and passive participation both in general but specifically the active participation of youth on social media is quite good instrument of emotional release as well as helpful in getting acknowledged with the like minded stories and posts. Also the posts against our thought process are helpful to understand the opinions of people having different mindset and to understand the difference in values , needs , preferences and inferences drawn by different people on the same issue. In another words, it expands our evaluative and analytical power and thus chances are less of becoming blind followers of any particular philosophy. In essence ,it is authentically to admit that active or passive participation on social media platforms does impact the emotional regulation among the readers in general and specifically the youth.

Key Words : ***Emotional Regulations. Emotional regulation, Active participation, Social media platforms, Informative, Validating, Versatile information, Cultural pressure, Passive scrolling.***

Introduction-

The central argument behind this psychological research paper is deliberately nuanced : the psychological consequences of

social media are unlikely to be explained by time spent online alone; what users do online, why they do it, and how they respond emotionally to online experiences are likely to matter substantially.

Recent research supports this direction. A 2024 meta-analysis of 141 studies involving approximately 145,000 participants found that most associations between active/passive social-media use and well-being were small, while context and user characteristics substantially altered outcomes. An experimental study of young people aged 16–24 also found that both active and passive use could alleviate experimentally induced sad mood, but active use was associated with more functional emotion-regulation strategies. This makes the Indian context particularly interesting because existing Indian research has generally examined overall social-media use and mental health, rather than distinguishing the psychological consequences of active and passive use.

Social media has become an integral part of everyday life for young people. Platforms such as Instagram, YouTube, WhatsApp, Snapchat, Facebook and X are used not merely for communication but also for entertainment, self-expression, identity formation, information seeking, social validation and emotional coping.

The psychological significance of social media, however, cannot be adequately understood by measuring only the amount of time an individual spends online. Two individuals may spend an identical amount of time on the same platform while having very different psychological experiences. One may spend that time communicating with friends, sharing experiences and seeking emotional support, whereas another may spend it continuously scrolling through other people's carefully curated lives. The former represents a relatively active form of social-media engagement, while the latter is predominantly passive consumption.

The distinction between active and passive use originates from the active-passive model of social-network-site use. Earlier formulations suggested that active interaction could facilitate social connection and well-being, whereas passive consumption could promote social comparison and poorer psychological outcomes. More recent work has refined this position, emphasizing that neither active use is universally beneficial nor passive use universally harmful. The psychological consequences depend on the specific activity, social context and characteristics of the user.

This distinction becomes particularly important when examining emotional regulation. Emotional regulation refers to the processes through which individuals influence the intensity, duration, expression and interpretation of their emotional experiences. Social media can become part of these processes. Young people may use it to distract themselves from unpleasant emotions, obtain reassurance, communicate distress, seek social support, reframe experiences or express positive emotions. At the same time, passive browsing may expose users to social comparison, idealized lifestyles, negative news, conflict and continuous streams of emotionally stimulating content.

Research conducted in India has already demonstrated an association between social-media use and psychological outcomes among adolescents and young adults. An Indian adolescent cohort study using data from Uttar Pradesh and Bihar examined the bidirectional relationship between social-media use and depressive symptoms, highlighting that the relationship is not necessarily one-directional. Similarly, qualitative research involving Indian adolescents aged 14–23 has reported associations between excessive social-media use, stress, anxiety, depression and sleep disruption.

However, a significant gap remains: How does the manner of social-media engagement active versus passive relate specifically to emotional regulation among Indian youth?

The proposed study seeks to address this question.

Background of the Study-

Youth is a developmental period characterized by significant changes in identity,

interpersonal relationships, emotional maturity and social belonging. Social approval becomes particularly important during adolescence and emerging adulthood, while the ability to regulate emotions continues to develop through this period.

Social media introduces a digital environment in which social feedback is highly visible and frequently quantified through likes, comments, shares, views and follower counts.

This environment can influence emotional regulation through several mechanisms.

Active Social-Media Use-

Active use may include- (1) Messaging friends, (2) Commenting on posts, (3) Sharing personal experiences, (4) Posting photographs or videos, (5) Participating in online communities, (6) Seeking advice, (7) Providing emotional support, (8) Engaging in meaningful discussions, (9) Creating original content.

Such activities can provide opportunities for social connection, emotional expression, interpersonal reassurance and perceived support.

Passive Social-Media Use-

Passive use may include- (1) Scrolling through feeds, (2) Viewing other people's photographs, (3) Watching content without interacting, (4) Reading comments without participating, (5) Monitoring other people's lives, (6) Browsing profiles, (7) Consuming algorithmically recommended content without contributing.

Passive use may sometimes serve useful functions such as entertainment, information gathering or temporary distraction. However, it can also encourage upward social comparison, rumination, envy, feelings of inadequacy and emotional overstimulation.

The distinction therefore should not be interpreted as-

Active = good
Passive = bad

Instead, the proposed research conceptualizes social-media use as a psychological process whose effects depend upon the user's motives, emotional state, social environment and interpretation of online experiences.

Objectives -

To understand if the social media exert any impact on emotional regulation of the youth of the country?

- To understand if the amount of impact of active participation on social media is different from the passive participation on social media in case of emotional regulation of the youth.

Detailed Paper -

India possesses the largest youth population in the world, with roughly 65% of its citizens under the age of 35 and a national median age of 29.2 years. This massive demographic group, consisting of approximately 370 million individuals aged 15–29, forms a crucial "demographic dividend" that acts as the primary engine for India's economic growth and modern transformation.

If evaluating our youth on their key characteristics ,the researcher finds that India's youth form the largest Gen Z cohort globally, heavily driving the internet economy, digital payments, and e-commerce markets.The traditional reliance on public sector employment is far away from youth.They are powering a massive startup culture. The Government's Startup India Initiative has helped register over 200,000 startups, positioning the youth as active job creators.

The demographics show that central and northern states like Uttar Pradesh and Bihar contain the majority of India's youngest workforce.

In present scenario when developed countries of Europe and East Asia are facing massive populations decline, India's youth provide an unprecedented workforce to these countries for domestic manufacturing and international tech services.

Our youth is one of the largest pools of English-speaking Science, Technology, Engineering, and Math (STEM) graduates globally. Not only this the young buddies

volunteering for developing rural infrastructure, disaster relief, and health campaigns etc too.

At the same time ironically our youth is facing many challenges too. The State of Working India Report indicates a mismatch where formal university degrees often lack market-ready vocational skills.

Overall youth unemployment has dropped to 9.9%, in a decade. Consequently many of the youngsters are either unemployed or underemployed (tied to low-paying informal jobs).

This situation is alarming as young Indians are in a state to experience severe pressure caused by academic competition, examination stress, and career uncertainty.

At this moment of pressure, uncertainty and under evaluation of their calibre, our youth is trying to find their acknowledgement and emotional release on various social media platforms. In their busy schedules and changed mindset,almost all the people around us, whether the family members, friends or colleagues and neighbours,are busy in the rat race of something or other. In this time when we are feeling a vaccum around us, we at the same time are in constant search of a cushioned softness of togetherness, warmth of caring touch, an understanding heart and an open mind.

Search for these bring them close to the various platforms of Social Media like Facebook, Instagram, X, WhatsApp, Snapchat , Telegram etc.

Here on these platforms , anyone or everyone who is bit technically equipped is free to make their pages , send stories, share their happy or sad moments etc. Many like to share local, national, international, historical or literary events, achivement of self or of someone other's etc .

There are huge variety of posts available on each and every social media platform. People openly admire or criticize posts with their comments, send likes to the posts as well subscribe and follow many of the content creators of these platforms.

This engagement is informative, awakening, expressive and validating. Every feel of togetherness or of being loved or being guided that we used to receive few decades before from our family , friends and neighbours,are served well on social media.So it is quite obvious that almost all but especially the youth is so deeply engaged with social media.

Worldwide social media users total is roughly 5.79 billion people. The largest platforms by monthly active users are Facebook with 3.1 billion, YouTube with 2.5 to 2.7 billion, WhatsApp and Instagram with over 2 billion each, and TikTok with roughly 1.6 billion.

Different social media platforms focus on specific content formats and user goals. Matching our material to the right channel helps us reach our audience effectively.

Analysing these platforms on the basis of type of content and mode of expression of the content,we come to know the following specifications about various social media platforms -

Visual and Video Platforms-

TikTok & Instagram Reels: Short-form, vertical videos, trends, humor, and lifestyle or educational tips.

Instagram (Feed & Stories): High-quality photos, aesthetic graphics, carousel posts, and daily behind-the-scenes updates.

YouTube : Long-form horizontal videos, tutorials, vlogs, product reviews, and deep-dive documentaries.

Text and Professional Networks-

LinkedIn : Professional articles, career updates, B2B marketing, thought leadership, and industry insights.

X (formerly Twitter) & Threads : Short text updates, breaking news, quick thoughts, memes, and real-time community conversations.

Discovery and Forums-

Pinterest : Inspiration boards, DIY ideas, recipes, infographics, and visual shopping links.

Reddit & Quora : Text-based discussions, honest reviews, niche community questions, and AMAs (Ask me anything).

Facebook Content-

Public posts : Status updates, thoughts, and life events shared with friends or the public.

Reels and videos : Short or long clips, live streams, and entertainment media.

Community groups : Niche discussions, marketplace listings, and event pages for wide networking.

Articles and links : External news stories, blog posts, and brand advertisements.

WhatsApp Content -

Direct messages : Private text, voice notes, and calls between individuals or small groups.

Media files : Quick snapshots, high-resolution personal photos, and videos.

Documents : Work files, PDFs, and spreadsheets up to 2GB in size.

Status updates : Temporary 24-hour photo or video stories shared with phone contacts.

The detailed information about what type of utility, any social media platform serves to the population depicts that all these platforms do provide an opportunity to one and all to express their interests , knowledge, abilities and opinions on various topics of local , social , national or international interests.

Being an active participant on these platforms of social media,we can enrich ourselves with well researched information on diverse fields and topics . Some can hear or recite beautiful poems on contemporary topics on open mics or some can just make it available in form of written content or image .

Some discuss science, scientific history and scientific inventions. Few dig deep in history and bring on screen the stories of unsung warriors, unnoticed social reformers and unpublished events etc .

Some of the active participants explore the beauty of the world. They are usually travel bloggers who keep us informed about the location , reach , culture and worth seen spots of various cities, countries and continents .

People with political inclination write articles on the social and political scenario in the rule and regimes of various political parties in different time periods.

The artists showcase their arts and also advertise their schemes and schedules to the public so that the people who are interested in that particular art can learn that.

Mandala art, culinary, caligraphy, Astrology, book writing, DIY and many other arts are largely displayed on you tube and Instagram platforms .

Social media, today, has become buisness platform for the small home run businesses like cloud kitchen, boutique, antique collection, tuition,coaching and counselling etc too.

Of course , the readers would put an objection and say that these platforms are the source of information socially legally prohibited knowledge also like porns , how to make bomb , how to commit a full proof crime ,how to plan financial forgery etc .

As a researcher i agree to their point but here comes a bigger truth open to us This says that each and everything in this world comes to us in two faces : one side is the good side which is of profound utility to many. Another side is anti social or immoral. For e.g the very basic product of every day use like milk is a source of energy and health for many but for few people who are suffering with lacto intolerance can't taste even a bite or a sip of lactic products. The rainy weather which is boon to farmers , motivation to poets , is a curse to the asthemetics and also a huge hindrance for outside movement of the common people.

Another anacdote to explain the utility of social media via active participation can be it's comparison with any sweet shop or bakery shop or groceries shop. .Each shop has a lot of products of their kind . Every customer comes and purchases the products of his /her own choice and need. The same is true regarding social media.

Availability of such versatile information on various social media platforms is quite engaging. Everyone who is not able to explore options of carees,passion,interest and needs in the open market, are able to get access of such required

information on these platforms.

Active participation on these platforms is two way advantageous. One who is posting the above mentioned posts getting viewership for his /her art ,specialization and business. The other one who is the reader or viewer of thay content is getting huge information on these platforms.Their likes, comments and subscription on these posts help them to receive easy access of the products of their choices.

Today when almost all the people are living a life of solitude,these platforms make them feel accompanied and informed.

Generation gap has always been wide enough to get crossed. But easy accessibility to the social media platforms help people of different generation receive answers to their queries and opportunities to new learnings.

When trying to evaluate the role of active participation on social media in emotional regulation of the youth,we find that emotional regulation among youth is shaped by the various factors that can be seen below:

Biological and Neurological Factors -

Brain maturation is the very first such factors that impacts emotional regulation . The emotional center (limbic system) matures faster than the decision-making center (prefrontal cortex) and this plays an important role in emotional regulation of a person.

Impulse control is strong indicator of emotional regulation.The incomplete prefrontal cortex development makes managing strong emotional responses difficult.

Chemical balance is greatly effected by the fluctuations in neurotransmitters. For e.g serotonin and dopamine affect daily moods and irritability.

Regarding Family and Social Environment causes of emotional regulation we find that Parenting styles are remarkably important for the cause. Authoritarian parenting or psychologically controlling methods hinder emotional regulation of the child while emotional support builds it.

Family conflicts and high household tensions promotes emotional suppression over healthy framing. Peer relationships and strong friendships facilitate positive coping, whereas peer bullying causes emotional dysregulation.

Contextual and Cultural Pressures such as Academic stress, socioeconomic hardships, digital media etc are of profound importance in the process of emotional regulation of a child.

High educational expectations increase anxiety and emotional fatigue.While Socio-economic hardship caused out of poverty and financial instability create chronic stress that disrupts emotional stability.

Digital media: Heavy screen time and social platforms can amplify social pressures and negative triggers. On the contrary it can quench person's thirst to know a lot about many of the spheres of his liking as well his/her desire to get acknowledged by some or many.

If concentrating on social media as one of the biggest factor to analyse, it can be summarised on the basis of long previous presentation that the role of social media in emotional regulation of the youth is indispensable. Bi the positivity or negativity of this impact on a person would depend on the way it is been used, on the choices of the person engaged in social media platforms and on the type of content consumed by the person.

Decades before we were having discussions and debates on different forums on the topic of contemporary needs of that age . It was : Science is a bad master but a good servant.

That truth is exactly applicable with the impact of social media platforms on a person specially on his /her emotional regulation.

Anything or everything when starts mastering us, influencing us on our thought pattern or response pattern etc , it might create an hindrance in our growth and disrupt our emotional balance. But till the time we are using these social media platforms as a tool to display our arts , passion and calibre, it is a great place to show case our intents and achievements. It is a source of our contentment when getting liked or positively commented on our posts.

But if it starts mastering us, the low number of likes can become disheartening to us and good amount of likes and acknowledgement may cause us to overestimate ourselves . Both are risky.

When we loose our own control over ourselves, when we stop doing introspection, when our locus of control is somewhere in external surroundings, all these should be treated as the signs of emotional irregularities in a person. These emotional imbalance may be a result of active or passive participation on social media platforms or of any of the other potential factors as discussed before.

To some extent, it is true that passive participation on social media is exerting adverse impacts on the emotional regulation of the youth . Such a person is already lacking concentration,is unfamiliar with his /her own needs and interests . That's why he /she just keep wandering by continuous scrolling.It is a wastage of time ,energy,social obligations etc. Just scrolling the screen for long hours provide a person in abundance the unprocessed information. The huge stocks of incomplete information creates chaos in one's mind and as a result, one registers the complaints of damaging impacts of social media.

Conclusions -

1. *Active participation acts as an emotional outlet and growth tool*

When youth use social media to create, share, and engage - through poems, art, travel blogs, science discussions, or small businesses - it becomes a space for self-expression, skill-building, and recognition. This active use fosters confidence, learning, and a sense of purpose, and helps in positive emotiona regulation.

2. *Passive scrolling often leads to emotional imbalance and mental clutter*

Endless, aimless scrolling without clear intent floods the mind with unprocessed and incomplete information. Youth who lack clarity about their needs get caught in this loop, leading to distraction, reduced concentration, anxiety, and a feeling of emptiness. This passive use disrupts emotional stability.

3. *Social media is a "good servant, bad master"*

Like science, social media serves us well when we control it. It connects people, bridges generation gaps, provides knowledge, and reduces solitude. But when it starts controlling our thoughts, self-worth, and mood - through likes, comments, or comparisons - it becomes a source of stress, overestimation, or disheartenment.

4. *Impact depends on content choice and intent of use*

The effect of social media on emotional regulation is not fixed. It depends on _what_ the youth consume and _why_. Consuming informative, creative, and community-oriented content can be uplifting and validating. Consuming pressure-driven, comparison-based content can amplify academic stress, insecurity, and emotional fatigue.

5. *Emotional regulation in the digital age needs balance and awareness*

Biological factors like brain development, along with family support and cultural pressures, already shape youth emotions. Social media adds another powerful layer. To stay emotionally healthy, youth must practice self-awareness, limit passive consumption, and use platforms intentionally - as tools to learn, connect, and create, not to escape or seek external validation.

In essence : Active use builds, passive use drains. Social media can either support emotional resilience or disturb it - the difference lies in how consciously the youth engage with.

References

1. Priya. S. Shanmuga & Shakthi.S, 'Social Media and it's impact on Students' ,MJP Publishers ,year 2026.
2. Sharma.Vivek,' Importance of Social Media in Society', Astitva Prakashan, 2020.
3. https://scalarly.com/marketing-book/seeking-benefits-participation-socialmedia.
4. https://www.investopedia.com/terms/s/social-media.asp.

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 25 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

Characterization and Analysis of CNSL-Based Polymer Composites Physicochemical, Thermal, Structural, Morphological and Electrical Characterization of the Prepared Polymer Composites

- Smt. Rekha Shukla
Assistant Professor-
Department of Physics,
Dr. Ram Prakash Smarak Mahavidyalaya, Kanpur-208005 (U.P.)

E-mail:
rekhasanjay78@gmail.com

- Dr. Akhand Pratap Singh
Assistant Professor-
Department of Physics,
Har Sahai Degree College, P Road, Kanpur -208005 (U.P.)

E-mail:
drakhandsingh@gmail.com

Abstract

Characterization and Analysis of CNSL-Based Polymer Composites Physicochemical, Thermal, Structural, Morphological, and Electrical Characterization of the Prepared Polymer Composites.

This study focuses on the development and comprehensive characterization of polymer-based composites involving cashew nut shell liquid (CNSL) resin and conductive vinyl polymers, with particular emphasis on their mechanical, electrical, interpenetrating network, and morphological properties. CNSL resin, a renewable bio-based polymeric material, was incorporated into composite systems to investigate its potential for improving mechanical performance while contributing to sustainable polymer development. The interpenetration and compatibility between the resin and conductive polymer phases were evaluated to understand their influence on the overall structure and properties of the composites. In addition, copolymers based on poly(N-vinyl pyrrolidone) (PVP) and poly(methyl methacrylate) (PMMA) were synthesized and investigated with respect to their morphology and electrical conductivity. Structural and morphological characteristics were examined using appropriate spectroscopic and microscopic techniques, while mechanical and conductive properties were evaluated to establish structure–property relationships. The results indicate that the interaction between the polymer phases and the formation of an interconnected polymer network significantly influence the mechanical strength, morphology, and electrical conductivity of the resulting materials. The combined study demonstrates the potential of CNSL-based resin and conductive vinyl polymer systems for developing multifunctional, mechanically stable, and electrically conductive polymer composites with possible applications in advanced materials and electronic-related technologies.

Introduction-

The rapid development of advanced polymeric materials has created a growing demand for composites that combine good mechanical strength, electrical conductivity, thermal stability, and environmental sustainability. Polymer composites have attracted considerable attention because their properties can be tailored by combining two or more polymeric phases with different characteristics. In particular, the development of conductive polymer composites has opened new possibilities in areas such as antistatic materials, electromagnetic interference (EMI) shielding, sensors, electronic devices, coatings, and energy-related applications. However, achieving a suitable balance between mechanical performance, conductivity, morphology, and compatibility between different polymer phases remains a significant challenge. [1–3]

Cashew nut shell liquid (CNSL) is an important renewable and naturally occurring material obtained from the shells of cashew nuts. It contains phenolic compounds, predominantly anacardic acid, cardanol, cardol, and related constituents, with the composition depending on the extraction and thermal-processing conditions. These compounds provide reactive functional groups that can be exploited for chemical modification and polymer synthesis. [4–6]

CNSL-based resins have gained interest as alternatives or partial alternatives to petroleum-derived polymeric materials because of their renewable origin, relatively low cost, chemical versatility, and potential for producing polymers with useful mechanical and thermal characteristics. The aromatic ring, phenolic hydroxyl group, and unsaturated side chain of cardanol provide several sites for chemical functionalization and polymer formation. [4–7]

The incorporation of CNSL-derived materials into composite systems can therefore contribute to the development of more sustainable polymeric materials while maintaining useful functional properties. CNSL- and cardanol-derived polymers have been investigated for applications including coatings, adhesives, laminates, composites, flame-retardant systems, electronic packaging, and other advanced polymeric materials. [5,7,8]

Conductive polymers and conductive polymer composites have also become important in modern materials research because they can combine electrical functionality with the low density, flexibility, and processability characteristic of polymeric materials. Conductive polymer composites are particularly attractive for antistatic applications, EMI shielding, sensing, flexible electronics, and electroactive devices. Their electrical properties depend strongly on the formation and connectivity of conductive networks within the polymer matrix. [1–3,9]

Poly (N-vinyl pyrrolidone) (PVP) and poly(methyl methacrylate) (PMMA) possess different chemical structures and physical characteristics, making their combination particularly interesting for polymer blend and composite systems. PVP is a polar polymer containing a lactam group, whereas PMMA is comparatively less polar and is known for its optical clarity, dimensional stability, and useful mechanical properties. Studies of PVP/PMMA-based systems have demonstrated that interactions between the two polymer components can strongly influence phase behaviour, glass-transition characteristics, and charge-transport properties. [10,11]

Combining these polymers through copolymerization, blending, or interpenetrating polymer networks (IPNs) can modify their morphology and produce materials with properties different from those of the individual polymers. In particular, copolymerization can alter miscibility and molecular interactions, while blending and IPN formation can provide different types of phase structures and physical interactions between the polymeric components. [10,12]

Interpenetrating polymer networks

provide an effective approach for combining two polymeric systems in which at least one polymer network is synthesized or cross-linked in the presence of the other. IPNs can exhibit complex two-phase or co-continuous morphologies, and their morphology, glass-transition behaviour, mechanical properties, and phase continuity depend on the composition and preparation conditions. [12–14]

The formation of an interconnected or interpenetrating structure may influence the movement of charge carriers and consequently the electrical conductivity of the material, particularly when a conductive filler or ionic conducting species is incorporated. The electrical response of multiphase polymer systems is closely related to phase morphology, filler distribution, interfacial interactions, and the development of continuous conductive pathways. [2,3,9,15]

Therefore, understanding the relationship between polymer composition, interpenetration, morphology, and conductivity is essential for designing multifunctional polymer composites. Morphological control can be used to influence the distribution of conductive components and reduce the concentration required to form an electrically continuous network. [2,3,15]

The morphology of polymer composites plays a particularly important role in determining their macroscopic properties. Phase separation, dispersion of one polymer phase within another, interfacial interactions, and the formation of continuous or interconnected domains can significantly affect mechanical, thermal, rheological, and electrical behaviour. In conductive systems, the development of continuous conductive pathways is especially important because electrical conductivity depends strongly on the distribution and connectivity of the conductive phase. [2,3,9,15]

Consequently, morphological investigation provides valuable information for explaining changes in the electrical and mechanical behaviour of polymeric materials. Techniques capable of examining phase structure and conductive-network formation can therefore help establish structure–property relationships in multiphase polymer composites. [2,9,15]

In the present investigation, CNSL-based resin is studied in combination with conductive vinyl polymer systems to evaluate their mechanical, electrical, morphological, and interpenetrating characteristics. Particular attention is given to the interaction between the polymeric phases and its influence on the resulting structure and properties.

In addition, poly (N-vinyl pyrrolidone) and poly(methyl methacrylate)-based polymer systems are investigated to understand their morphological features and conductive behaviour. Previous investigations of PVP/PMMA systems have shown that polymer composition and intermolecular interactions can influence phase behaviour and conductivity, while recent work on PVP/PMMA nanocomposites has demonstrated that conductive fillers can generate strong percolation-dependent changes in electrical conductivity. [10,16]

The study aims to establish the relationship between composition, interpenetration, morphology, mechanical properties, and electrical conductivity. Such an understanding may contribute to the development of renewable, multifunctional polymer composites with potential applications in conductive coatings, antistatic materials, sensors, electronic components, EMI shielding, and other advanced polymeric applications. [1–3,7,9]

2. Research and Methodology-

2.1 Materials - Cashew nut shell liquid (CNSL)-based resin was used as the bio-based resin component for the preparation of the polymer composite. Vinyl polymer systems based on poly(N-vinyl pyrrolidone) (PVP) and poly(methyl methacrylate) (PMMA) were selected for investigating the morphological and conductive behaviour. Appropriate initiators, catalysts, solvents, curing agents, and other analytical-grade

chemicals were used wherever required for polymerization and composite preparation. Distilled or deionized water was used during solution preparation and washing processes.

2.2 Preparation of CNSL-Based Resin Composite- The CNSL-based resin was initially purified and processed to remove undesirable impurities and moisture. CNSL and cardanol contain reactive phenolic, aromatic, and unsaturated structural features that allow their use as precursors for a variety of polymeric and thermosetting materials. [1,2]

A predetermined quantity of CNSL resin was mixed with the required curing agent or hardener under controlled conditions. The mixture was mechanically stirred to obtain a homogeneous resin system. The polymeric/conductive component was then incorporated gradually into the resin with continuous stirring to ensure uniform dispersion. Controlled mixing and appropriate dispersion of the polymeric components are important for obtaining homogeneous multiphase polymer materials. [1,3]

The resulting mixture was subjected to controlled mixing until a homogeneous composite formulation was obtained. Entrapped air bubbles were removed, where necessary, by vacuum treatment. The prepared material was subsequently transferred into suitable moulds and allowed to cure under controlled temperature and time conditions. After curing, the specimens were removed from the mould and conditioned before characterization. [1,3]

Different compositions of the polymeric components were prepared to investigate the effect of composition on the mechanical, electrical, and morphological properties of the resulting composites. Variation in composition can modify phase morphology, interfacial interactions, and the development of continuous phases in polymer composites. [3,4]

2.3 Preparation of PVP/PMMA Polymer System - Poly(N-vinyl pyrrolidone) and poly(methyl methacrylate) were prepared using suitable polymerization conditions. The required quantities of the monomers were dissolved or dispersed in an appropriate solvent system. Polymerization was initiated using a suitable initiator under controlled temperature and reaction conditions. PVP/PMMA systems have previously been investigated with respect to polymer interactions, phase behaviour, glass-transition characteristics, and ionic conductivity. [5,6]

For the copolymer/interpenetrating system, the PVP and PMMA components were combined in predetermined ratios. Continuous stirring was maintained to obtain a uniform polymeric system. The prepared polymer was subsequently precipitated, washed, and dried when required to remove residual solvent, unreacted monomer, and other low-molecular-weight impurities. [5,6]

The obtained polymeric material was stored under controlled conditions until further characterization. Careful drying and conditioning are important because residual solvent and moisture can influence the thermal, mechanical, morphological, and electrical properties of polymer systems. [6,7]

2.4 Formation of Interpenetrating Polymer Network - The interpenetrating polymer structure was investigated by combining the two polymeric phases under conditions that allowed the formation of an interconnected network. An interpenetrating polymer network (IPN) is generally defined as a combination of two or more polymers in network form, in which at least one polymer is synthesized or cross-linked in the immediate presence of another. [8,9]

The polymer components were mixed in different proportions to determine the effect of composition on network formation. Changes in composition can influence phase continuity, degree of interpenetration, domain size, and mechanical behaviour of IPN systems. [8–10]

The extent of interpenetration and compatibility between the polymer phases was evaluated through morphological and structural

characterization. Changes in phase morphology, dispersion, and interaction between PVP and PMMA were correlated with the mechanical and electrical behaviour of the prepared materials. Previous studies have demonstrated that PVP/PMMA systems exhibit composition-dependent phase behaviour and molecular interactions. [6,9,10]

2.5 Mechanical Characterization- The mechanical properties of the prepared CNSL-based composites were evaluated using standard mechanical testing procedures. Tensile strength, elongation at break, and Young's modulus were determined using a universal testing machine (UTM). The specimens were prepared according to the appropriate standard dimensions and tested under controlled conditions. ASTM D638 provides a standard procedure for determining tensile properties of unreinforced and reinforced plastics using defined specimen geometry and testing conditions. [11]

The mechanical results were used to evaluate the influence of polymer composition and interpenetrating structure on the strength and deformation behaviour of the composites. Mechanical behaviour of IPNs is strongly influenced by network structure, phase morphology, and interactions between the constituent polymer phases. [9,10]

Where applicable, impact strength and hardness measurements were also performed to obtain a more comprehensive understanding of the mechanical performance.

Flexural properties, where measured, may be determined using a three-point loading configuration in accordance with ASTM D790. [12]

2.6 Electrical Conductivity Measurement- The electrical conductivity of the prepared polymer composites and PVP/PMMA systems was measured using an appropriate conductivity or resistance measurement technique. The specimens were prepared with uniform dimensions, and electrical contacts were established on the sample surfaces. Electrical resistance was measured under controlled conditions, and conductivity was calculated using the measured resistance and geometrical dimensions of the specimen. [13]

[\sigma = \frac{L}{RA}]

where σ is the electrical conductivity, **L** is the distance between the electrodes, **R** is the measured electrical resistance, and **A** is the cross-sectional area of the specimen.

The variation in conductivity with polymer composition was investigated to determine the development of conductive pathways within the polymer matrix. Electrical transport in multiphase polymer systems is strongly affected by phase morphology, composition, interfacial interactions, and the connectivity of conducting regions. [4,6,14]

Where applicable, resistance and conductivity measurements were carried out with reference to established procedures for electrical resistance and conductance measurements of polymeric materials. ASTM D257 describes methods for determining DC resistance or conductance and calculating corresponding resistivity or conductivity from specimen dimensions and electrode geometry. [13]

2.7 Morphological Characterization- The morphology of the prepared composites was examined using scanning electron microscopy (SEM) or field-emission scanning electron microscopy (FESEM). The specimens were appropriately fractured and prepared before microscopic examination.

SEM/FESEM images were used to investigate surface morphology, phase distribution, dispersion of the polymeric components, interfacial adhesion, void formation, and the development of interconnected structures. Morphological examination is particularly important for IPNs and multiphase polymer composites because phase continuity and domain structure can influence mechanical and transport properties. [3,9,10]

The morphological observations were correlated with the mechanical and electrical properties of the composites. The development of continuous or interconnected conductive domains can contribute to enhanced charge transport, while poor dispersion and phase separation may adversely affect the functional properties of the composite. [4,14]

2.8 Structural Characterization- Fourier-transform infrared spectroscopy (FTIR) was employed to identify the characteristic functional groups present in CNSL-based resin, PVP, PMMA, and the prepared composite systems. FTIR spectroscopy is widely used for qualitative identification of functional groups and for examining molecular interactions in polymeric materials. [15]

Changes in characteristic absorption bands were analyzed to determine possible interactions between the different polymeric components. In PVP/PMMA systems, FTIR has been used together with other characterization techniques to investigate polymer–polymer and polymer–salt interactions. [6]

X-ray diffraction (XRD), where applicable, was used to investigate the structural characteristics and degree of ordering of the prepared polymer systems. The obtained patterns were compared to determine changes resulting from polymer blending, copolymerization, or interpenetrating network formation. XRD analysis can provide information concerning crystalline or ordered domains and changes in structural organization of polymeric materials. [16]

2.9 Thermal Characterization- Thermal behaviour of the prepared materials was investigated using thermogravimetric analysis (TGA) and differential scanning calorimetry (DSC), where applicable. TGA was used to determine thermal stability and degradation behaviour. ASTM E1131 provides a general thermogravimetric procedure for compositional analysis and evaluation of volatile, combustible, and residual components. [17]

DSC was used to evaluate thermal transitions such as glass transition temperature and other relevant thermal events. ASTM E1356 describes the determination of glass-transition temperatures using differential scanning calorimetry or differential thermal analysis. [18]

The thermal results were compared with the mechanical and morphological properties to understand the effect of polymer interactions and network formation on the stability of the composites. Previous PVP/PMMA studies have demonstrated the usefulness of DSC in evaluating phase behaviour and glass-transition changes associated with polymer composition and molecular interactions. [6]

2.10 Data Analysis- The experimental results obtained from mechanical, electrical, morphological, structural, and thermal characterization were systematically analyzed. The effect of polymer composition and interpenetration on the properties of the materials was evaluated by comparing different formulations.

The relationship between morphology and electrical conductivity was particularly examined to determine whether the formation of continuous or interconnected phases contributed to enhanced charge transport. Similarly, morphological features such as interfacial adhesion, phase separation, and void formation were correlated with the observed mechanical behaviour. [4,9,14] The combined results were used to establish structure–property relationships and to evaluate the potential of CNSL-based and PVP/PMMA polymer systems as multifunctional materials with desirable mechanical and conductive characteristics.

Characterization and Techniques

Thermal Characterization-

TGA (Thermogravimetric Analysis) can be used to determine thermal stability, degradation temperature, mass-loss behaviour, and residual char content of polymeric materials and composites. The technique records the change in

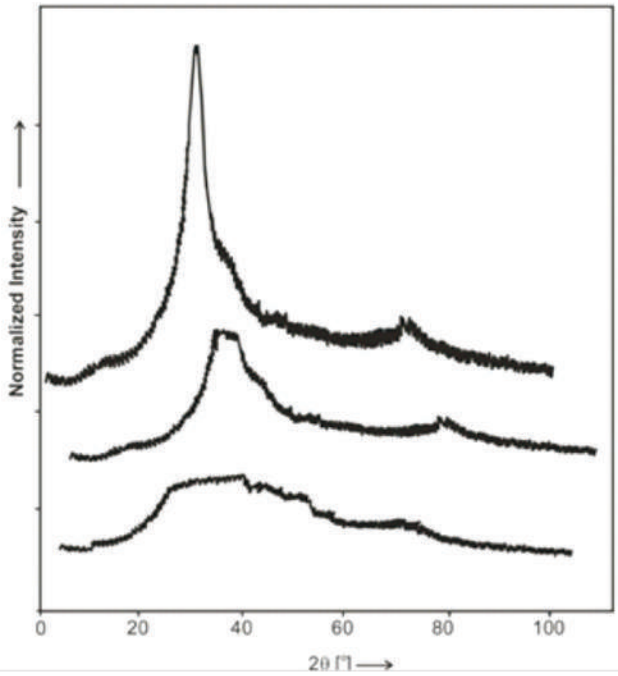

sample mass as a function of temperature or time under a controlled atmosphere and can therefore provide information about the onset and stages of thermal degradation. [1–3]

DSC (Differential Scanning Calorimetry) can be used to determine the glass-transition temperature (Tg), melting behaviour where applicable, crystallization behaviour, and other thermal transitions of polymeric materials. DSC is particularly useful for studying changes in thermal transitions associated with polymer blending, network formation, and interactions between different polymeric components. [4–6]

A shift in Tg compared with the individual components can provide supporting evidence for changes in molecular mobility and polymer–polymer interactions. However, a Tg shift alone should not be considered conclusive proof of improved compatibility; it should preferably be supported by morphological and spectroscopic evidence. [4,6,7] **(See Figure)**

XRD Analysis-

X-ray diffraction (XRD) analysis can be used to investigate the structural organization, crystallinity, and amorphous or semi-crystalline character of polymeric materials. The diffraction pattern provides information about ordered domains and changes in molecular organization resulting from polymer blending, crosslinking, or interpenetrating network formation. **[8–10]**

The XRD pattern of the native **poly(α-methyl styrene)** exhibited a sharp and intense diffraction peak at **2θ = 28.45°**, corresponding to an interplanar spacing of approximately **4.45 Å**, indicating the presence of an ordered/crystalline phase. In contrast, polyurethane exhibited a relatively broad diffraction profile, characteristic of a comparatively less-ordered polymer structure with small ordered domains. The XRD pattern of the synthesized IPN showed characteristics intermediate between those of poly(α-methyl styrene) and polyurethane, indicating changes in the degree of structural ordering associated with formation of the interpenetrating network. **[8–10]** The modification of the diffraction profile suggests changes in the organization and interaction of the polymeric components within the network. XRD can therefore provide supporting evidence for changes in crystallinity and phase organization, although XRD alone cannot conclusively establish molecular-scale interpenetration. **[8,9]**

Important - If your actual sample is **CNSL/PVP/PMMA**, replace “poly(α-methyl styrene)” and “polyurethane” with your actual materials. The numerical peak at **28.45°** should also be retained only if it is present in your measured XRD pattern.

FESEM / SEM Morphological Analysis-

SEM or FESEM analysis was employed to investigate the surface morphology and microstructural characteristics of the polymer-based composite. Electron microscopy is particularly useful for examining phase morphology, dispersion of constituent phases, domain size, interfacial regions, voids, cracks, and the formation of continuous or interconnected structures in multiphase polymer systems. **[11–13]** The SEM micrograph shows a highly irregular, heterogeneous, and rough surface morphology of the polymer-based composite at a scale below **500 µm**. The micrograph reveals heterogeneous and

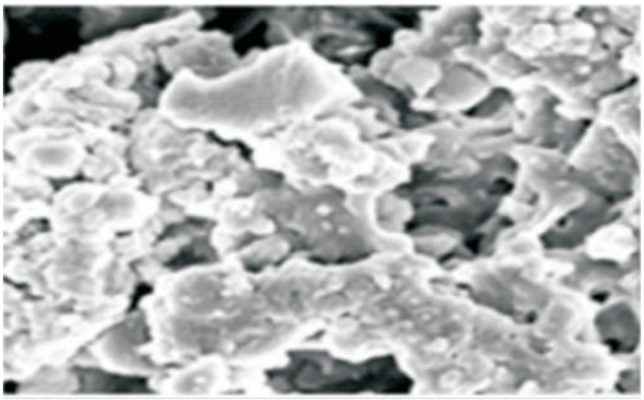

highly irregular surface morphology with rough polymeric domains, interconnected regions, agglomerates, and microscopic voids. Such features can provide information about the phase distribution and degree of homogeneity of multiphase polymer systems. **[11–13] (See Figure on Next Page)**

The presence of distinct morphological domains suggests partial phase separation accompanied by interpenetration or intimate mixing of the constituent polymer phases. However, SEM morphology alone cannot definitively prove molecular-level interpenetration; the interpretation should be supported by techniques such as FTIR, DSC, XRD, or other structural analyses. **[9,11,14]**

The rough and irregular interface may promote mechanical interlocking between the phases, whereas an interconnected morphology may contribute to the development of continuous pathways for charge transport when the appropriate conductive phase is present. The relationship between phase morphology and electrical conductivity is particularly important in conductive polymer composites because the formation of interconnected conductive domains can strongly influence charge transport. **[12,15]**

Nevertheless, the observed pores, voids, and localized agglomeration may act as stress-concentration sites and can adversely influence the mechanical performance of the materials. Poor interfacial adhesion and pronounced phase separation may also reduce stress transfer between the constituent phases. **[11–13]**

Overall, the FESEM observations provide useful evidence for correlating the microstructural features of the CNSL/polymer composite with its mechanical, thermal, and electrical behaviour. The combined interpretation of morphology, thermal transitions, structural characteristics, and electrical properties can therefore be used to establish the structure–property relationship of the developed multifunctional material.

References

1. Xie, L., & Zhu, Y. (2018). **"Tune the phase morphology to design conductive polymer composites: A review."** *Polymer Composites*, **39**, 2985–2996. DOI: 10.1002/pc.24345.
2. Brigandi, P. J., & Pearson, R. A. (2014). **"Electrically conductive multiphase polymer blend carbon-based composites."** *Polymer Engineering & Science*, **54**, 1–16. DOI: 10.1002/pen.23530.
3. Wu, D., & Wan, C. (2020). **"Tailoring the electrical and thermal conductivity of multi-component and multi-phase polymer composites."** *International Materials Reviews*, **65**, 129–163. DOI: 10.1080/09506608.2019.1582180.
4. Voirin, C., Caillol, S., Sadavarte, N. V., Tawade, B. V., Boutevin, B., & Wadgaonkar, P. P. (2014). **"Functionalization of cardanol : towards biobased polymers and additives."** *Polymer Chemistry*, **5**, 3142–3162. DOI: 10.1039/C3PY01194A.
5. Caillol, S. (2018). **"Cardanol : A promising building block for biobased polymers and additives."** *Current Opinion in Green and Sustainable Chemistry*, **14**, 26–32. DOI: 10.1016/j.cogsc.2018.05.002.
6. Rojtman, E., Denis, M., Sirvent, C., Lapinte, V., Caillol, S., & Briou, B. (2024). **"Polyols from cashew nut shell liquid (CNSL): corner-stone building blocks for cutting-edge bio-based additives and polymers."** *Polymer Chemistry*, **15**, 4375–4415. DOI: 10.1039/D4PY00851K.
7. Rwahwire, S., et al. (2019). **"Green thermoset reinforced biocomposites."** In *Green Composites for Automotive Applications*. Elsevier.

ISSN : 2394-4366

Received: 02 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

गीतांजलिश्री के ‘माई’ उपन्यास में चित्रित नारी चेतना

– वैशाली आण्णासाहेब आढाव
शोध छात्रा–हिन्दी विभाग,
एस. एन. कला, डि. जे. मालपाणी वाणिज्य तथा बी.एन. सारडा विज्ञान महाविद्यालय, संगमनेर, तहसील– संगमनेर, जिला– अहिल्यानगर – 422605 (महाराष्ट्र)
सम्बद्ध– सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411007 (महाराष्ट्र)

Email –
vaishalimalwade09@gmail.com

– शोध निर्देशक
–प्रो. (डॉ.) जितेन्द्र पिताम्बर पाटील
संशोधन केन्द्र – एस. एन. कला, डि. जे. मालपाणी वाणिज्य तथा बी. एन. सारडा विज्ञान महाविद्यालय, संगमनेर, तहसील– संगमनेर, जिला– अहिल्यानगर (महाराष्ट्र)
सम्बद्ध– सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411007 (महाराष्ट्र)

सारांश

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य जगत में अलग–अलग विमर्शों का बोलबाला है। हिन्दी साहित्य के काव्य, उपन्यास, कहानी तथा अन्य विधाओं में आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, किसान विमर्श, स्त्री विमर्श आदि। विमर्शों को केन्द्र में रखकर रचनाएँ लिखी जा रही हैं। इन सबमें स्त्री विमर्श या स्त्री चेतना के माध्यम से नए रचनाकारों द्वारा स्त्री जीवन की पीड़ा को उठाया जा रहा है। हिन्दी साहित्य की प्रतिनिधि उपन्यासकार गीतांजलिश्री द्वारा 1993 ई. में लिखित ‘माई’ उपन्यास नारी चेतना के क्षेत्र में एक मील का पत्थर है। प्रस्तुत उपन्यास में रचनाकार द्वारा उपन्यास की पात्र ‘माई’ के द्वारा नारी का चित्रण बहुत ही संवेदनशील एवं वास्तविक रूप से किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में उनके अन्य नारी चेतना प्रधान उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास की नारी पात्र भी अपनी पहचान की तलाश करते दिखाई देते हैं। पितृसत्ता का दबाव, गृहस्थी, सामाजिक परम्परा इनके बीच उपन्यास की पात्र माई नारी तमाम सामाजिक बंधनों को तोड़ने की चुनौती देते हुए दिखाई देती है। लेकिन माँ–बेटी, पति–पत्नी तथा अन्य रिश्तों में नारी की स्थिति को माई उपन्यास में नए दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। ‘माई’ उपन्यास में चित्रित नारी एक मध्यमवर्गीय परिवार से है, जहाँ पुरुष प्रधान संस्कृति के बंधनों से बंधी होने के कारण नारी चाहरदीवारी के अन्दर रहती है, जिसे अपने घर की परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ने नहीं दिया जाता। नारी अपने ऊपर होने वाले अन्यायों से परिचित होने के पश्चात् आवाज उठाना चाहती है लेकिन परम्परा, घर की मर्यादा और उसके परिवार के प्रति कर्तव्य उसे आगे आने नहीं देते हैं। जिसकी वजह से नारी अपने ऊपर होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाती। अपने सभी दुखों को त्यागकर अपने कर्तव्यों को सबसे ऊपर मानकर वह अपनी पूरी जिन्दगी उसी के सहारे गुजार देती है। एक तरफ आज के आधुनिक युग में जहाँ साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में नारी चेतना अपनी आवाज बुलन्द कर रही है तो दूसरी तरफ परिवार के लिए अपना सर्वस्व त्यागने वाली प्रस्तुत उपन्यास की पात्र ‘माई’ अपने ऊपर होने वाले अन्याय के साथ जीवन बिताते हुए नारी चेतना पर प्रश्नचिन्ह लगा देती है।

बीज शब्द– नारी चेतना, गृहस्थी जीवन, पितृसत्तात्मक पद्धति, स्त्री कर्तव्य, परम्परा, स्त्री–अस्तित्व, स्वतंत्रता, मर्यादा, अस्मिता, संवेदना, मानवतावाद, आत्मसम्मान आदि।

प्रस्तावना–

‘नारी चेतना’ स्त्री के भीतर अपने अधिकारों, अस्तित्व, सम्मान और स्वतंत्रता के प्रति जागरुकता उत्पन्न करती है। आज समाज में स्त्री का अस्तित्व यही है कि स्त्री एक माता है, किसी की बहन है, किसी की पत्नी है। स्त्री किसी भी रूप में समाज में दिखाई देती हो, उसने हमेशा ही दूसरों के लिए अपना पूरा अस्तित्व समर्पित कर दिया दिखाई देता है। स्त्री अपने

परिवारी जनों की आशा–आकांक्षाओं को पूरा करने हेतु अपनी सभी इच्छाओं को मार देती है। आज स्त्री पढ़ी–लिखी होने पश्चात भी पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं हुई है। नारी विमर्श का मुख्य उद्देश्य स्त्री को उसके अधिकारों के प्रति जागरुक करना तथा समाज में उसे समान स्थान दिलाना है। यह केवल पुरुष विरोध नहीं, बल्कि स्त्री और पुरुष के बीच समानता स्थापित करने का प्रयास है। नारी विमर्श स्त्री के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। इसके माध्यम से स्त्री के जीवन से जुड़ी समस्याओं, संघर्षों और मानसिक पीड़ा को साहित्य और समाज के केन्द्र में लाया गया। हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा और गीतांजलिश्री जैसी लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

गीतांजलिश्री का विवेच्य उपन्यास 'माई' सामाजिक स्वीकृति और असंतोष को व्यक्त करता है। साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता, आक्रोश और विसंगति पर प्रकाश डालने का काम लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किया है। इस कारण गीतांजलिश्री के साहित्य में चेतना और अनुभव को सही अर्थ में अभिव्यक्ति मिली है। सामाजिक यथार्थ उनके साहित्य का मूल स्वर रहा है। उनके पास अनुभव का विशाल भण्डार है। समकालीन महिला लेखिकाओ में 'गीतांजलिश्री' का नाम उच्च स्थान पर है। स्त्री होने के कारण लेखिका ने स्त्री पीड़ा को समझा, भोगा और उन अनुभवों के माध्यम से अपनी कलम के द्वारा स्त्री जीवन की विभिन्न पक्षों को अंकित किया है। इनके कथा साहित्य के नारी पात्र अपने जीवन संघर्षों से जूझते दिखाई देते हैं किन्तु हार नहीं मानते। अपने जीवन को नया अर्थ देने के प्रयास में निरन्तर संघर्ष करते दिखाई देते हैं। नई चेतना से सृजित होकर अपने लक्ष्य को पा लेते हैं।

विषयवस्तु–

प्राथमिक रूप से 'चेतना' को व्याख्यायित किया जाए तो नारी चेतना दो शब्दों से मिलकर बना है। इसमें 'नारी' शब्द का अर्थ–महिला, स्त्री, औरत अर्थात् लिंग के आधार पर नारी या स्त्री होना। 'चेतना' शब्द चेत् + ना धातु प्रत्यय से जुड़ा हुआ है। जिसका अर्थ है –वह शक्ति जिससे किसी वस्तु, ज्ञान का अनुभव हो। नारी चेतना में 'चेतना' शब्द अत्यन्त व्यापक है। अतः चेतना शब्द का उत्पत्तिपरक अर्थ है– विचार–विमर्श, सोचना, समझना, अनुभव करना।

20वीं सदी के अंतिम दशक और 21वीं सदी के शुरुआत में नारी चेतना पर समाज सुधारकों, लेखकों, राजनीतिज्ञ में चर्चा शुरू हुई थी। वैसे देखा जाए तो 19वीं सदी में ही इस विषय पर चिंतन साहित्यिक क्षेत्र में आरम्भ हुआ था। नारी चेतना एक प्रकार से रूढ़ परम्पराओं, मान्यताओं के प्रति असंतोष और उसमें मुक्ति का स्वर है। इसके लिए अंग्रेजी में 'Feminism' (फेमिनिज्म) शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'फेमिनिज्म' फ्रेंच शब्द 'फेमी' (Femee) अर्थात् सामाजिक आन्दोलन और 'इज्म' (Ism) राजनीतिक विचारधारा के मिलने से बना है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1880 ईसवी में फ्रांस, 1890 में ग्रेट ब्रिटेन और 1910 में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। 18वीं सदी में इस आन्दोलन की शुरुवात मानवतावाद और औद्योगिक क्रांति के समय से हुई थी। साहित्य जगत् में 'स्त्री विमर्श' या 'नारी चेतना' को भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। स्त्री विमर्श की परिभाषा देते हुए अनिल कुमार राठोड़ लिखते हैं– ''स्त्री–विमर्श एक ऐसा आन्दोलन है, जो नारी को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करते हुए नारी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में सम्पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करता है।''[1]

अर्थात् नारी चेतना का अर्थ नारी की परम्परागत छवि या पहचान से एक नई नारी की छवि या पहचान का तथा उसके सम्पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करना है। चेतना एक प्रकार से रूढ़ परम्पराओं, मान्यताओं के प्रति असंतोष और उससे मुक्ति का स्वर है पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदण्डों, मूल्यों व अन्तर्विरोधों को समझने व पहचान की गहरी अन्तर्दृष्टि है। कई वर्षों से चली आ रही पुरुषों की दासता के विरोध में स्त्री के अधिकारों को लेकर उठाई गई आवाज को नारी चेतना कहते हैं।

एक समय था जब नारी को सम्पत्ति अपने नाम पर रखने का अधिकार नहीं था। किसी भी चीज पर नारी अपना अस्तित्व नहीं दिखा सकती थी। यहाँ तक की अपने ही बच्चों पर वह हक नहीं जता सकती थी। जब नारियों ने खुद पर होने वाले अन्यायों पर विचार करना आरम्भ किया, अपने पारिवारिक और सामाजिक भूमिकाओं पर सोचना और विचार करना आरम्भ किया तब से नारी आन्दोलन, नारी चेतना, नारी अस्मिता से जुड़े विषयों पर बहस की शुरुआत हो गई। नारी चेतना नारी के ऊपर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक रूप से मानसिक और शारीरिक दबाव डालने वाली पारम्परिक

बेड़ियों और मान्यताओं के विरोध में उभरा हुआ एक वैचारिक आन्दोलन है। इस आन्दोलन को हिन्दी साहित्य ने मुखाग्नि देने का प्रयास किया हुआ दिखाई देता है।

हिन्दी उपन्यास विधा के क्षेत्र में नारी चेतना से ओत–प्रोत गीतांजलिश्री द्वारा लिखित उपन्यास 'माई' एक महत्वपूर्ण कृति है। प्रस्तुत उपन्यास में दादा, दादी, बाबू, सुनैना, सुबोध और माई आदि मुख्य पात्र हैं। जिसमें प्रस्तुत उपन्यास की केन्द्रीय पात्र माई पूरे घर का खयाल रखते–रखते उसकी कमर झुक जाती है, वह सीधी खड़ी भी नहीं रह पाती है। लेकिन फिर घर वालों का खयाल रखना वह अपना कर्तव्य समझ लेती है। अपने घर के नियमों को नहीं तोड़ती है, उसकी चुप्पी ही उसका हथियार होता है। उसकी इस चुप्पी में ही उसका विद्रोह समाया होता है, जिसे घरवाले पहचान नहीं पाते हैं। वे उसके अन्दर की रज्जो को, उसकी शक्ति की, उसके आदर्शों को उसकी आग को देख ही नहीं पाते हैं। इस उपन्यास के केन्द्र में उपन्यास की पात्र 'माई' एक ऐसी पात्र है, जो एक मध्यम वर्गीय समाज की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपना पूरा अस्तित्व घर के लोगों की सेवा करने में लगा देती है। 'माई' के सम्बन्ध में रचनाकार कहती हैं– ''हरदम झुकने वालों का यही हश्र होता है। लगातार झुके रहने के कारण रीढ़ों के बीच का तत्व घिस जाता है और नसों पर यहाँ–वहाँ दबाव पड़ने लगता है कि यों झुकने वाले को झुके रहने में भी दर्द होता है, तनने में भी दर्द होता है।''[2]

प्रस्तुत मंतव्य के माध्यम से लेखिका ने पाठकों का एक मध्यमवर्गीय स्त्री और उसके बंदिस्त जीवन की ओर ध्यान खींच लिया है। इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के किसी एक छोटे शहर की बड़ी–सी ड्योढी में बसे एक सामान्य परिवार की कहानी है,जिस घर में दादा और दादी का राज चलता है, उनके आदेश के बिना कोई भी आवाज उठाने की हिम्मत नहीं करता है। दादा जी घर के बाहर अपना धाक जमाते हैं तो दादी घर के अन्दर। दूसरी ओर माई है जो घर में एक साये की तरह रहने वाली और घर में सभी परिवार सदस्यों के सुख–सुविधाओं का संचालन करती हुई दिखाई देती है। प्रस्तुत उपन्यास में 'माई' परम्परागत नारी के रूप में चित्रित की गई है। वह अपने परिवार जनों के लिए कई किस्म के भोजन बनाती है। दादा–दादी के लिए पक्का भोजन जैसे– पूरी, पराठे, भाजी, रबड़ी तो परिवार वालों के लिए दाल, चावल, कढ़ी आदि। याने जितने परिवार के सदस्य नहीं उससे ज्यादा तो वह भोजन में अलग–अलग पदार्थ बनाती है लेकिन किसी भी परिवार के सदस्य के खिलाफ आवाज उठा करना नहीं कहती। 'माई' के जीने का एक ही लक्ष्य था– सर झुकाए, आँखें जमीन पर गड़ाए, दूसरों की सुनना, दूसरों की मर्जी पूरी करना। परिवार की दादी एक स्त्री होने के पश्चात् भी माई से ऐसे ही आचरण की आस रखती है क्योंकि उनका मानना है कि सामाजिक रीति–रिवाजों के नाम पर चली आ प्रथाओं में घर की बहू उन तमाम बंधनों को अपना कर्तव्य समझें जो कर्तव्यों के नाम पर किसी जमाने में घर की बहू होने के नाते दादी ने भी स्त्री पीड़ा को सहा है। इस कारण 'माई' का इस तरह का व्यवहार दादी की नजर में एक आदर्श बहू का जीवन है। इसलिए माई को अपने अधिकारों के नीचे दबाये रखने मे दादी को कुछ गलत होने का अहसास भी नहीं होता है। दादी के साथ ही माई का परिवार जनों के लिए अपनी आशा–आकांक्षाओं को मार कर जीना सभी परिवार के सदस्यों के कुछ बड़ी बात नहीं लगती है। उनके लिए तो 'माई' का समग्र जीवन ही उनके लिए है।

प्रस्तुत उपन्यास में 'माई' उन तमाम मध्यम वर्ग की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो पितृसत्तात्मक पद्धति को अपना जीवन धर्म मान कर जी रही हैं। वर्तमान समय में आधुनिकता के नाम पर भी 'पितृसत्तात्मक पद्धति' अपने पैर जमाएँ हुए है, जहाँ पर नारी के अस्तित्व की कोई पहचान ही नहीं है। वहाँ पर नारी दिन–रात पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उठाने में इतनी व्यस्त रहती है की उसे स्वयं के लिए सोचने का अवकाश भी नहीं मिलता। एक तरफ नारी अपने हक के लिए आवाज उठाती दिखाई देती है तो दूसरी तरफ माई जैसी स्त्री अपने कर्तव्यों की आड़ में भौतिक असुविधाओं के साथ भारी भीड़ में तनहा जीवन जी रही है।

माई के इस परिवार में एक और पुराना खयाल चलता है, जिसमें औरतें घर से बाहर नहीं जाती और न ही वह अपनी मनमर्जी से कुछ कर पाती है। इस परम्परा के नाम पर उपन्यास में माई की भाँति उसकी बेटी 'सुनैना' को भी घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता। जाती है, तो उसे कई सारे बंधनों के साथ जीना पड़ता है। घर में माई के दोनों बच्चों में सुबोध और सुनैना दोनों के लिए भी अलग–अलग नियम है। लड़का होने के कारण सुबोध विलायत में पढ़ने के लिए जाता है। उसे घर वालों ने पूरी सहूलियत दे रखी है। सुबोध घर के बाहर जाकर कितने ही सम्बन्ध बना ले, तो उसे कोई कुछ नहीं कहता लेकिन सुनैना कुछ करना चाहे तो उसकी बुआ उसे 'भारतीय सभ्यता' की सीख देना शुरू कर देती हैं। बार–बार यह

अभ्यास कराया जाता है कि– 'तुम स्त्री हो' इसलिए घर में बेटियों को बाहर जाना मना होता है इस सोच के कारण ही आज आधुनिक युग में भी लड़कियाँ संकुचित रूढ़ियों के सांचे में स्वयं को ढाल लेती हैं। वह पढ़ी–लिखी होने के बाद भी सुबोध की तरह खुले में नहीं जी सकती क्योंकि वह बेटा नहीं बेटी है। घर में दादी उसे हमेशा हड़काती रहती है। दादी को उसका उछलना कूदना बुरा लगता है। उसे टोकते हुए दादी कहती हैं – ''ठिक से बइठ, का बेहया जइसन गोड़ खोल के बइठल बाड़े?''[3] फिर भी अपने ऊपर हो रहे अन्याय को सहती सुनैना अपनी माँ को घर की दहलीज के बाहर निकालने की बहुत कोशिश करती दिखाई देती है लेकिन माई अपनी बेटी की बात को टाल कर इसी पारिवारीक पीड़ा को अपना जीवन मानती है। ऊपर से बुआ ही उसे घर के नियम समझाती है। माई का बेटा सुबोध नए खयालों का युवक है। बाहर की दुनियां देखने के बाद वह अपनी बहन को भी उस ड्योढी के बाहर निकाल कर बाहर की दुनिया में लाता है। उसे बाहर उसकी पढ़ाई पूरी करने के लिए निकाल लेता है, ताकि वह भी खुद के पैरों पे खड़ी हो सके और ये दोनों बच्चे मिलकर 'माई' को उस ड्योढी से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं क्योंकि 'माई' ने कभी ड्योढी के बाहर की दुनिया देखी ही नहीं है। जब उसे बाहर निकाला जाता है, तो वह छोटी बच्ची बन जाती है। इसलिए बच्चों की नई पीढ़ी की सोच के मुताबिक वे 'माई' को बेचारी समझने लगते हैं। इस सम्बन्ध में गीतांजलिश्री कहती हैं– "बच्चे जानते हैं कि, वक्त लगेगा, माई को दुनिया में चलना सीखने में वक्त लगेगा। जब उसे खींच–खाँचकर बाहर ले आते तो माई नन्हीं–सी बच्ची बन जाती। हमारा हाथ पकड़कर सड़क पार करती, भीड़ में घबराई–सी घुसती।"[4] सुनैना हर बार अपनी माँ को उस घर से बाहर लाने का प्रयास करती है, लेकिन वह खुद ही उसी में फँस जाती है। अपने भाई का साथ पाकर सुनैना रीति–रिवाजों के नाम पर बनाएँ नियमों के खिलाफ आवाज उठाती है। वह अपना जीवन अपने नियमों के आधार पर जीना चाहती है वह नहीं चाहती है कि उसकी जिंदगी भी अपनी माँ की तरह बन जाए। वह कहती है– ''मैं माई नहीं बन पाऊंगी। वह इस सदी से लोप होती जा रही है। मैं माई बन भी सकती तो भी नहीं बनना चाहूंगी। मुझे माई नहीं बनना। जी जान से लडूँगी कि माई नहीं बनूं।"[5]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में माई के साथ ही अन्य स्त्री पात्रों के माध्यम से मध्यवर्गीय नारी चरित्रों में घरेलू, कामकाजी, सामाजिकता आदि का अन्तःसंघर्ष उभरता दिखाई देता है। उपन्यास में चित्रित नारी चरित्रों में वैयक्तिक रुचि महत्वाकांक्षा, स्वतंत्र चेतना, अस्तित्व और अस्मिता के पहचान से कई अधिक जीवन के दुःखों एवं संघर्षों से परिपूर्ण है और उसके समानान्तर पीढ़ियों का मोह भंग, टूटन, विघटन, वर्ग संघर्ष की समानान्तर चेतना एवं जीवन का अर्थ–बोध है। इस उपन्यास में घर में माई पढ़ी–लिखी होने के बावजूद भी उसके विचारों को कोई महत्व नहीं देता है। उसका अस्तित्व केवल चाहरदिवारी के अन्दर है। घर की मर्यादाओं को तोड़ना अच्छे और संस्कारी औरतों के लक्षण नहीं होते यह बात उसके दिमाग़ में बिठाई जाती है। वह घर के लोगों के प्रति अपना पूरा अस्तित्व खो देती है। अपने ऊपर होने वाले अन्यायों को सहन करते हुए उसे अपना कर्तव्य समझकर पूरा करने की हरदम कोशिश करते रहती है। घर के कल्याण के लिए बड़े–बड़े व्रत रख लेती है। लेखिका कहती है– ''त्याग करना और कुछ पाना हमारे यहाँ की सदियों पुरानी प्रथा है। माई कष्ट सह के त्याग करती, दूसरे कुछ पा जाते हैं। व्रतों की ही लम्बी फेहरिस्त थी जो सारे के सारे वह रखती थी। तीज, ललही छठ, बृहस्पति, सोमवार, शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी। कोई पति की मंगलकामना के लिए, कोई पुत्र के लिए, संतान के लिए।''[6] लेकिन इन सबके बीच माई अपना अस्तित्व खो देती है।

भारतीय संस्कृति की चाहरदीवारी में रहने वाली 'माई' मध्यम परिवार के नियमों को तोड़ना नहीं चाहती। बल्कि खुद उसमें फंसती चली जाती है। खुद पढ़ी–लिखी होने के बावजूद भी घर में अपने पति और बाकी घर वालों के व्यवहार सहती हुई शांति से काम करती रहती है। घर में उसकी बातों की तरफ कोई भी ध्यान नहीं देता। घर में दादी 'माई' को बात–बात पर टोकती रहती हैं, लेकिन फिर भी माई कभी पलटकर जवाब नहीं देती क्योंकि उसका जवाब देना उसे अच्छी बहू होने के खिताब का खयाल दिलाता है। सुनैना और सुबोध दोनों माई को ड्योढी में होने वाली परेशानी के बारे में समझाते हैं उससे इन जंजीरों को तोड़ने की सलाह देने का प्रयास करते हैं और 'माई' को वहाँ से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं। तब माई कहती है ''तुम समझते क्यों नहीं, मुझे मजा आता है, घर की चीज है, सबको अच्छी लगती है, यह करूँ तो क्या स्कूल–कॉलेज जाऊँगी?''[7] माई में इतना साहस नही है कि वह घर के लोगों के खिलाफ जाकर कोई काम करें। लेकिन बहुत बाद में सुनैना को 'माई' के मन की भावनाओं

की समझ होने के बाद वह माई को समझने की कोशिश करती है और उसके लिए जरूरी हो जाता है कि वह 'माई' नैरेटर बने। प्रस्तुत उपन्यास की 'माई' सभी मध्यम वर्गीय भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक पद्धति के कारण माई की तरह कई नारियों को हमेशा घर की मर्यादाओं में रखने की कोशिश की जाती है। जब भी किसी स्त्री द्वारा आवाज उठाने की कोशिश की जाती है तो समाज ने उसके ही ऊपर दबाव डालने की कोशिश की है। लेकिन आज आधुनिक समाज में एक तरफ स्त्री अपने हक के लिए लड़ रही है, पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर वह अपना और अपने परिवार का नाम रोशन कर रही है। अपनी कर्तबकारी की बदौलत उसे समाज में पुरुषों की बराबरी में स्थान मिल रहा है। इस कारण स्त्री के बारे में समाज का दृष्टि कौन बदलता हुआ दिखाई देता है। तो दूसरी तरफ 'माई' जैसी स्त्री चली आ रही तथागत परम्परा तथा पितृसत्तात्मक समाज के नियमों को अपने कर्तव्य समझकर पीड़ित है। समाज का डर उसके मन में गहराई से बैठ गया है, जिसमे से वह बाहर निकलने की कोशिश करती हुई दिखाई देती है।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'नारी चेतना' या 'नारी विमर्श' आधुनिक साहित्य और समाज का अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। नारी चेतना का सम्बन्ध केवल स्त्री की स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि उसके आत्मसम्मान, अधिकार, अस्तित्व और पहचान से जुड़ा हुआ है। सदियों से भारतीय समाज में स्त्री को परिवार और समाज की मर्यादाओं में बाँधकर रखा गया। उसे त्याग, सहनशीलता और सेवा की प्रतिमा मानते हुए उसके व्यक्तिगत अधिकारों और इच्छाओं को महत्व नहीं दिया गया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को हमेशा पुरुष के अधीन रहने की शिक्षा दी, जिसके कारण वह अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने में स्वतंत्र नहीं रही। इसी अन्यायपूर्ण स्थिति के विरोध में नारी चेतना और नारी विमर्श का जन्म हुआ। अतः गीतांजलिश्री का 'माई' उपन्यास नारी चेतना और नारी विमर्श की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यास की 'माई' भारतीय मध्यमवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने पूरे जीवन को परिवार के लिए समर्पित कर देती है। यह उपन्यास समाज में स्त्री–पुरुष के बीच मौजूद असमानता को उजागर करता है। सुनैना का कथन – "मैं माई नहीं बनूँगी।" नारी चेतना का सशक्त स्वर बनकर उभरता है। 'माई' उपन्यास यह भी दर्शाता है कि कई बार स्त्रियाँ स्वयं भी परम्पराओं और सामाजिक मान्यताओं को अपना कर्तव्य मानकर उनका पालन करती रहती हैं। माई और दादी जैसे पात्र इसी मानसिकता को प्रस्तुत करते हैं। वे अपने त्याग और सहनशीलता को ही आदर्श स्त्री का गुण समझती हैं। यही कारण ह ै कि स्त्री का शोषण केवल पुरुषों द्वारा ही नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था और परम्पराओं के माध्यम से भी होता है। इसलिए नारी विमर्श यह प्रश्न उठाता है कि क्या स्त्री का जीवन केवल परिवार और दूसरों की सेवा तक सीमित है? क्या उसे अपने सपनों और इच्छाओं को पूरा करने का अधिकार नहीं है? आधुनिक समय में शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जागरुकता के कारण स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हुई हैं। आज स्त्री राजनीति, विज्ञान, साहित्य, शिक्षा, खेल और प्रशासन जैसे सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। इसके बावजूद समाज में आज भी अनेक स्त्रियाँ 'माई' की तरह पारम्परिक बंधनों और मानसिक दबावों के बीच जीवन जीने के लिए विवश हैं।

अन्ततः कहा जा सकता है कि 'माई' उपन्यास केवल एक स्त्री की कहानी नहीं, बल्कि भारतीय मध्यमवर्गीय स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण है। यह उपन्यास नारी चेतना को जागृत करते हुए स्त्री के मौन संघर्ष, त्याग और पीड़ा को सामने लाता है। साथ ही यह संदेश देता है कि स्त्री को केवल सहनशीलता और त्याग की प्रतिमा मानने के बजाय उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व और समान अधिकारों के साथ स्वीकार करना आवश्यक है। समाज में वास्तविक समानता तभी स्थापित होगी, जब स्त्री को भी अपने जीवन के निर्णय लेने, अपने सपनों को पूरा करने और सम्मानपूर्वक जीवन जीने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी।

संदर्भ गन्थ सूची

1. 'संचारिका' पत्रिका, सं. 2000, पृष्ठ संख्या – 09 ।
2. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, तीसरा संस्करण, 2016, पृष्ठ संख्या – 9।
3. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या – 46।
4. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या – 99।
5. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या – 64।
6. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या – 53।
7. गीतांजलिश्री – माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या – 68।

ISSN : 2394-4366

Received: 20 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

शहरी एवं ग्रामीण युवतियों की शिक्षा एवं नौकरी में सामाजिक असमानता का प्रभावःएक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

– श्रेया श्रीवास्तव
शोधार्थी – समाजशास्त्र विभाग,
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग – 491002
(छत्तीसगढ़)

ई–मेलः
siyashrivastava1111@gmail.com

– शोध निर्देशक
– डॉ. रुपाली शर्मा
सहायक प्राध्यापक –
समाजशास्त्र विभाग,
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग – 491002
(छत्तीसगढ़)

ई–मेलः
rupalisharma11@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध–पत्र शहरी और ग्रामीण परिवेश के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में युवतियों की शिक्षा तथा रोजगार पर सामाजिक असमानता के प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। समकालीन भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के बावजूद, भौगोलिक अवस्थिति, जातीय पदानुक्रम, वर्ग चेतना और पितृसत्तात्मक मानदण्ड युवतियों के अवसरों को गहराई से प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन स्पष्ट करता है कि जहाँ एक ओर शहरी युवतियों के पास आधुनिक शिक्षा, सूचना तकनीक और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में रोजगार के बेहतर अवसर हैं (यद्यपि वे वहाँ संगठनात्मक 'ग्लास सीलिंग' और मानसिक तनाव का सामना करती हैं), वहीं दूसरी ओर ग्रामीण युवतियों को वित्तीय संकट, बुनियादी ढाँचे (परिवहन व सुरक्षा) की कमी और कृषि या असंगठित क्षेत्रों में कम वेतन वाली नौकरियों की सीमाओं में बंधना पड़ता है। यह शोध दर्शाता है कि ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में युवतियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता आज भी पारिवारिक नियंत्रण और 'भूमिका द्वन्द्व' के अधीन है। निष्कर्षतः जब तक ग्रामीण–शहरी शैक्षिक अन्तराल और लैंगिक सामाजिकरण की रूढ़ियों को दूर नहीं किया जाएगा, तब तक वास्तविक समतामूलक समाज की स्थापना सम्भव नहीं है।

मुख्य शब्द – शहरी–ग्रामीण विभाजन, सामाजिक असमानता, लैंगिक स्तरीकरण, शैक्षिक सुलभता, महिला श्रम बल सहभागिता (FLFPR), भूमिका द्वन्द्व।

अध्ययन की पृष्ठभूमि–

भारतीय समाज के ताने–बाने को समझने के लिए श्भारतश (ग्रामीण अंचल) और 'इण्डिया' (शहरी केन्द्र) के बीच के संरचनात्मक अन्तर्विरोधों को समझना अनिवार्य है। सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धान्तों के अनुसार– किसी भी व्यक्ति के जीवन के अवसर) उसकी सामाजि पृष्ठभूमि से तय होते हैं। जब हम इस प्रतिमान को युवतियों की शिक्षा और नौकरी के सन्दर्भ में देखते हैं, तो ग्रामीण और शहरी विभाजन असमानता की एक नई और जटिल परत जोड़ देता है। ऐतिहासिक रूप से, स्वतंत्रता के बाद से शिक्षा के सार्वभौमीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने युवतियों के लिए विकास के नए द्वार खोले हैं। परन्तु, समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह विकास अत्यन्त विषम रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सामाजिक संरचना पारम्परिक मूल्यों, जातिगत जकड़न और कृषि–आधारित आर्थिकी से संचालित होती है। यहाँ युवतियों की उच्च्य शिक्षा को एक 'आर्थिक जोखिम' या केवल 'विवाह बाजार' में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने

वाले कारक के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, शहरी क्षेत्रों में पूंजीवाद, महानगरीय संस्कृति और मध्यम वर्ग के उदय ने युवतियों को स्वायत्तता और पेशेवर गतिशीलता प्रदान की है।

तथापि, यह असमानता केवल ग्रामीण–शहरी अवसरों के अन्तर तक सीमित नहीं है। जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर के श्जीवन शैलीश और पियरे बोर्दियो के 'सांस्कृतिक पूँजी' के सिद्धान्तों के आलो में देखें, तो शहरी युवतियों के पास तकनीकी कौशल, भाषाई दक्षता (अंग्रेजी भाषा पर नियंत्रण) और सामाजिक नेटवर्क का सहज लाभ होता है, जिससे वे कॉर्पोरेट और सेवा क्षेत्रों में आसानी से प्रवेश कर जाती हैं। वहीं, ग्रामीण पृष्ठभूमि की युवतियां उत्कृष्ट मेधा के बावजूद इन अदृश्य बाधाओं के कारण रोजगार बाजार में पिछड़ जाती हैं।इसके अतिरिक्त, दोनों ही परिवेशों में पितृसत्ता का प्रभाव अलग–अलग रूपों में दिखाई देता है। जहाँ ग्रामीण युवती को घर से बाहर निकलने के लिए श्पारिवारिक सम्मानश और भौतिक सुरक्षा से समझौता करना पड़ता है, वहीं शहरी कामकाजी युवती को 'सुपर–बनने के चक्कर में घर और दफ्तर के बीच श्दोहरे कार्यबोझ' के मनोवैज्ञानिक तनाव को झेलना पड़ता है। अतः, शहरी और ग्रामीण युवतियों की इन विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक वास्तविकताओं और उनके मार्ग में आने वाली असमानताओं का एक तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना समकालीन सामाजिक शोध के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

शोध प्रविधि

अध्ययन की शोध प्रविधि–

प्रस्तुत शोध कार्य की प्रकृतिवर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है, जिसका उद्देश्य समस्या के विभिन्न सामाजिक आयामों को स्पष्टता से प्रस्तुत करना है। अध्ययन में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के दृष्टिकोणों का समन्वय किया गया है। समकालीन जमीनी हकीकत को समझने के लिए एक उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि का उपयोग करके विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि (ग्रामीण और शहरी) से आने वाली 330 युवतियों का चयन किया गया। आँकड़ों के एकत्रीकरण के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित एवं मानकीकृत उपकरण 'शिक्षा एवं सेवा में लैंगिक असमानता का प्रभाव मापनी' (Impact of Gender Inequality in Education and Service Scale & IGIESS)का अनुप्रयोग किया गया है। यह मापनी युवतियों के करियर, उनके आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता और उनके समग्र विकास पर पड़ने वाले बहुआयामी प्रभावों का मात्रात्मक व वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करती है।

प्रदत्त विश्लेषण एवं समाजशास्त्रीय व्याख्या–

तालिका क्रमांक – 01

शिक्षा एवं सेवा में लैंगिक असमानता का प्रभाव मापनी (IGIESS) पर छात्राओं की प्रतिक्रियाओं का आवृत्ति एवं प्रतिशत वितरण **(तालिका क्रमांक–01 अगले पृष्ठ पर देखें)।**

व्याख्या एवं समाजशास्त्रीय विवेचन–

सारणी संख्या – 01 में भौगोलिक पृष्ठभूमि के आधार पर संकलित समंकों का आयाम–वार विवेचन निम्नलिखित है–

(अ) शैक्षणिक चयन पर प्रभाव एवं वैचारिक आयाम (कथन 1 से 7)– यह आयाम भौगोलिक संस्तरण के अन्तर्गत युवतियों के शैक्षणिक प्रदर्शन और वैज्ञानिक चेतना का मापन करता है। आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र की 60.00 प्रतिशत छात्राएं इस विचार से सहमत हैं कि तकनीकी विषयों में लड़कों को प्राथमिकता मिलने से छात्राओं के आत्मविश्वास पर चोट पहुँचती है, जबकि शहरी क्षेत्र में यह सहमति 41.33 प्रतिशत है। इसी प्रकार, बाहर भेजने में परिवार के हिचकिचाहट के कारण मनपसन्द संस्थान छोड़ने को विवश होने वाली छात्राओं का प्रतिशत ग्रामीण अंचलों में 67.78 प्रतिशत की अत्यधिक उच्च दर पर है, जब कि शहरी क्षेत्र में यह प्रवृत्ति 45.33 प्रतिशत दर्ज की गई है।

इसका समाजशास्त्रीय कारण यह है कि ग्रामीण परिवारों में 'संस्कृतिकरण' और पारंपरिक मानदण्ड अधिक प्रभावी होने से लड़कियों की शैक्षणिक गतिशीलता को सीमित रखा जाता है। इसके विपरीत, शहरी क्षेत्र की छात्राओं को अधिक शैक्षणिक जागरुकता और आधुनिक परिवेश के कारण उच्च शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए परिवार से बेहतर सहयोग (कथन 6 – 58.00 प्रतिशत शहरी सहमति) सुलभ हो पाता है।

(ब) संसाधनों की उपलब्धता का प्रभाव एवं शैक्षणिक प्रदर्शन (कथन 8 से 14)– यह आयाम पारिवारिक प्राथमिकताओं और घरेलू उत्तरदायित्वों के कारण बालिकाओं के प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर करता है। बेटी की जगह बेटे की शिक्षा पर व्यय

ISSN : 2394-4366

तालिका क्रमांक–01

क्र. सं.	मापनी के कथन	सहमत	अनिश्चित	असहमत
1.	तकनीकी और वैज्ञानिक विषयों में लड़कों को प्राथमिकता मिलने से युवतियों की बौद्धिक क्षमता और उनके आत्मविश्वास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।	**108 60.00%)** 62 (41.33%)	**22 (12.22%)** 28 (18.67%)	**50 (27.78%)** 60 (40.00%)
2.	बाहर भेजने में परिवार के डर और हिचकिचाहट के कारण युवतियों को अपने मनपसंद उच्च शिक्षण संस्थानों को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है।	**122 67.78%)** 68 (45.33%)	**15 (8.33%)** 22 (14.67%)	**43 (23.89%)** 60 (40.00%)
3.	करियर काउंसलिंग के दौरान युवतियों के विचारों को गंभीरता से न लेने के कारण वे अपने वास्तविक हुनर के अनुसार करियर का चुनाव नहीं कर पातीं।	**108 60.00%)** 68 (45.33%)	**25 (13.89%)** 24 (16.00%)	**47 (26.11%)** 58 (38.67%)
4.	समाज द्वारा कुछ खास विषयों को ही युवतियों के योग्य मानने के कारण उनके भीतर लीक से हटकर कुछ नया करने की इच्छा समाप्त हो जाती है।	**132 73.33%)** 79 (52.67%)	**12 (6.67%)** 19 (12.67%)	**36 (20.00%)** 52 (34.66%)
5.	कॉलेज या विश्वविद्यालय के चयन में समझौता करने के कारण युवतियों के उच्च शैक्षणिक प्रदर्शन और उनके करियर के अवसरों पर बुरा असर पड़ता है।	**106 58.89%)** 58 (38.67%)	**16 (8.89%)** 25 (16.67%)	**58 (32.22%)** 67 (44.66%)
6.	उच्च शिक्षा के प्रवेश के समय परिवार से पूरा सहयोग मिलने के कारण युवतियों के भीतर बड़े लक्ष्यों को प्राप्त करने का हौसला बढ़ता है।	**58 (32.22%)** 87 (58.00%)	**28 (15.56%)** 19 (12.67%)	**94 (52.22%)** 44 (29.33%)
7.	रूढ़िवादी धारणाओं के कारण शोध कार्यों में हतोत्साहित किए जाने से युवतियों की मौलिक और वैज्ञानिक सोच का विकास रुक जाता है।	**118 65.56%)** 76 (50.67%)	**20 (11.11%)** 26 (17.33%)	**42 (23.33%)** 48 (32.00%)
8.	शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों द्वारा समान अवसर दिए जाने से छात्राओं की शैक्षणिक और नेतृत्व क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है।	**52 (28.89%)** 75 (50.00%)	**28 (15.56%)** 25 (16.67%)	**100 (55.5%)** 50 (33.33%)
9.	सीमित वित्तीय संसाधनों में बेटी की जगह बेटे पर खर्च करने की मानसिकता युवतियों के भीतर हीन भावना और असुरक्षा को जन्म देती है।	**106 58.89%)** 58 (38.67%)	**16 (8.89%)** 25 (16.67%)	**58 (32.22%)** 67 (44.66%)
10.	छात्रवृत्तियों और शोध अनुदानों में लड़कों को अधिक लाभ मिलने से आर्थिक रूप से कमजोर मेधावी युवतियों की पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है।	**104 57.78%)** 72 (48.00%)	**28 (15.56%)** 26 (17.33%)	**48 (26.66%)** 52 (34.67%)
11.	सेमिनार और प्रतियोगिताओं में नेतृत्व के अवसर न मिलने के कारण छात्राओं के भीतर सार्वजनिक मंचों पर बोलने का आत्मविश्वास विकसित नहीं हो पाता।	**102 56.67%)** 66 (44.00%)	**32 (17.78%)** 30 (20.00%)	**46 (25.55%)** 54 (36.00%)
12.	पढ़ाई के साथ घरेलू जिम्मेदारियों का अत्यधिक	**126 70.00%)**	**14 (7.78%)**	**40 (22.22%)**

	बोझ होने के कारण युवतियां अपनी परीक्षाओं की तैयारी पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित नहीं कर पातीं।	79 (52.67%)	21 (14.00%)	50 (33.33%)
13.	आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में बौद्धिक क्षमता को लड़कों के बराबर आंके जाने से युवतियों को अपनी योग्यता सिद्ध करने की नई प्रेरणा मिलती है।	**68 (37.78%)** 79 (52.67%)	**22 (12.22%)** 23 (15.33%)	**90 (50.00%)** 48 (32.00%)
14.	प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए समान समय और सुविधाएं न मिलने के कारण युवतियाँ अपनी वास्तविक क्षमता के अनुरूप परिणाम नहीं ला पातीं।	**114 63.33%)** 76 (50.67%)	**18 (10.00%)** 22 (14.66%)	**48 (26.67%)** 52 (34.67%)
15.	साक्षात्कार में योग्यता के बजाय शादी या पारिवारिक योजनाओं पर प्रश्न पूछे जाने से युवतियों की मानसिक एकाग्रता और मनोबल पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।	**98 (54.44%)** 65 (43.33%)	**34 (18.89%)** 33 (22.00%)	**48 (26.67%)** 52 (34.67%)
16.	चयन प्रक्रियाओं में किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह न होने के कारण युवतियां बिना किसी मानसिक दवाव के अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर पाती हैं।	**48 (26.67%)** 77 (51.33%)	**24 (13.33%)** 18 (12.00%)	**1089 (60%)** 55 (36.67%)
17.	मातृत्व अवकाश के डर से निजी कंपनियों द्वारा नौकरी न दिए जाने के कारण युवतियों में अपनी उच्च शिक्षा और डिग्री के प्रति निराशा पैदा होती है।	**98 (54.44%)** 65 (43.33%)	**34 (18.89%)** 33 (22.00%)	**48 (26.67%)** 52 (34.67%)
18.	योग्यता के बल पर सम्मानजनक रोजगार मिलने से युवतियों की सामाजिक प्रस्थिति सुदृढ़ होती है और वे समाज में खुद को सुरक्षित महसूस करती हैं।	**130 72.22%)** 118 (78.67%)	**16 (8.89%)** 16 (10.66%)	**34 (18.89%)** 16 (10.67%)
19.	देर रात की नौकरियों में सुरक्षा के नाम पर रोके जाने के कारण युवतियों के सामने रोजगार के विकल्प सीमित हो जाते हैं।	**124 68.89%)** 76 (50.67%)	**20 (11.11%)** 25 (16.67%)	**36 (20.00%)** 49 (32.66%)
20.	संकट के समय महिलाओं की छंटनी पहले किए जाने की प्रवृत्ति के कारण कामकाजी युवतियों में अपने भविष्य के प्रति हमेशा अनिश्चितता बनी रहती है।	**104(57.78%)** 72 (48.00%)	**28 (15.56%)** 26 (17.33%)	**48 (26.66%)** 52 (34.67%)
21.	परीक्षाओं में निष्पक्ष मूल्यांकन होने से युवतियों के भीतर अपनी कार्यक्षमता को और अधिक निखारने का उत्साह पैदा होता है।	**58 (32.22%)** 87 (58.00%)	**28 (15.56%)** 19 (12.67%)	**94 (52.22%)** 44 (29.33%)
22.	महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट्स की जिम्मेदारी पुरुषों को दिए जाने के कारण महिला कर्मचारियों का व्यावसायिक विकास प्रभावित होता है और वे आगे नहीं बढ़ पातीं।	**114 63.33%)** 76 (50.7%)	**18 (10.00%)** 22 (14.66%)	**48 (26.67%)** 52 (34.67%)
23.	समान काम के लिए पुरुषों के बराबर वेतन न मिलने के कारण कामकाजी महिलाओं के कार्य	**104(57.78%)** 72 (48.00%)	**28 (15.56%)** 26 (17.33%)	**48 (26.66%)** 52 (34.67%)

ISSN : 2394-4366

	प्रदर्शन और उनकी प्रेरणा में कमी आती है।			
24.	पुरुष सहकर्मियों द्वारा महिला अधिकारियों के निर्णयों को आसानी से स्वीकार न करने से कार्यस्थल पर असहजता और तनाव का माहौल बनता है।	**128 71.11%)** 84 (56.00%)	**14 (7.78%)** 17 (11.33%)	**38 (21.11%)** 49 (32.67%)
25.	पदोंनति के मार्ग में 'कांच की छत' (Glass Ceiling) जैसी सामाजिक बाधाएं होने से योग्य महिलाओं की प्रशासनिक और प्रबंधकीय क्षमताएं कुंठित हो जाती हैं।	**128(71.11%)** 82 (54.67%)	**24 (13.33%)** 26 (17.33%)	**28 (15.56%)** 42 (28.00%)
26.	सुरक्षित परिवहन और शिशु गृह जैसी अनुकूल नीतियां न होने के कारण कई योग्य युवतियों को अपनी अच्छी-खासी नौकरियां छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है।	**134 74.44%)** 86 (57.33%)	**12 (6.67%)** 18 (12.00%)	**34 (18.89%)** 46 (30.67%)
27.	पेशेवर बैठकों में सुझावों को कम गंभीरता से सुने जाने के कारण महिलाएं अपनी बात को मुखरता से रखना बंद कर देती हैं।	**102 56.67%)** 66 (44.00%)	**32 (17.78%)** 30 (20.00%)	**46 (25.55%)** 54 (36.00%)
28.	खुद को साबित करने के लिए पुरुषों से अधिक कड़ी मेहनत करने के दबाव के कारण कामकाजी युवतियां अत्यधिक मानसिक तनाव और थकान का शिकार हो जाती हैं।	**128 71.11%)** 84 (56.00%)	**14 (7.78%)** 17 (11.33%)	**38 (21.11%)** 49 (32.67%)
29.	करियर से ज्यादा घरेलू कर्तव्यों को प्राथमिकता देने के सामाजिक दबाव के कारण युवतियां अपने व्यावसायिक सपनों के साथ समझौता कर लेती हैं।	**134 (74.44%)** 86 (57.33%)	**12 (6.67%)** 18 (12.00%)	**34 (18.89%)** 46 (30.67%)
30.	उच्च प्रशासनिक पदों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ने से नई पीढ़ी की युवतियों को उच्च शिक्षा और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है।	**130 72.22%)** 118 (78.67%)	**16 (8.89%)** 16 (10.66%)	**34 (18.89%)** 16 (10.67%)
31.	विवाह और बच्चों के बाद करियर से समझौता करने के कारण समाज में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम रह जाता है।	**128 71.11%)** 82 (54.67%)	**24 (13.33%)** 26 (17.33%)	**28 (15.56%)** 42 (28.00%)
32.	कार्य-जीवन संतुलन में परिवारों का सहयोग मिलने से कामकाजी युवतियां बिना किसी मानसिक तनाव के अपने करियर में नए मुकाम हासिल करती हैं।	**45 (25.00%)** 65 (43.33%)	**30 (16.67%)** 27 (18.00%)	**105 8.33%)** 58 (38.67%)
33.	विश्वविद्यालयों के शीर्ष प्रशासनिक पदों पर महिलाओं की संख्या कम होने के कारण छात्राओं की समस्याओं और उनकी सुरक्षा के मुद्दों को उचित प्राथमिकता नहीं मिल पाती।	**124 68.89%)** 76 (50.67%)	**20 (11.11%)** 25 (16.67%)	**36 (20.00%)** 49 (32.66%)
34.	नीति-निर्धारण करने वाली संस्थाओं में	**112 62.22%)**	**32 (17.78%)**	**36 (20.00%)**

	महिलाओं की कम भागीदारी के कारण महिलाओं के अनुकूल कड़े सुरक्षा और श्रम कानून नहीं बन पाते।	84 (56.00%)	27 (18.00%)	39 (26.00%)
35.	**सरकारी नीतियों और आरक्षण का सकारात्मक लाभ मिलने से सेवाओं में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ी है, जिससे समाज का उनके प्रति नजरिया बदला है।**	**52 (28.89%)** 75 (50.00%)	**28 (15.56%)** 25 (16.67%)	**100(55.55%)** 50 (33.33%)

बोल्ड डेटा – ग्रामीण पृष्ठभूमि, सामान्य डेटा – शहरी पृष्ठभूमि

करने की मानसिकता (कथन 9) से ग्रामीण पृष्ठभूमि की 58. 89 प्रतिशत छात्राएं व्यथित हैं, जब कि शहरी परिवेश में यह अनुपात 38.67 प्रतिशत है। पढ़ाई के साथ घरेलू जिम्मेदारियों के अत्यधिक बोझ (कथन 12) के कारण परीक्षाओं पर ध्यान केन्द्रित न कर पाने की विवशता ग्रामीण छात्राओं में 70.00 प्रतिशत जैसी चिंताजनक स्थिति में है, जो शहरी उत्तरदाताओं (52.67 प्रतिशत) की तुलना में काफी अधिक है।

यह भौगोलिक अन्तर स्पष्ट करता है कि ग्रामीण अंचलों की छात्राओं को उच्च शिक्षा में प्रवेश मिलने के बाद भी श्रम के पारम्परिक विभाजन का कठोरता से सामना करना पड़ता है, जो उनकी क्षमता के अनुरूप परिणाम लाने (कथन 14– 63.33 प्रतिशत ग्रामीण सहमति) के मार्ग में बाधा बनता है।

(स) रोजगार के अवसरों पर प्रभाव एवं बंतममत चयन की स्वायत्तता (कथन 15 से 21)– यह आयाम रोजगार प्राप्ति की प्रक्रियाओं और व्यावसायिक स्वायत्तता के संकटों की पड़ताल करता है। साक्षात्कार में योग्यता के बजाय विवाह या पारिवारिक योजनाओं पर प्रश्न पूछे जाने (कथन 15) को लेकर ग्रामीण वर्ग में 54.44 प्रतिशत और शहरी वर्ग में 43.33 प्रतिशत सहमति पाई गई है। देर रात की नौकरियों में सुरक्षा के नाम पर रोके जाने (कथन 19) के कारण रोजगार विकल्पों के सीमित होने की बात ग्रामीण पृष्ठभूमि की 68.89 प्रतिशत युवतियाँ मानती हैं, जब कि शहरी उत्तरदाताओं में यह सहमति 50.67% है।

यह विश्लेषण प्रतिपादित करता है कि ग्रामीण पृष्ठभूमि की युवतियों के बंतममत चयन की स्वायत्तता पर भौगोलिक और सुरक्षात्मक कारणों का दोहरा दबाव काम करता है, जिसके कारण योग्यता के बल पर सम्मानजनक रोजगार प्राप्त करने की राह में वे अधिक अनिश्चितता (कथन 20– 57.78 प्रतिशत ग्रामीण सहमति) का अनुभव करती हैं।

(द) कार्यस्थल के वातावरण का प्रभाव एवं व्यावसायिक संवृद्धि (कथन 22 से 28)– यह आयाम कार्य परिवेश की संरचना, पदोन्नति के अवरोधों और खुद को साबित करने के मनोवैज्ञानिक दबावों को रेखांकित करता है। महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट्स की जिम्मेदारी पुरुषों को दिए जाने (कथन 22) से महिला कर्मचारियों का विकास प्रभावित होने की बात पर ग्रामीण छात्राओं में 63.33 प्रतिशत और शहरी छात्राओं में 50.67 प्रतिशत की सहमति देखी गई है। पुरुष सहकर्मियों द्वारा महिला अधिकारियों के निर्णयों को सहजता से स्वीकार न करने (कथन 24) को लेकर ग्रामीण वर्ग की छात्राओं में 71.11 प्रतिशत की अत्यधिक उच्च सहमति दर्ज है।

यह इंगित करता है कि ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाली कामकाजी महिलाओं को व्यावसायिक क्षेत्रों में पदोन्नति के मार्ग में 'कांच की छत' (Glass Ceiling) जैसी सामाजिक बाधाओं (कथन 25 – 71.11 प्रतिशत ग्रामीण सहमति) का अधिक कड़ा सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि खुद को साबित करने के लिए पुरुषों से अधिक कड़ी मेहनत करने का दबाव (कथन 28) ग्रामीण परिवेश से जुड़ी युवतियों को अत्यधिक मानसिक तनाव (71.11 प्रतिशत) की ओर धकेलता है।

(इ) पारिवारिक–व्यावसायिक असंतुलन का प्रभाव एवं नीतिगत प्रतिनिधित्व (कथन 29 से 35)– यह अन्तिम आयाम (career) और घरेलू कर्तव्यों के अंतर्विरोधों, ड्रॉप–आउट प्रवृत्तियों और नीतिगत भागीदारी की वास्तविकता को उजागर करता है। career से ज्यादा घरेलू कर्तव्यों को प्राथमिकता देने के सामाजिक दबाव (कथन 29) पर ग्रामीण क्षेत्र की 74.44 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र की 57.33 प्रतिशत बालिकाओं ने अपनी सहमति जताई है। विवाह और बच्चों के बाद Career से समझौता

ग्रामीण एवं शहरी पृष्ठभूमि : आयाम-वार (प्रतिशत)

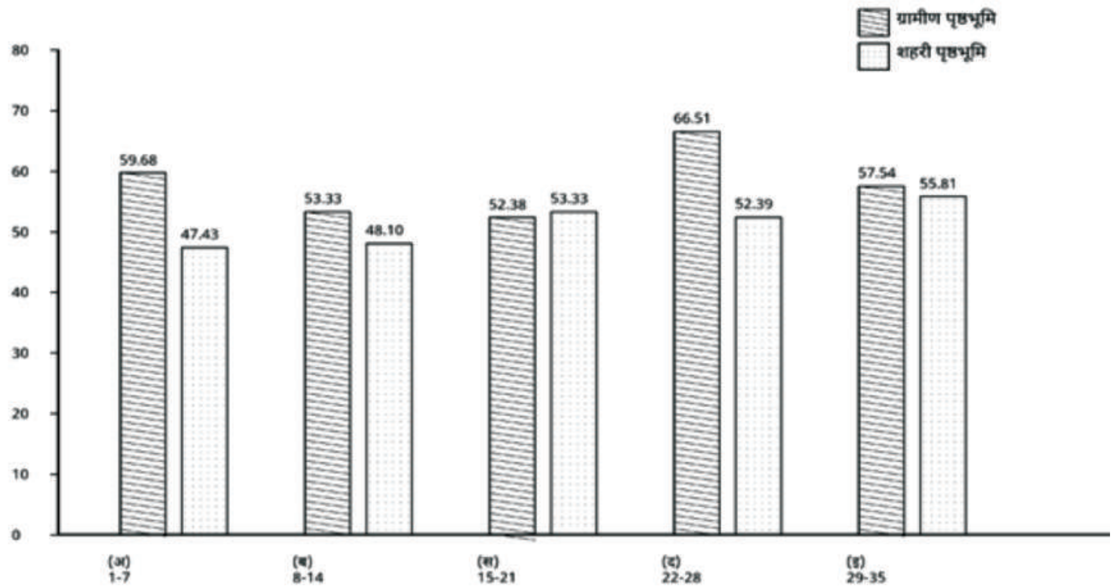

करने (कथन 31) के कारण समाज में आत्मनिर्भर महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम रहने की बात ग्रामीण समाज में 71. 11 प्रतिशत और शहरी समाज में 54.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा स्वीकार की गई है।

यह विमर्श स्पष्ट करता है कि नीति–निर्धारण करने वाली संस्थाओं में महिलाओं की कम भागीदारी (कथन 34– ग्रामीण 62.22 प्रतिशत, शहरी 56.00 प्रतिशत) के कारण उनके अनुकूल कड़े कानूनों का क्रियान्वयन धरातल पर कमजोर बना हुआ है, जिससे विश्वविद्यालयीन स्तर के शीर्ष प्रशासनिक पदों पर भी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व सीमित (कथन 33 – ग्रामीण 68.89 प्रतिशत, शहरी 50.67 प्रतिशत) परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष–

भौगोलिक अवस्थिति (ग्रामीण बनाम शहरी) के आधार पर किया गया यह विस्तृत तुलनात्मक विवेचन यह अकादमिक सत्य स्थापित करता है कि राजनांदगाँव जिले में ग्रामीण पृष्ठभूमि की छात्राएं पारिवारिक, शैक्षणिक और व्यावसायिक स्तरों पर शहरी छात्राओं की तुलना में कहीं अधिक कड़े सामाजिक नियंत्रण और संसाधनों की वंचना का सामना कर रही हैं। हालाँकि, जब बात आर्थिक आत्मनिर्भरता के उपरात्त मिलने वाले सामाजिक सम्मान (कथन 30 – ग्रामीण 72.22 प्रतिशत, शहरी 78.67 प्रतिशत) और स्वयं की क्षमता को सुदृढ़ करने की आकांक्षा की आती है, तब दोनों ही भौगोलिक परिवेशों की शिक्षित युवतियाँ लगभग एक समान वैचारिक दृढ़ता और उत्साह के साथ आगे बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्न्तार्ष्ट्रीय श्रम संगठन – (2024), द जेंडर गैप इन एम्प्लॉयमेंट – अ रूरल – अर्बन पर्सपेक्टिव, आई.एल.ओ. प्रकाशन, जेनेवा।
2. आंद्रे बेते – (2003), इक्वलिटी एण्ड इनइक्वलिटी – थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
3. आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS), वार्षिक रिपोर्ट (2024–25), सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MoSPI), भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली – (2023), शहरी–ग्रामीण विभाजन और महिला श्रम बल सहभागिता दर – एक तुलनात्मक अध्ययन, वॉल्यूम 58, अंक 18, मुंबई।
5. देसाई, नीरा और ठाकर, ऊषा (2007), भारत में महिला और समाज, के. पी. बागची एण्ड कम्पनी, कोलकाता।
6. दुबे, श्यामाचरण (2001).भारतीय समाज, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (NBT), नई दिल्ली।
7. बोर्दियो, पियरे (1986) – द फॉर्म्स ऑफ कैपिटल, इन जे. रिचर्डसन (संपादक), हैंडबुक ऑफ थ्योरी एण्ड रिसर्च फॉर द सोशियोलॉजी ऑफ एजुकेशन।
8. भारतीय समाजशास्त्रीय बुलेटिन – (2025), ग्रामीण भारत में युवतियों की उच्च शिक्षा और पितृसत्तात्मक बाधाएं, इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी, नई दिल्ली।
9. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) – स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
10. शर्मा, के. एल, (2018) – सामाजिक स्तरीकरण. जाति, वर्ग और लिंग, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
11. श्रीनिवास, एम. एन., (1995), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 22 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

वसुधैव कुटुम्बकम : वैश्विक शांति और भारत का नेतृत्व

– डॉ. दिनेश कुमार रावत
असिस्टेंट प्रोफेसर – रक्षा एवं स्त्रॉतेजिक अध्ययन विभाग,
बाबू रामपाल सिंह महाविद्यालय, मौरांवा, उन्नाव– 209821 (उत्तर प्रदेश)।

ई–मेल : **dineshkumarrawat3@gmail.com**

– श्री मोहन सिंह धनगर
शोधार्थी
राष्ट्रीय सुरक्षा अध्ययन विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सांबा–181143 (जम्मू–कश्मीर)

ई–मेल : **singhmohan25900@gmail.com**

सारांश (Abstract)

समकालीन वैश्विक व्यवस्था गहन परिवर्तन और बहुआयामी संकटों के दौर से गुजर रही है, जहाँ भू–राजनीतिक संघर्ष, आर्थिक असमानता, जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद और मानवीय सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियाँ अंतरराष्ट्रीय शांति और स्थिरता के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर रही हैं। ऐसी स्थिति में केवल शक्ति–राजनीति या संकीर्ण राष्ट्रहित पर आधारित दृष्टिकोण वैश्विक समस्याओं के समाधान में अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं। इस संदर्भ में भारतीय सभ्यतागत दर्शन से उद्भूत 'वसुधैव कुटुम्बकम' अर्थात "सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है", एक समावेशी, नैतिक और सहयोगात्मक वैश्विक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

यह शोध 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा को वैश्विक शांति के सैद्धांतिक आधार और व्यावहारिक अनुप्रयोगों के संदर्भ में विश्लेषित करता है। अध्ययन में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यह सिद्धांत मानवता की पारस्परिक निर्भरता को स्वीकार करते हुए संवाद, सह–अस्तित्व, करुणा और साझा उत्तरदायित्व को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का केंद्रीय मूल्य बनाता है। शोध विशेष रूप से मानवीय सुरक्षा, बहुपक्षीय सहयोग और वैश्विक शासन में नैतिकता की भूमिका पर प्रकाश डालता है।

इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन भारत की ऐतिहासिक और समकालीन वैश्विक भूमिका का परीक्षण करता है, जहाँ भारत अपने सभ्यतागत मूल्यों, कूटनीतिक व्यवहार और वैश्विक दक्षिण के प्रतिनिधित्व के माध्यम से एक जिम्मेदार और संतुलित वैश्विक नेतृत्व के रूप में उभरता है। शोध निष्कर्षतः यह प्रतिपादित करता है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम' न केवल एक दार्शनिक आदर्श है, बल्कि एक व्यवहार्य वैश्विक ढाँचा भी है, जो वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था में स्थायी शांति, सहयोग और न्यायपूर्ण वैश्विक व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

सांकेतिक शब्द : वसुधैव कुटुम्बकम; वैश्विक शांति; भारतीय सभ्यतागत दर्शन; भारत का वैश्विक नेतृत्व; मानवीय सुरक्षा; बहुपक्षीय सहयोग; वैश्विक शासन; अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध; नैतिक कूटनीति; वैश्विक दक्षिण।

भूमिका (Introduction)

इक्कीसवीं सदी का वैश्विक परिदृश्य तीव्र वैश्वीकरण, तकनीकी क्रांति और गहन अंतरनिर्भरता से चिह्नित है, परन्तु इसके साथ ही यह युग संघर्ष, असमानता, पर्यावरणीय संकट और अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था की गम्भीर चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है। क्षेत्रीय युद्ध, भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा,

आतंकवाद, साइबर असुरक्षा तथा जलवायु परिवर्तन जैसे बहुआयामी संकटों ने वैश्विक शान्ति और स्थिरता को जटिल बना दिया है। ऐसी परिस्थितियों में एक ऐसे नैतिक–दार्शनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस होती है, जो संकीर्ण राष्ट्रहित से ऊपर उठकर मानवता के साझा भविष्य को केन्द्र में रखे।

1. वसुधैव कुटुम्बकम का शाब्दिक और दार्शनिक अर्थ–

भारतीय सभ्यता से उद्भूत **'वसुधैव कुटुम्बकम'** जिसका अर्थ है **"सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार है"**– एक ऐसा ही समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह अवधारणा केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व, करुणा, अहिंसा और समभाव पर आधारित एक व्यावहारिक वैश्विक दर्शन है। इसमें मानव समाज की पारस्परिक निर्भरता को स्वीकार करते हुए सहयोग, संवाद और साझा उत्तरदायित्व को प्राथमिकता दी जाती है। आधुनिक अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों में, जहाँ शून्य–राशि सोच और शक्ति–राजनीति हावी रहती है, 'वसुधैव कुटुम्बकम' एक वैकल्पिक और समावेशी ढाँचा प्रदान करता है।

2. वैश्वीकरण, संघर्ष और अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था का सन्दर्भ–

इक्कीसवीं सदी का वैश्वीकरण आर्थिक, तकनीकी और सांस्कृतिक अन्तसम्बन्धों को तीव्र करता है, परन्तु साथ ही यह असमानताओं, पहचान–संघर्षों और शक्ति–राजनीति को भी उजागर करता है। क्षेत्रीय युद्ध, भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, आतंकवाद, साइबर असुरक्षा, जलवायु परिवर्तन और आपूर्ति–श्रृंखला संकटों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को अस्थिर किया है। ऐसी परिस्थितियों में संकीर्ण राष्ट्रवाद और शून्य–राशि सोच (zero-sum thinking) वैश्विक शांति के लिए चुनौती बनती है। इस पृष्ठभूमि में **'वसुधैव कुटुम्बकम'** एक वैकल्पिक नैतिक–रणनीतिक ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो सहयोग और साझा उत्तरदायित्व को केन्द्र में रखता है।

3. शांति, सहयोग और मानवीय सुरक्षा की आवश्यकता –

समकालीन सुरक्षा विमर्श में शांति को केवल सैन्य संतुलन तक सीमित नहीं रखा जा सकता। आज मानवीय सुरक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य, पर्यावरण, आर्थिक और डिजिटल आयामों सहित, वैश्विक नीति का केन्द्रीय तत्व बन चुकी है। चूँकि ये चुनौतियाँ राष्ट्रीय सीमाओं से परे हैं, अतः इनके समाधान भी सहयोगात्मक और बहुपक्षीय होने चाहिए। **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का सिद्धांत इसी सहयोगात्मक दृष्टि को सुदृढ़ करता है और वैश्विक शासन में नैतिकता के पुनर्स्थापन का मार्ग सुझाता है।

आधुनिक सुरक्षा विमर्श में केवल सैन्य शक्ति पर्याप्त नहीं रह गई है। **मानव सुरक्षा**– जिसमें स्वास्थ्य, खाद्य, पर्यावरण, आर्थिक स्थिरता और डिजिटल सुरक्षा शामिल हैं, आज प्राथमिकता बन चुकी है। वैश्विक समस्याएँ सीमाओं का सम्मान नहीं करतीं, अतः उनके समाधान भी सामूहिक होने चाहिए। शांति और सहयोग, प्रतिस्पर्धा के निषेध नहीं बल्कि उसके नैतिक संतुलन हैं। **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का दृष्टिकोण बहुपक्षीयता, विश्वास–निर्माण और समावेशी विकास को प्रोत्साहित कर मानवीय सुरक्षा की समग्र अवधारणा को सुदृढ़ करता है।

4. भारत की सभ्यतागत सोच और वैश्विक भूमिका–

भारत की सभ्यतागत सोच ऐतिहासिक रूप से संवाद, सहिष्णुता और विविधता में एकता की समर्थक रही है। उपनिवेशवाद–विरोध, गुटनिरपेक्षता से लेकर समकालीन बहुपक्षीय मंचों पर सक्रिय सहभागिता तक, भारत ने वैश्विक शांति–निर्माण में एक विशिष्ट भूमिका निभाई है। वर्तमान संदर्भ में, वैश्विक दक्षिण की आवाज़ को सशक्त करना, आपदा राहत, जलवायु कार्रवाई और बहुपक्षीय सुधारों की वकालत–ये सभी प्रयास भारत के उस नेतृत्व को रेखांकित करते हैं, जो **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की भावना पर आधारित है।

इस शोध का उद्देश्य **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की अवधारणा को वैश्विक शांति के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आयामों में विश्लेषित करना तथा भारत के उभरते वैश्विक नेतृत्व के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना है। अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि कैसे यह भारतीय दार्शनिक दृष्टि समकालीन अन्तरराष्ट्रीय अव्यवस्था में एक नैतिक, समावेशी और सहयोगात्मक वैश्विक व्यवस्था के निर्माण में योगदान दे सकती है।

वसुधैव कुटुम्बकम की वैदिक और दार्शनिक जड़ें–

1. महा उपनिषद में वसुधैव कुटुम्बकम–

'वसुधैव कुटुम्बकम' का सर्वाधिक प्रसिद्ध और प्रत्यक्ष उल्लेख महा उपनिषद में प्राप्त होता है–

'अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'।।[1] (महा उपनिषद, 6.71)

इस श्लोक में संकीर्ण मानसिकता (लघुचेतसाम्) और उदार चेतना (उदारचरितानाम्) के बीच स्पष्ट भेद किया गया है। जहाँ संकीर्ण दृष्टि 'अपना–पराया' का विभाजन करती है, वहीं उदार चेतना सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार के रूप में देखती है। यह विचार वैदिक ऋत (Cosmic Order) और उपनिषदिक अद्वैत भावना से जुड़ा है, जिसमें समस्त सृष्टि एक ही ब्रह्म–तत्त्व से अनुप्राणित मानी गई है।[2]

2. भारतीय दर्शन में सार्वभौमिक मानवता–

भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराएँ– वेदांत, सांख्य, योग और भक्ति– सभी किसी न किसी रूप में सार्वभौमिक मानवता के विचार को पुष्ट करती हैं। ईशावास्य उपनिषद का उद्घोष– **"ईशावास्यमिदं सर्वं"**– समस्त जगत में एक ही तत्त्व की उपस्थिति को स्वीकार करता है।[3] अद्वैत वेदांत में 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' जैसे महावाक्य व्यक्ति और विश्व के द्वैत को समाप्त कर मानव मात्र में समान आत्मतत्त्व की स्थापना करते हैं।[4] इस प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम' भारतीय दर्शन में नैतिक सार्वभौमिकता (Moral Universalism) का दार्शनिक आधार निर्मित करता है।

3. बौद्ध, जैन और गांधीवादी दृष्टिकोण–

बौद्ध दर्शन में करुणा और मैत्री के सिद्धांत समस्त प्राणियों के कल्याण पर केन्द्रित हैं। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का सूत्र बौद्ध सामाजिक नैतिकता को वैश्विक बनाता है।[5] जैन दर्शन का अहिंसा परमो धर्मः और अनेकांतवाद विविध दृष्टियों के सम्मान और सह–अस्तित्व को प्रोत्साहित करता है।[6]

आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने इन परम्पराओं को राजनीतिक और वैश्विक नैतिकता में रूपांतरित किया। गांधी का सर्वोदय और अहिंसक अन्तर्राष्ट्रीयता का विचार **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का व्यावहारिक रूप है, जिसमें शक्ति के स्थान पर नैतिकता और सहयोग को प्राथमिकता दी जाती है।[7]

4. पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सिद्धांतों से तुलना–

पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो सिद्धान्तों में यथार्थवाद (Realism) राज्य–केन्द्रित और शक्ति–आधारित दृष्टिकोण अपनाता है, जहाँ नैतिकता गौण हो जाती है।[8] उदारवाद (Liberalism) सहयोग, संस्थाओं और अंतरराष्ट्रीय कानून पर बल देता है, किंतु यह भी प्रायः हित–आधारित ढाँचे तक सीमित रहता है।[9] इसके विपरीत, **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का दृष्टिकोण राज्य से आगे बढ़कर मानवता को विश्लेषण की इकाई बनाता है। यह केवल संस्थागत सहयोग नहीं, बल्कि नैतिक दायित्व और साझा मानव–भाग्य की चेतना पर आधारित है। इस प्रकार यह सिद्धांत समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में एक वैकल्पिक, गैर–पश्चिमी और नैतिक वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

वैश्विक शांति की अवधारणा–

शांति की परिभाषा : नकारात्मक शांति (Negative Peace) एवं सकारात्मक शांति (Positive Peace)–

वैश्विक शांति की अवधारणा को केवल युद्ध की अनुपस्थिति तक सीमित नहीं किया जा सकता। **नॉर्वेजियन शांति शोधकर्ता योहान गाल्टुंग ने शांति को दो श्रेणियों में विभाजित किया–** नकारात्मक शांति (Negative Peace) और सकारात्मक शांति (Positive Peace)। नकारात्मक शांति का आशय प्रत्यक्ष हिंसा या युद्ध के अभाव से है, जब कि सकारात्मक शांति का तात्पर्य सामाजिक न्याय, समानता, मानवाधिकारों की रक्षा और संरचनात्मक हिंसा के उन्मूलन से है।[10] इस दृष्टि से वास्तविक और स्थायी शांति तभी संभव है जब राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचनाएँ न्यायपूर्ण हों।

1. संयुक्त राष्ट्र और वैश्विक शांति व्यवस्था– द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात स्थापित संयुक्त राष्ट्र संगठन (United Nations) का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखना है।[11] संयुक्त राष्ट्र शांति–स्थापन (Peacekeeping), शांति–निर्माण (Peace building) और संघर्ष–निवारण (Conflict Prevention) के माध्यम से वैश्विक स्थिरता को प्रोत्साहित करता है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948) और सतत् विकास लक्ष्य (SDGs) सकारात्मक शांति की अवधारणा को संस्थागत रूप प्रदान करते हैं।[12] तथापि, सुरक्षा परिषद की संरचनात्मक सीमाएँ और महाशक्तियों की राजनीति संयुक्त राष्ट्र की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न भी लगाती हैं।

2. आधुनिक संघर्ष : युद्ध, आतंकवाद, जलवायु और असमानता – आधुनिक वैश्विक संघर्ष

बहुआयामी और परस्पर जुड़े हुए हैं। परम्परागत राज्य–केन्द्रित युद्धों के साथ–साथ आतंकवाद, गृहयुद्ध, साइबर युद्ध और सूचना युद्ध ने सुरक्षा की प्रकृति को बदल दिया है।[13] इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन को 'Threat Multiplier' के रूप में देखा जाता है, जो संसाधन–संघर्ष, विस्थापन और अस्थिरता को बढ़ाता है।[14] आर्थिक और सामाजिक असमानताएँ भी संरचनात्मक हिंसा को जन्म देती हैं, जिससे सकारात्मक शांति की स्थापना कठिन हो जाती है।[15]

3. बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की चुनौतियाँ– इक्कीसवीं सदी में अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली एक बहुध्रुवीय (Multipolar) स्वरूप ग्रहण कर रही है, जहाँ शक्ति का केंद्रीकरण एक या दो महाशक्तियों तक सीमित नहीं रहा। यद्यपि बहुध्रुवीयता संतुलन और अवसर प्रदान करती है, किंतु यह प्रतिस्पर्धा, गठबंधन–राजनीति और मानदंडगत असहमति को भी जन्म देती है।[16] वैश्विक शासन संस्थाओं में सुधार की माँग, वैश्विक दक्षिण की बढ़ती भूमिका और वैचारिक विभाज– ये सभी समकालीन शांति व्यवस्था के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं। ऐसे परिदृश्य में नैतिकता–आधारित और समावेशी दृष्टिकोण, जैसे **'वसुधैव कुटुम्बकम'**, वैश्विक शांति को सुदृढ़ करने हेतु प्रासंगिक प्रतीत होता है।

भारत की विदेश नीति में वसुधैव कुटुम्बकम –

डॉ. एस. जयशंकर, भारत के विदेश मंत्री –''हमारी विदेश नीति के केन्द्र में शांति स्थापना के प्रति एक प्रतिबद्धता निहित है – जो संवाद, कूटनीति और सहयोग पर आधारित है। **''वसुधैव कुटुम्बकम''** के दर्शन से प्रेरणा लेकर, इस विश्वास के साथ कि पूरा विश्व एक परिवार है, भारत संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना के लिए सार्थक योगदान देना जारी रखेगा।''[17]

1. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से वैश्विक नैतिकता–

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की विदेश नीति का मूल स्वर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (Non-Aligned Movement-NAM) में परिलक्षित होता है, जिसका उद्देश्य शीतयुद्धकालीन शक्ति–राजनीति से परे रहकर शांति, सम्प्रभु समानता और नैतिक स्वतंत्रता की रक्षा करना था। जवाहरलाल नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नैतिकता, संवाद और सह–अस्तित्व पर बल दिया, जिसे 'पंचशील' सिद्धान्तों के माध्यम से संस्थागत रूप मिला।[18] NAM ने भारत को एक ऐसी आवाज़ प्रदान की जिसने औपनिवेशिक विरासत से जूझ रहे देशों के हितों को वैश्विक मंच पर उठाया। यह दृष्टिकोण **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की भावना'–साझा मानवता और सहयोग–का आरम्भिक कूटनीतिक रू"था।

1. रणीनीतिक स्वायत्तता और नैतिक नेतृत्व–

शीतयुद्धोत्तर काल में भारत की विदेश नीति रणीनीतिक स्वायत्तता के सिद्धांत पर विकसित हुई, जिसका अर्थ है– राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हुए किसी एक शक्ति–गुट पर निर्भर न होना। यह अवधारणा यथार्थवाद और नैतिकता के संतुलन का प्रयास है।[19] भारत बहुपक्षीय मंचों पर सक्रिय रहते हुए अन्तर्राष्ट्रीय कानून, नियम–आधारित व्यवस्था और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का समर्थन करता है। इस प्रकार, **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का नैतिक आयाम रणनीतिक स्वायत्तता के साथ सहअस्तित्व में दिखाई देता है, जहाँ शक्ति का प्रयोग नहीं बल्कि सहमति–निर्माण और विश्वास–निर्माण को प्राथमिकता दी जाती है।

2. मोदी युग में Global South की आवाज़–

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत ने स्वयं को Global South की सशक्त आवाज़ के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। **'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास'** का मंत्र विदेश नीति में समावेशी विकास और साझेदारी के रूप में परिलक्षित होता है। G20 शिखर सम्मेलन (2023) में अफ्रीकी संघ की स्थायी सदस्यता का समर्थन तथा विकास, ऋण–न्याय और जलवायु वित्त जैसे मुद्दों को केन्द्र में रखना इसी दृष्टि का उदाहरण है।[20] यह नेतृत्व **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की भावना के अनुरूप वैश्विक शासन को अधिक प्रतिनिधिक और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में प्रयास करता है।

3. भारत की मानवीय सहायता और शांति प्रयास –

भारत की विदेश नीति में मानवीय सहायता और आपदा राहत (HADR) एक महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में उभरी है। भूकम्प, चक्रवात, महामारी और संघर्षोत्तर स्थितियों में भारत ने त्वरित सहायता प्रदान की है– चाहे वह **'ऑपरेशन मैत्री', 'ऑपरेशन समुद्र सेतु'** या **'वैक्सीन मैत्री'** पहल हो।[21] संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में भारत का दीर्घकालिक योगदान भी वैश्विक शांति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।[22] ये प्रयास **'वसुधैव**

कुटुम्बकम' को व्यवहार में रूपांतरित करते हुए भारत के नैतिक और उत्तरदायी वैश्विक नेतृत्व को रेखांकित करते हैं।

G20 और भारत का वैश्विक नैतिक नेतृत्व–

1- G20 2023 का थीम : Vasudhaiva Kutumbakam- भारत की G20 अध्यक्षता (2023) का आधिकारिक विषय– **"Vasudhaiva Kutumbakam : One Earth, One Family, One Future"**– भारत की सभ्यतागत चेतना और समकालीन वैश्विक शासन के बीच सेतु का कार्य करता है। यह थीम वैश्विक संकटों (जलवायु परिवर्तन, महामारी, ऋण संकट, डिजिटल विभाजन) के सामूहिक समाधान पर बल देती है और राष्ट्र–केन्द्रित संकीर्णता से आगे बढ़कर मानवता–केन्द्रित दृष्टि अपनाने का आह्वान करती है।[23] G20 के एजेंडा में सतत विकास, समावेशी वृद्धि और बहुपक्षीय सुधारों का समावेश सकारात्मक शांति के संस्थानीकरण की दिशा में भारत के नैतिक नेतृत्व को रेखांकित करता है।

2. वैश्विक उत्तर बनाम वैश्विक दक्षिण – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में वैश्विक उत्तर (Global North) और वैश्विक दक्षिण (Global South) के बीच विकास, संसाधन–प्रवेश और निर्णय–निर्माण में असमानताएँ दीर्घकाल से विद्यमान रही हैं। ऋण–भार, जलवायु वित्त और तकनीकी हस्तांतरण जैसे मुद्दों पर यह विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है।[24] भारत की G20 अध्यक्षता ने इन संरचनात्मक असमानताओं को प्रमुखता से उठाते हुए वैश्विक शासन को अधिक समावेशी बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का दृष्टिकोण इस द्वैत को शून्य–राशि प्रतिस्पर्धा के रूप में नहीं, बल्कि साझा समाधान की चुनौती के रूप में देखता है।

3. विकासशील देशों की वकालत– भारत ने G20 मंच का उपयोग विकासशील देशों की चिंताओं – ऋण–न्याय, विकास–वित्त, खाद्य और ऊर्जा सुरक्षा को वैश्विक एजेंडा के केन्द्र में लाने हेतु किया। अफ्रीकी संघ को G20 का स्थायी सदस्य बनाए जाने का समर्थन भारत की इस वकालत का ठोस उदाहरण है, जिससे वैश्विक दक्षिण की प्रतिनिधिकता सुदृढ़ हुई।[25] यह पहल बहुपक्षीयता को लोकतांत्रिक बनाने और नीति–निर्माण में नैतिक समावेशन को बढ़ावा देती है।

4. डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर और साझा विकास– भारत द्वारा विकसित डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर (DPI) जैसे आधार, UPI और डिजिलॉकर, G20 के माध्यम से वैश्विक सार्वजनिक वस्तु (Global Public Good) के रूप में प्रस्तुत किया गया। DPI ने वित्तीय समावेशन, सेवा–प्रदाय और पारदर्शिता को बढ़ावा दिया है तथा विकासशील देशों के लिए कम–लागत, स्केलेबल समाधान प्रदान किए हैं।[26] साझा विकास के इस मॉडल में तकनीक को लाभ–केन्द्रित नहीं, बल्कि मानव–केन्द्रित साधन के रूप में देखा जाता हैकृजो **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की नैतिकता से सामंजस्य रखता है।

भारत की शांति–निर्माण में भूमिका–

1. शांति स्थापना की भूमिका – वर्तमान समय में शांति स्थापना अक्सर शांति स्थापना और शांति निर्माण के साथ जुड़ी होती है और इस वजह से संघर्षों को संबोधित करने में लचीलेपन वाले रवैए की आवश्यकता होती है। जब कि मुख्य रूप से शांति बनाए रखने के लिए तैनात किए गए शांति रक्षक संघर्ष समाधान और शुरुआती रिकवरी प्रयासों में भी सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। कुछ मामलों में, उन्हें नागरिकों की रक्षा करने, मैंडेट लागू करने और सुरक्षा बनाए रखने के लिए बल का उपयोग करने का अधिकार है, जहां मेजबान देश ऐसा करने में असमर्थ है।

2. संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना का इतिहास– संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना की शुरुआत 1948 में पश्चिम एशिया में युद्ध विराम की निगरानी के लिए संयुक्त राष्ट्र युद्धविराम पर्यवेक्षण संगठन (यू.एन.टी.एस.ओ.) की स्थापना के साथ हुई थी। शुरू में, शांति स्थापना मिशन निहत्थे थे तथा निरीक्षण और मध्यस्थता पर केंद्रित थे। शीत युद्ध के दौरान, भू–राजनीतिक तनावों के कारण मिशन सीमित रहे, लेकिन 1990 के दशक में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद शांति स्थापना अभियानों की संख्या और दायरे दोनों में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ। संयुक्त राष्ट्र ने बहुआयामी मिशनों की तैनाती शुरू की, जिसमें सैन्य, राजनीतिक और मानवीय प्रयासों को शामिल किया गया, नागरिक संघर्षों को सम्बोधित किया गया, शासन का समर्थन किया गया और मानवाधिकारों की रक्षा की गई।

समय के साथ, शांति स्थापना में राष्ट्र निर्माण, चुनावी सहायता और हिंसक उग्रवाद का मुकाबला करने जैसे जटिल कार्य शामिल हो गए। रवांडा और बोस्निया में

मिशन विफलताओं जैसी चुनौतियों ने सुधारों को प्रेरित किया, जिसके परिणामस्वरूप ब्राहिमी रिपोर्ट (2000) सामने आई, जिसमें मजबूत मैंडेट और बेहतर संसाधनों पर बल दिया गया। सुरक्षा की जिम्मेदारी (आर2पी) सम्बन्धी सिद्धान्त ने हस्तक्षेपों को और आकार दिया, जब कि आधुनिक मिशन नागरिक सुरक्षा, लैंगिक समावेशन और क्षेत्रीय भागीदारी पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं। वर्तमान समय में, संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना उभरते वैश्विक सुरक्षा खतरों के साथ पारम्परिक भूमिकाओं को संतुलित करते हुए अनुकूलन करना जारी रखे हुए है।[27]

3. संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना में भारत का योगदान – भारत का संयुक्त राष्ट्र शांति स्थापना में सेवा करने का एक लम्बा और प्रतिष्ठित इतिहास है, 1950 के दशक से भारत ने एशिया, अफ्रीका और मध्य–पूर्व में विभिन्न शांति मिशनों में सैनिक, पुलिस और पर्यवेक्षक तैनात किए हैं। भारत का दृष्टिकोण केवल युद्धविराम तक सीमित न रहकर स्थानीय समुदायों के साथ विश्वास–निर्माण, नागरिक सुरक्षा और संस्थागत स्थिरता पर केन्द्रित रहा है।[28] यह सहभागिता **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की भावना के अनुरूप मानव जीवन की रक्षा और अंतरराष्ट्रीय शांति के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व को दर्शाती है। जो 1953 में कोरिया में संयुक्त राष्ट्र अभियान में इसकी भागीदारी से शुरू होता है। अहिंसा के प्रति भारत की प्रतिबद्धता, जो इसके दर्शन में निहित है और जिसका महात्मा गांधी ने समर्थन किया था, वैश्विक शांति को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्र के दृष्टिकोण के अनुरूप है। यह प्रतिबद्धता भारत के **''वसुधैव कुटुम्बकम'' (पूरा विश्व मेरा परिवार है)** के प्राचीन सिद्धांत से आती है, जो मानवता के परस्पर सम्बन्ध और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के महत्व पर जोर देती है।

1950 के दशक से, भारत ने दुनिया भर में 50 से अधिक मिशनों में 290,000 से अधिक शांति सैनिकों को भेजा है, जिससे यह संयुक्त राष्ट्र शांति प्रयासों में सबसे बड़ा योगदानकर्ता बन गया है। वर्तमान में, 5,000 से अधिक भारतीय सैनिक ग्यारह सक्रिय मिशनों में से नौ में सेवारत हैं, ये अक्सर खतरनाक और शत्रुतापूर्ण क्षेत्रों में होते हैं, जो वैश्विक शांति और सुरक्षा को बनाए रखने के लिए समर्पित होते हैं। वर्ष 2023 में, भारत को संयुक्त राष्ट्र का सर्वोच्च शांति सम्मान, डाग हैमरशॉल्ड पदक मिला, जो भारतीय शांति सैनिकों शिशुपाल सिंह और सांवला राम विश्नोई और नागरिक संयुक्त राष्ट्र कार्यकर्ता शबर ताहिर अली को कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य में उनके बलिदान के लिए मरणोपरान्त प्रदान किया गया। इस महान कार्य में, लगभग 180 भारतीय शांति सैनिकों ने सर्वोच्च बलिदान दिया है – ऐसे नायक जिनकी वीरता और प्रतिबद्धता को हमेशा याद रखा जाएगा।[29]

4. मानवतावादी सहायताः वैक्सीन मैत्री और आपदा राहत– भारत की शांति–निर्माण भूमिका का एक महत्वपूर्ण आयाम मानवतावादी सहायता और आपदा राहत (Humanitarian Assistance and Disaster Relief—HADR है। कोविड–19 महामारी के दौरान 'वैक्सीन मैत्री' पहल के अंतर्गत भारत ने अनेक विकासशील देशों को टीके और चिकित्सा सहायता प्रदान की।[30] इसके अतिरिक्त, भूकंप, चक्रवात और बाढ़ जैसी आपदाओं में भारत द्वारा त्वरित राहत अभियान–जैसे **'ऑपरेशन मैत्री'** और **'ऑपरेशन समुद्र सेतु'** साझा मानवता और सहयोग के सिद्धांत को व्यवहार में रूपांतरित करते हैं।[31]

5. संघर्ष समाधान में भारत की भूमिका– भारत ने ऐतिहासिक रूप से संघर्ष समाधान और मध्यस्थता में संयमित तथा संवाद–आधारित दृष्टिकोण अपनाया है। कोरियाई युद्ध (1950–53) के पश्चात तटस्थ राष्ट्र पुनर्वास आयोग में भारत की भूमिका तथा क्षेत्रीय स्तर पर संवाद को बढ़ावा देने के प्रयास इस नीति के उदाहरण हैं।[32] समकालीन संदर्भ में भारत संघर्षग्रस्त क्षेत्रों में शांतिपूर्ण समाधान, संप्रभुता के सम्मान और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के पालन की वकालत करता है। यह दृष्टि शक्ति–आधारित हस्तक्षेप के स्थान पर नैतिक कूटनीति और विश्वास–निर्माण को प्राथमिकता देती है।

6. आतंकवाद के विरुद्ध वैश्विक सहयोग– आतंकवाद समकालीन वैश्विक शांति के लिए सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है। भारत ने आतंकवाद को मानवता के विरुद्ध अपराध मानते हुए इसके विरुद्ध शून्य–सहिष्णुता (Zero Tolerance) की नीति अपनाई है। संयुक्त राष्ट्र और अन्य बहुपक्षीय मंचों पर भारत ने व्यापक आतंकवाद–विरोधी ढाँचे, वित्तपोषण पर रोक और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया है।[33] **'वसुधैव कुटुम्बकम'** के संदर्भ में यह प्रयास वैश्विक सुरक्षा को साझा दायित्व मानने की भारतीय सोच को प्रतिबिम्बित करता है।

वसुधैव कुटुम्बकम बनाम पश्चिमी शक्ति राजनीति–

1- Realism बनाम भारतीय नैतिक आदर्श– पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रमुख सिद्धांत यथार्थवाद (Realism) राज्य को केन्द्रीय इकाई मानता है और शक्ति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मूल निर्धारक तत्व समझता है। **हंस मॉर्गेन्थाऊ** के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सार "शक्ति के लिए संघर्ष" है और नैतिकता प्रायः राष्ट्रीय हितों के अधीन होती है।[34] जॉन मियरशाइमर का आक्रामक यथार्थवाद (Offensive Realism) भी यह तर्क देता है कि महान शक्तियाँ अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु अधिकतम शक्ति अर्जित करने का प्रयास करती हैं।[35]

इसके विपरीत, **'वसुधैव कुटुम्बकम'** शक्ति के बजाय नैतिकता, करुणा और साझा मानवता को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार का आधार मानता है। यह दृष्टिकोण राज्य को एकमात्र नैतिक इकाई नहीं मानता, बल्कि मानवता को विश्लेषण की केन्द्रीय इकाई बनाता हैकृजो यथार्थवाद के राज्य–केन्द्रित दृष्टिकोण से मूलभूत रूप से भिन्न है।[36]

2. शक्ति संतुलन बनाम मानव–केन्द्रित दृष्टिकोण– यथार्थवादी परंपरा में शक्ति संतुलन (Balance of Power) को युद्ध–निवारण का मुख्य साधन माना जाता है। यह मानता है कि जब शक्तियों का संतुलन बना रहता है, तो युद्ध की संभावना कम होती है।[37] हालाँकि, यह तंत्र अक्सर हथियारों की दौड़, गठबंधन–राजनीति और अविश्वास को बढ़ावा देता है।

'वसुधैव कुटुम्बकम' इसके विपरीत मानव–केंद्रित सुरक्षा (Human-Centric Security) पर बल देता है, जहाँ प्राथमिकता हथियार नहीं बल्कि मानव कल्याण, न्याय और विकास है। यह दृष्टिकोण गाल्टुंग की सकारात्मक शांति की अवधारणा से मेल खाता है, जो संरचनात्मक हिंसा के उन्मूलन पर जोर देती है।[38]

3. सैन्य शक्ति बनाम नैतिक नेतृत्व– पश्चिमी शक्ति राजनीति में सैन्य क्षमता और प्रतिरोध (Deterrence) को वैश्विक प्रभाव का मुख्य स्रोत माना जाता है। नाटो और अमेरिकी सुरक्षा रणनीति इसका स्पष्ट उदाहरण हैं, जहाँ सैन्य गठबंधन वैश्विक व्यवस्था के स्तम्भ माने जाते हैं।[39]

भारत का दृष्टिकोण तुलनात्मक रूप से नैतिक नेतृत्व (Moral Leadership) पर आधारित रहा है–जिसमें कूटनीति, बहुपक्षीयता, विकास साझेदारी और मानवीय सहायता को प्राथमिकता दी जाती है।[40] भारत की **'वैक्सीन मैत्री'**, आपदा राहत और संयुक्त राष्ट्र शांति मिशनों में भूमिका यह दर्शाती है कि वैश्विक प्रभाव केवल सैन्य शक्ति से नहीं, बल्कि विश्वास और विश्वसनीयता से भी अर्जित किया जा सकता है।[41]

4. भविष्य की विश्व व्यवस्था – भविष्य की विश्व व्यवस्था संभवतः बहुध्रुवीय, परस्पर–निर्भर और तकनीकी रूप से एकीकृत होगी। यद्यपि शक्ति–प्रतिस्पर्धा बनी रहेगी, किंतु जलवायु परिवर्तन, महामारी, डिजिटल शासन और आर्थिक असमानता जैसी चुनौतियाँ सहयोग को अनिवार्य बना देंगी।[42]

इस संदर्भ में **'वसुधैव कुटुम्बकम'** एक व्यवहार्य नैतिक ढाँचा प्रदान करता हैकृजो प्रतिस्पर्धा को समाप्त नहीं करता, बल्कि उसे साझा उत्तरदायित्व और सह–अस्तित्व के भीतर संतुलित करता है। भविष्य की व्यवस्था में सफलता उन देशों की होगी जो शक्ति और नैतिकता–दोनों का संतुलन साध सकें; यहाँ भारत का सभ्यतागत दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[43]

भारत की रणनीतिक सीमाएँ और चुनौतियाँ–

1. चीन और भू–राजनीतिक दबाव– भारत की **'वसुधैव कुटुम्बकम'** आधारित नैतिक विदेश नीति को सबसे गंभीर चुनौती चीन के उदय और उससे जुड़े भू–राजनीतिक दबावों से मिलती है। चीन–भारत सीमा विवाद, विशेष रूप से 2020 के गलवान संघर्ष के बाद, यह दर्शाता है कि क्षेत्रीय शक्ति–संतुलन भारत की सहयोग–आधारित कूटनीति को सीमित कर सकता है।[44] हिंद–प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती सैन्य उपस्थिति, बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) और पड़ोसी देशों में आर्थिक प्रभाव–भारत की रणनीतिक स्वायत्तता पर संरचनात्मक दबाव डालते हैं।[45] इस परिदृश्य में भारत को नैतिक आदर्श और कठोर सुरक्षा आवश्यकताओं के बीच कठिन संतुलन साधना पड़ता है, जो **'वसुधैव कुटुम्बकम'** के व्यावहारिक क्रियान्वयन की एक प्रमुख सीमा है।

वैश्विक असमानता– वैश्विक आर्थिक और तकनीकी असमानता भारत के नैतिक नेतृत्व को सीमित करने वाली दूसरी बड़ी चुनौती है। वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के बीच संसाधन, प्रौद्योगिकी और वित्त तक पहुँच की विषमता भारत की विकास–केन्द्रित विदेश नीति

के लिए संरचनात्मक बाधा बनती है।[46] जलवायु वित्त, ऋण–भार और डिजिटल विभाजन जैसे मुद्दों पर विकसित देशों की धीमी प्रतिक्रिया भारत की सामूहिक समाधान–आधारित दृष्टि को कमजोर करती है। इस संदर्भ में **'वसुधैव कुटुम्बकम'** एक नैतिक आदर्श तो प्रदान करता है, परंतु वैश्विक राजनीतिक अर्थव्यवस्था की वास्तविकताएँ इसके पूर्ण क्रियान्वयन को कठिन बनाती हैं।[47]

2. वैश्विक संस्थानों में भारत की भूमिका– भारत संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, IMF और G20 जैसे वैश्विक संस्थानों में सक्रिय भूमिका निभाता है, किंतु इन संस्थानों की संरचना अभी भी ऐतिहासिक शक्ति–वितरण को प्रतिबिंबित करती है। विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) में भारत की स्थायी सदस्यता का अभाव उसकी निर्णय–निर्माण क्षमता को सीमित करता है।[48] यद्यपि भारत बहुपक्षीय सुधारों की वकालत करता रहा है, परंतु संस्थागत जड़ता और महाशक्तियों के हित उसके प्रभाव को बाधित करते हैं। इससे **'वसुधैव कुटुम्बकम'** आधारित समावेशी वैश्विक शासन की राह कठिन हो जाती है।

3. आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद– भारत की विदेश नीति में आदर्शवाद (Idealism) और यथार्थवाद (Realism) के बीच निरंतर तनाव दिखाई देता है। एक ओर भारत अहिंसा, बहुपक्षीयता और साझा मानवता पर आधारित नैतिक दृष्टिकोण अपनाता है; दूसरी ओर उसे सीमा सुरक्षा, आतंकवाद और शक्ति–प्रतिस्पर्धा जैसी कठोर वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है।[49] उदाहरणार्थ, रूस–यूक्रेन युद्ध पर भारत का संतुलित रुख नैतिक तटस्थता और रणनीतिक हित–दोनों के बीच समझौते को दर्शाता है।[50] यह द्वंद्वस्पष्ट करता है कि **'वसुधैव कुटुम्बकम'** एक मार्गदर्शक नैतिक ढाँचा हो सकता है, परंतु नीति–निर्माण में इसे व्यावहारिक यथार्थवाद के साथ संतुलित करना अनिवार्य है।

भविष्य की वैश्विक व्यवस्था में भारत–

1. भारत एक "Civilizational Power" के रूप में– भारत को केवल एक राष्ट्र–राज्य (Nation-State) के रूप में नहीं, बल्कि एक सभ्यतागत शक्ति (Civilizational Power) के रूप में देखा जा सकता है, जिसकी ऐतिहासिक पहचान बहुलवाद, सह–अस्तित्व और नैतिकता पर आधारित रही है।[51] सभ्यतागत शक्ति की अवधारणा यह मानती है कि किसी देश का वैश्विक प्रभाव केवल सैन्य या आर्थिक शक्ति से नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक, दार्शनिक और नैतिक परम्पराओं से भी निर्धारित होता है।[52] भारत की प्राचीन दार्शनिक परंपराएँ– विशेषकर वसुधैव कुटुम्बकम, अहिंसा और सहिष्णुता–उसे वैश्विक शासन में एक वैकल्पिक नैतिक मॉडल प्रस्तुत करने की क्षमता देती हैं।[53]

2. मानव–केन्द्रित वैश्वीकरण– पारम्परिक वैश्वीकरण मुख्यतः बाजार, पूंजी और शक्ति–राजनीति द्वारा संचालित रहा है, जिससे असमानता और सामाजिक बहिष्कार बढ़ा है।[54] इसके विपरीत, मानव–केंद्रित वैश्वीकरण (Human-Centric Globalization) मानव कल्याण, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास पर बल देता है। भारत की नीतियाँ–जैसे डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर, वित्तीय समावेशन (Jan Dhan), और स्वास्थ्य कूटनीति–इस मॉडल के व्यावहारिक उदाहरण हैं।[55] वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धान्त वैश्वीकरण को प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग पर आधारित पुनर्संरचना का मार्ग दिखाता है।[56]

3. नैतिक वैश्विक नेतृत्व की संभावना– भविष्य की बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत के पास नैतिक वैश्विक नेतृत्व (Ethical Global Leadership) ग्रहण करने की क्षमता है। यह नेतृत्व प्रभुत्व या हस्तक्षेप पर नहीं, बल्कि संवाद, सहमति–निर्माण और साझा हितों पर आधारित होगा।[57] G20, BRICS और Global South मंचों में भारत की भूमिका यह दर्शाती है कि वह विकासशील देशों की सामूहिक आवाज को सशक्त कर सकता है।[58] हालांकि, इस नेतृत्व के लिए भारत को आंतरिक सामाजिक–आर्थिक असमानताओं, मानवाधिकार चुनौतियों और संस्थागत सुधारों पर भी ध्यान देना होगा।[59]

4. वसुधैव कुटुम्बकम और विश्व शांति का भविष्य– भविष्य की विश्व शांति सैन्य निरोध (Deterrence) के बजाय सहयोगात्मक सुरक्षा, जलवायु कार्रवाई और साझा विकास पर निर्भर करेगी।[60] वसुधैव कुटुम्बकम इस संदर्भ में एक वैकल्पिक वैश्विक नैतिक ढाँचा प्रदान करता है, जो राष्ट्रीय हितों और वैश्विक कल्याण के बीच संतुलन स्थापित करता है।[61] यदि अंतरराष्ट्रीय संस्थान इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं–जैसे

वैश्विक सार्वजनिक वस्तुओं (Global Public Goods) में निवेश, संघर्ष निवारण में बहुपक्षीयता, और तकनीकी सहयोगकृतो एक अधिक स्थिर और न्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था संभव हो सकती है।[62]

निष्कर्ष (Conclusion)–

1. वसुधैव कुटुम्बकम की समकालीन प्रासंगिकता– समकालीन वैश्विक व्यवस्था गहरे संरचनात्मक संकटों–भू–राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता, जलवायु परिवर्तन, महामारी, डिजिटल विभाजन और बढ़ती असमानता से गुजर रही है। ऐसे संदर्भ में वसुधैव कुटुम्बकम केवल एक नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि वैश्विक शासन के लिए एक व्यवहार्य वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। यह दृष्टिकोण प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग, सुरक्षा के स्थान पर साझा मानव सुरक्षा और प्रभुत्व के स्थान पर परस्पर सम्मान को प्राथमिकता देता है। इस प्रकार, वसुधैव कुटुम्बकम 21वीं सदी की बहुध्रुवीय और परस्पर–निर्भर दुनिया के लिए अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है।

2. भारत की विशिष्ट वैश्विक भूमिका– भारत की ऐतिहासिक सभ्यतागत परम्पराएँ, लोकतांत्रिक संरचना और वैश्विक दक्षिण के साथ अनुभव उसे एक विशिष्ट मध्यस्थ शक्ति (bridging power) बनाते हैं। भारत न तो पारंपरिक महाशक्ति–आधारित प्रभुत्व मॉडल का प्रतिनिधित्व करता है और न ही पूर्णतः आदर्शवादी नैतिकतावाद का; बल्कि यह रणनीतिक स्वायत्तता और नैतिक उत्तरदायित्व के संतुलन पर आधारित मार्ग प्रस्तुत करता है। G20, BRICS और संयुक्त राष्ट्र में भारत की सक्रिय भूमिका यह दर्शाती है कि वह वैश्विक नियम–निर्माण में एक समावेशी एजेंडा आगे बढ़ा सकता है।

3. शांति और सहयोग का भारतीय मॉडल– भारत का शांति मॉडल सैन्य निरोध (Deterrence) के साथ–साथ संवाद, विकास और मानवीय सुरक्षा पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र शांति मिशनों में दीर्घकालिक योगदान, वैक्सीन मैत्री, आपदा राहत कूटनीति और डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर की साझेदारी इस मॉडल के व्यावहारिक उदाहरण हैं। यह मॉडल यह मानता है कि स्थायी शांति तभी संभव है जब सुरक्षा, विकास और गरिमा एक साथ सुनिश्चित हों।

4. वैश्विक मानवता की ओर मार्ग– भविष्य की विश्व व्यवस्था के लिए वसुधैव कुटुम्बकम एक मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में कार्य कर सकता है, जो राष्ट्रीय हितों और वैश्विक कल्याण के बीच संतुलन स्थापित करता है। इसके लिए तीन प्रमुख स्तम्भ आवश्यक हैं– (1) बहुपक्षीयता का पुनर्जीवन, (2) वैश्विक सार्वजनिक वस्तुओं में सामूहिक निवेश, और (3) प्रौद्योगिकी एवं ज्ञान की न्यायसंगत साझेदारी। भारत, अपनी सभ्यतागत विरासत और उभरती वैश्विक भूमिका के माध्यम से, इस परिवर्तनकारी यात्रा में केन्द्रीय भूमिका निभा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mahā Upani?ad. (6.71).
2. Radhakrishnan,Sarverpalli (1951), Indian Philosophy (Vol. 1). London : George Allen & Unwin.
3. ईशावास्य उपनिषद, श्लोक – 1।
4. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य।
5. दीघ निकाय।
6. तत्त्वार्थ सूत्र, उमास्वाति।
7. गांधी, मोहनदास करमचंद. (1940). हिन्द स्वराज. अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन।
8. Morgenthau, H. J. (1948). Politics Among Nations. New York : Knopf.
9. Keohane, R. O., & Nye, J. S. (1977). Power and Interdependence. Boston : Little, Brown & Company.
10. Galtung, J. (1969). Violence, Peace, and Peace Research. Journal of Peace Research, 6(3), 167–191.
11. United Nations. (1945). Charter of the United Nations.
12. United Nations Development Programme (UNDP). (1994). Human Development Report. New York : UNDP.
13. Kaldor, M. (2012). New and Old Wars. Cambridge: Polity Press.
14. Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC). (2022). Sixth Assessment Report.
15. United Nations Development Programme (UNDP). (2020). Human Development Report.
16. Mearsheimer, J. J. (2014). The Tragedy of Great Power Politics. New York: W.W. Norton.
17. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx? PRID = 2109679&reg=3 & lang = 2
18. Nehru, J. (1961). India's Foreign Policy : Selected Speeches. New Delhi : Publications Division.
19. Hall, I. (2015). Multialignment and Indian Foreign Policy. The Royal Institute of International Affairs.
20. Ministry of External Affairs (MEA). (2023). G20 New Delhi Leaders' Declaration.
21. Ministry of External Affairs (MEA). (2021). India's Humanitarian Assistance and Disaster Relief. New Delhi.

22. United Nations Peacekeeping. (2022). Troop and Police Contributors Statistics. United Nations.
23. G20. (2023). New Delhi Leaders' Declaration. New Delhi.
24. United Nations Development Programme (UNDP). (2020). Human Development Report. New York: UNDP.
25. Ministry of External Affairs (MEA). (2023). India's G20 Presidency Outcomes. New Delhi.
26. World Bank. (2022). Digital Public Infrastructure for Development. Washington, DC.
27. https://www.pib.gov.in/Press Release Page.aspx? PRID = 2109679 & reg = 3 & lang = 2.
28. United Nations Peacekeeping. (2022). Troop and Police Contributors Statistics. United Nations.
29. https://www.pib.gov.in/Press Release Page.aspx? PRID = 2109679 & reg = 3 & lang = 2.
30. Ministry of External Affairs (MEA). (2021). Vaccine Maitri and India's Humanitarian Outreach. New Delhi.
31. Pant, H. V. (2019). Indian Foreign Policy in a Unipolar World. Oxford: Oxford University Press.
32. Nehru, J. (1961). India's Foreign Policy : Selected Speeches. New Delhi: Publications Division.
33. United Nations Security Council. (2022). Counter-Terrorism Framework and Resolutions. United Nations.
34. Morgenthau, H. J. (1948). Politics Among Nations. New York : Knopf.
35. Mearsheimer, J. J. (2014). The Tragedy of Great Power Politics. New York : W.W. Norton.
36. Radhakrishnan, S. (1951). Indian Philosophy (Vol. 1). London : George Allen & Unwin.
37. Waltz, K. N. (1979). Theory of International Politics. New York : McGraw-Hill.
38. Galtung, J. (1969). Violence, Peace, and Peace Research. Journal of Peace Research, 6(3), 167–191.
39. NATO. (2022). NATO Strategic Concept.
40. Pant, H. V. (2019). Indian Foreign Policy in a Unipolar World. Oxford: Oxford University Press.
41. Ministry of External Affairs (MEA). (2021). Vaccine Maitri and India's Humanitarian Outreach. New Delhi.
42. United Nations Development Programme (UNDP). (2020). Human Development Report. New York: UNDP.
43. Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford : Oxford University Press.
44. Miller, M. (2021). China–India Border Crisis: Causes and Consequences. International Security Review.
45. Pant, H. V. (2019). Indian Foreign Policy in a Unipolar World. Oxford: Oxford University Press.
46. United Nations Development Programme (UNDP). (2020). Human Development Report. New York: UNDP.
47. Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford : Oxford University Press.
48. Tharoor, S. (2013). India's Quest for a Permanent Seat on the UN Security Council. Foreign Affairs.
49. Hall, I. (2015). Multialignment and Indian Foreign Policy. Chatham House.
50. Jaishankar, S. (2022). The India Way : Strategies for an Uncertain World. Harper Collins.
51. Sen, A. (2005). The Argumentative Indian. Penguin.
52. Malik, M. (2011). India as a Rising Power. Routledge
53. Tharoor, S. (2012). India: From Midnight to the Millennium. Penguin.
54. Stiglitz, J. (2002). Globalization and Its Discontents. W. W. Norton.
55. Nayyar, D. (2013). Catching Up : Developing Countries in the World Economy. Oxford University Press.
56. UNDP (2022). Human Development Report. United Nations Development Programme.
57. Narlikar, A. (2010). New Powers: How to Become One and How to Manage Them. Columbia University Press.
58. Pant, H. V. (2021). India's Foreign Policy: The Modi Era. Palgrave Macmillan.
59. Hurrell, A. (2007). On Global Order: Power, Values, and the Constitution of International Society. Oxford University Press.
60. Boutros-Ghali, B. (1992). An Agenda for Peace. United Nations.
61. Nye, J. (2004). Soft Power: The Means to Success in World Politics. Public Affairs.
62. UN (2015). Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development. United Nations.

ISSN : 2394-4366

Received: 24 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

डिजिटल मीडिया और सामाजिक परिवर्तन : ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रभाव – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

– रिषभ कुमार
रिसर्च स्कॉलर –
समाजशास्त्र विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फतेहगढ़, फर्रुखाबाद– 209621
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
rishabhdwivedi2906@gmail.com

शोध पर्यवेक्षक–
– डॉ. वीरेन्द्र यादव
एसोसिएट प्रोफेसर –
समाजशास्त्र विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फतेहगढ़, फर्रुखाबाद– 209621
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
virendrayadav@gmail.com

सारांश

वर्तमान समय को डिजिटल क्रांति का युग कहा जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, डिजिटल समाचार माध्यम, ऑनलाइन शिक्षा तथा ई–गवर्नेंस जैसी व्यवस्थाओं ने सामाजिक संरचना, सामाजिक संबंधों, आर्थिक गतिविधियों, सांस्कृतिक व्यवहार तथा राजनीतिक सहभागिता को नई दिशा प्रदान की है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश में डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा है।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया का प्रभाव समान नहीं है। शहरी क्षेत्रों में इंटरनेट की उपलब्धता, उच्च डिजिटल साक्षरता एवं आधुनिक तकनीकों के कारण डिजिटल मीडिया का उपयोग अधिक व्यापक एवं प्रभावी है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों की सीमित उपलब्धता, तकनीकी ज्ञान का अभाव तथा आर्थिक असमानताओं के कारण इसका प्रभाव अपेक्षाकृत भिन्न है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में ग्रामीण भारत में डिजिटल माध्यमों की पहुँच तेजी से बढ़ी है, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिंग, रोजगार तथा प्रशासनिक सेवाओं में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं।

यह शोध–पत्र द्वितीयक तथ्यों पर आधारित एक विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक अध्ययन है। अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया के सामाजिक प्रभावों का तुलनात्मक विश्लेषण करना है। अध्ययन में डिजिटल मीडिया के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों का समावेश किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन है, किन्तु इसके प्रभाव को अधिक समावेशी एवं संतुलित बनाने के लिए डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा तथा सूचना की विश्वसनीयता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द – डिजिटल मीडिया, सामाजिक परिवर्तन, ग्रामीण समाज, शहरी समाज, सोशल मीडिया, डिजिटल विभाजन, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल साक्षरता

1. प्रस्तावना–

मानव सभ्यता के विकास में संचार माध्यमों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रारम्भिक काल में संदेशों का आदान–प्रदान मौखिक माध्यमों से होता था। इसके पश्चात् मुद्रण कला, रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार

पत्रों का विकास हुआ। इक्कीसवीं शताब्दी में इंटरनेट एवं सूचना प्रौद्योगिकी ने संचार प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। इसी परिवर्तन का परिणाम है डिजिटल मीडिया, जिसने संचार, सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, व्यापार एवं शासन की परंपरागत व्यवस्थाओं को पूरी तरह बदल दिया।

डिजिटल मीडिया केवल सूचना प्रसारण का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली उपकरण भी बन चुका है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन से आशय समाज की संरचना, मूल्यों, मान्यताओं, संस्थाओं तथा व्यवहारों में समय के साथ होने वाले परिवर्तन से है। आधुनिक समाज में डिजिटल मीडिया इन सभी आयामों को प्रभावित कर रहा है।

भारत में डिजिटल क्रांति की शुरुआत इंटरनेट सेवाओं के विस्तार के साथ हुई, किन्तु ''डिजिटल इंडिया'' अभियान ने इस प्रक्रिया को नई गति प्रदान की। सरकार द्वारा डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन शिक्षा, ई–गवर्नेंस, डिजिलॉकर, आधार आधारित सेवाएँ, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), ऑनलाइन बैंकिंग तथा डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया गया। परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों में डिजिटल माध्यमों का उपयोग तेजी से बढ़ा।

ग्रामीण भारत, जहाँ कभी संचार के साधन सीमित थे, आज स्मार्टफोन एवं इंटरनेट के माध्यम से वैश्विक सूचना तंत्र से जुड़ चुका है। किसान मौसम, मंडी भाव, सरकारी योजनाओं तथा आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी ऑनलाइन प्राप्त कर रहे हैं। विद्यार्थी ऑनलाइन शिक्षा प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहे हैं। महिलाएँ डिजिटल बैंकिंग एवं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं।

दूसरी ओर शहरी समाज में डिजिटल मीडिया ने जीवन शैली को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया है। ऑनलाइन खरीदारी, ई–कॉमर्स, वर्क फ्रॉम होम, ऑनलाइन बैंकिंग, डिजिटल मनोरंजन तथा सोशल नेटवर्किंग आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म ने व्यवसायों के स्वरूप को बदल दिया है तथा नई आर्थिक संभावनाएँ उत्पन्न की हैं।

यद्यपि डिजिटल मीडिया के अनेक सकारात्मक प्रभाव हैं, फिर भी इसके कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं। सोशल मीडिया की लत, साइबर अपराध, फेक न्यूज, ऑनलाइन धोखाधड़ी, व्यक्तिगत गोपनीयता का उल्लंघन तथा मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ तेजी से बढ़ रही हैं। डिजिटल विभाजन भी एक गंभीर चुनौती है, जिसके कारण समाज के सभी वर्ग समान रूप से डिजिटल सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि डिजिटल मीडिया के प्रभावों का अध्ययन ग्रामीण एवं शहरी दोनों संदर्भों में किया जाए। दोनों क्षेत्रों की सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति, शिक्षा स्तर तथा तकनीकी संसाधनों में पर्याप्त अंतर होने के कारण डिजिटल मीडिया के प्रभाव भी भिन्न दिखाई देते हैं। यही इस अध्ययन की आवश्यकता एवं प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।

अध्ययन की आवश्यकता –

वर्तमान समय में डिजिटल मीडिया ने सामाजिक जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। कोविड–19 महामारी के दौरान डिजिटल माध्यमों का महत्व और अधिक बढ़ गया, जब शिक्षा, स्वास्थ्य, कार्यालयी कार्य, व्यापार तथा सामाजिक संपर्क का प्रमुख माध्यम इंटरनेट बन गया। इस परिवर्तन ने यह स्पष्ट किया कि डिजिटल मीडिया केवल तकनीकी विकास का प्रतीक नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख साधन भी है।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया की उपलब्धता एवं उपयोग के स्तर में अंतर होने के कारण इसके प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है। इस अध्ययन से नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों तथा समाजशास्त्रियों को डिजिटल समावेशन एवं सामाजिक विकास की दिशा में उपयोगी सुझाव प्राप्त हो सकते हैं।

साहित्य समीक्षा –

M. N. Srinivas (1966) ने भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारकों में आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण तथा शिक्षा को महत्वपूर्ण माना। आधुनिक समय में डिजिटल मीडिया इन सभी प्रक्रियाओं को गति प्रदान कर रहा है।

Manuel Castells (1996) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Rise of the Network Society में बताया कि सूचना प्रौद्योगिकी ने वैश्विक समाज को नेटवर्क समाज में परिवर्तित कर दिया है, जहाँ सूचना शक्ति का प्रमुख स्रोत बन गई है।

Anthony Giddens (2009) के अनुसार

आधुनिक समाज में संचार तकनीक सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक संस्थाओं के पुनर्गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

Yogendra Singh (1973) ने भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए कहा कि तकनीकी विकास सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार है।

Rogers (2003) ने Diffusion of Innovations Theory के माध्यम से बताया कि नई तकनीकों का प्रसार समाज में परिवर्तन की गति को निर्धारित करता है। डिजिटल मीडिया इसी प्रक्रिया का आधुनिक उदाहरण है।

भारत सरकार की विभिन्न रिपोर्टों में भी यह उल्लेख किया गया है कि डिजिटल इंडिया अभियान ने ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं के विस्तार तथा सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया है।

हालाँकि उपलब्ध साहित्य में डिजिटल मीडिया के विभिन्न आयामों पर अध्ययन किए गए हैं, फिर भी ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के तुलनात्मक समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर अपेक्षाकृत कम शोध उपलब्ध हैं। यही इस अध्ययन की मौलिकता को दर्शाता है।

2. शोध अंतराल –

डिजिटल मीडिया पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक अध्ययन किए गए हैं। अधिकांश शोधों में सोशल मीडिया, डिजिटल संचार, ऑनलाइन शिक्षा, ई–गवर्नेंस, डिजिटल अर्थव्यवस्था तथा सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभावों का अध्ययन किया गया है। किन्तु भारतीय संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों पर डिजिटल मीडिया के तुलनात्मक समाजशास्त्रीय प्रभावों का समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है।

विशेष रूप से निम्न बिन्दुओं पर शोध की आवश्यकता अनुभव की गई–

(1) ग्रामीण एवं शहरी समाज में डिजिटल मीडिया के सामाजिक प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन सीमित है।

(2) डिजिटल मीडिया के कारण सामाजिक सम्बन्धों, पारिवारिक संरचना एवं सांस्कृतिक मूल्यों में आए परिवर्तनों का समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम है।

(3) डिजिटल विभाजन का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण पर्याप्त रूप से नहीं किया गया है।

(4) डिजिटल मीडिया के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभावों का संतुलित अध्ययन आवश्यक है।

इन्हीं शोध अन्तरालों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन किया गया है।

3. अध्ययन के उद्देश्य –

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- डिजिटल मीडिया की अवधारणा एवं स्वरूप का अध्ययन करना।
- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में डिजिटल मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया के प्रभावों का अध्ययन करना।
- शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया के प्रभावों का विश्लेषण करना।
- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- डिजिटल मीडिया से उत्पन्न सामाजिक चुनौतियों का विश्लेषण करना।
- सामाजिक विकास हेतु उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध प्रश्न –

अध्ययन निम्नलिखित प्रश्नों पर आधारित है–

(क) क्या डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारक बन चुका है?

(ख) क्या ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया का प्रभाव समान है?

(ग) क्या डिजिटल मीडिया सामाजिक जागरुकता को बढ़ाता है?

(घ) क्या डिजिटल मीडिया सामाजिक असमानताओं को कम करता है अथवा बढ़ाता है?

(ङ) डिजिटल मीडिया से समाज के समक्ष कौन–कौन सी नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं?

5. शोध पद्धति –

(क) शोध की प्रकृति – यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है।

(ख) तथ्य संग्रह – यह शोध पूर्णतः द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है।

तथ्यों का संग्रह निम्न स्रोतों से किया गया–

समाजशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें।

शोध पत्र एवं जर्नल।
UGC एवं ICSSR रिपोर्ट।
TRAI रिपोर्ट
भारत सरकार की Digital India रिपोर्ट
MeitY की रिपोर्ट
NSSO एवं NSO रिपोर्ट
जनगणना रिपोर्ट
प्रतिष्ठित वेबसाइट एवं ई–संसाधन

(ग) अध्ययन विधि–

अध्ययन में तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विधि का उपयोग किया गया है।

(घ) विश्लेषण तकनीक–

गुणात्मक विश्लेषण।
तुलनात्मक अध्ययन।
विषयवस्तु विश्लेषण ।

6. डिजिटल मीडिया की अवधारणा –

डिजिटल मीडिया से आशय ऐसे सभी संचार माध्यमों से है जिनका संचालन इंटरनेट एवं डिजिटल तकनीक द्वारा किया जाता है।

डिजिटल मीडिया के प्रमुख घटक–

सोशल मीडिया।
ऑनलाइन समाचार पोर्टल।
वेबसाइट।
ब्लॉग।
पॉडकास्ट।
यूट्यूब।
OTT प्लेटफॉर्म।
मोबाइल एप्लीकेशन।
ई–मेल।
डिजिटल पुस्तकालय।

डिजिटल मीडिया का प्रमुख उद्देश्य सूचना का तीव्र, सुलभ एवं व्यापक प्रसार करना है।

7. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा –

सामाजिक परिवर्तन से आशय समाज की संरचना, संस्कृति, मूल्यों, व्यवहारों एवं संस्थाओं में समय के साथ होने वाले परिवर्तन से है।

MacIver एवं Page के अनुसार– ''सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को कहा जाता है।''

Kingsley Davis के अनुसार– 'सामाजिक परिवर्तन समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली में होने वाला परिवर्तन है।''

आधुनिक समाज में डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख माध्यम बन चुका है।

8. डिजिटल मीडिया एवं सामाजिक परिवर्तन–

डिजिटल मीडिया ने समाज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है।

(1) शिक्षा – ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल कक्षाएँ, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म एवं वर्चुअल विश्वविद्यालयों ने शिक्षा व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

विद्यार्थियों को अब–

ई–पुस्तकें,
ऑनलाइन व्याख्यान,
डिजिटल पुस्तकालय,
ऑनलाइन परीक्षा,
शोध सामग्री इत्यादि आसानी से उपलब्ध हो रही है।

(2) आर्थिक परिवर्तन – डिजिटल भुगतान प्रणाली (UPI), नेट बैंकिंग, ई–कॉमर्स, ऑनलाइन व्यापार तथा डिजिटल मार्केटिंग ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी है।

छोटे व्यवसायी भी आज सोशल मीडिया मार्केटिंग के माध्यम से अपने उत्पादों का प्रचार कर रहे हैं।

(3) राजनीतिक परिवर्तन – डिजिटल मीडिया ने नागरिकों की राजनीतिक सहभागिता बढ़ाई है।

आज–

चुनाव प्रचार,
ऑनलाइन जन सम्पर्क,
ई–गवर्नेंस,
डिजिटल शिकायत प्रणाली,
ऑनलाइन मतदान जागरुकता इत्यादि जैसी व्यवस्थाएँ समाज को अधिक सहभागी बना रही हैं।

(4) सांस्कृतिक परिवर्तन – डिजिटल मीडिया ने विभिन्न संस्कृतियों के मध्य संपर्क बढ़ाया है।

इसके परिणामस्वरूप–

सांस्कृतिक आदान–प्रदान,
वैश्वीकरण,
नई जीवनशैली,

फैशन परिवर्तन,

भोजन एवं भाषा में परिवर्तन इत्यादि स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

(5) सामाजिक सम्बन्ध – सोशल मीडिया ने संचार को अत्यन्त सरल बनाया है।

आज व्यक्ति –

वीडियो कॉल,

व्हाट्सएप,

फेसबुक,

इंस्टाग्राम,

टेलीग्राम इत्यादि के माध्यम से विश्व के किसी भी व्यक्ति से तत्काल संपर्क स्थापित कर सकता है।

किन्तु इसके कारण आमने–सामने संवाद (Face & to & Face Interaction) में कमी भी देखी जा रही है।

9. डिजिटल मीडिया के प्रमुख लाभ –

सूचना का त्वरित प्रसार– सूचना कुछ ही सेकेण्ड में विश्वभर में पहुँच जाती है।

डिजिटल शिक्षा – दूरस्थ क्षेत्रों के विद्यार्थी भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

पारदर्शी प्रशासन – ऑनलाइन सेवाओं ने भ्रष्टाचार को कम करने में सहायता की है।

डिजिटल स्वास्थ्य – टेलीमेडिसिन एवं ऑनलाइन परामर्श सेवाओं का विस्तार हुआ है।

महिला सशक्तिकरण – महिलाएँ डिजिटल बैंकिंग, ऑनलाइन व्यवसाय एवं शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर बन रही हैं।

रोजगार – डिजिटल प्लेटफॉर्म नए रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर रहे हैं।

10. डिजिटल मीडिया की प्रमुख चुनौतियाँ–

डिजिटल मीडिया के अनेक लाभ होने के बावजूद कुछ गंभीर समस्याएँ भी सामने आई हैं –

साइबर अपराध,

ऑनलाइन धोखाधड़ी,

फेक न्यूज,

साइबर बुलिंग,

डेटा चोरी,

निजता का उल्लंघन,

सोशल मीडिया की लत,

मानसिक तनाव,

पारिवारिक संवाद में कमी,

डिजिटल असमानता इत्यादि इन समस्याओं के समाधान हेतु डिजिटल साक्षरता एवं साइबर सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया का प्रभाव–

(क) शिक्षा पर प्रभाव – डिजिटल मीडिया ने ग्रामीण विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षा, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, डिजिटल पुस्तकालय और वर्चुअल कक्षाओं तक पहुँच प्रदान की है। इससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अवसर बढ़े हैं। फिर भी इंटरनेट की सीमित उपलब्धता, बिजली की समस्या और डिजिटल उपकरणों की कमी शिक्षा की निरंतरता में बाधा बनती है।

(ख) कृषि एवं आजीविका – किसानों को मौसम की जानकारी, फसल प्रबन्धन, सरकारी योजनाओं, बीज, उर्वरक तथा बाजार मूल्य की जानकारी मोबाइल ऐप और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से उपलब्ध होने लगी है। इससे कृषि निर्णयों में सुधार और आय बढ़ाने की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

(ग) स्वास्थ्य सेवाएँ – टेलीमेडिसिन, ऑनलाइन परामर्श और स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरुकता अभियानों ने ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच को बेहतर बनाया है। विशेष रूप से महामारी के दौरान डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं की उपयोगिता स्पष्ट रूप से सामने आई।

(घ) सामाजिक सम्बन्ध – सोशल मीडिया ने ग्रामीण समुदायों को व्यापक सामाजिक नेटवर्क से जोड़ा है। प्रवासी परिवारों के साथ सम्पर्क बनाए रखना आसान हुआ है, किन्तु अत्यधिक उपयोग के कारण पारम्परिक सामाजिक मेल–जोल में कमी भी देखी गई है।

(ङ) चुनौतियाँ– सोशल मीडिया में चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं, जिनमें प्रमुख हैं–

डिजिटल साक्षरता की कमी,

साइबर अपराध एवं डेटा चोरी,

फर्जी समाचार (Fake News),

ऑनलाइन वित्तीय धोखाधड़ी?

डिजिटल असमानता।

3.3 शहरी क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया का प्रभाव–

शहरी समाज में डिजिटल मीडिया दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। शिक्षा, व्यापार, बैंकिंग, मनोरंजन, स्वास्थ्य और प्रशासन सहित लगभग सभी क्षेत्रों

में डिजिटल माध्यमों का व्यापक उपयोग हो रहा है।

(क) शिक्षा एवं कौशल विकास – ऑनलाइन पाठ्यक्रम, वेबिनार, डिजिटल प्रमाणपत्र तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शिक्षण ने सीखने की प्रक्रिया को अधिक लचीला और प्रभावी बनाया है।

(ख) आर्थिक गतिविधियाँ – ई–कॉमर्स, डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन बैंकिंग, स्टार्टअप संस्कृति और गिग अर्थव्यवस्था ने शहरी रोजगार एवं व्यवसाय के नए अवसर उत्पन्न किए हैं।

(ग) सामाजिक जीवन – सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने संचार को त्वरित बनाया है, किंतु इसके कारण व्यक्तिगत संपर्कों में कमी, मानसिक तनाव, सोशल मीडिया की लत तथा गोपनीयता संबंधी समस्याएँ भी बढ़ी हैं।

(घ) राजनीतिक सहभागिता – डिजिटल मीडिया ने नागरिकों को लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय बनाया है। ऑनलाइन अभियान, ई–गवर्नेंस तथा जनमत निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

3.4 ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण–

आधार,
ग्रामीण क्षेत्र,
शहरी क्षेत्र,
इंटरनेट उपलब्धता,
सीमित,
व्यापक,
डिजिटल साक्षरता,
अपेक्षाकृत कम,
अधिक,
शिक्षा,
ऑनलाइन शिक्षा का विस्तार प्रारम्भिक स्तर पर,
व्यापक एवं उन्नत,
रोजगार,
कृषि एवं स्वरोजगार आधारित,
सेवा एवं डिजिटल अर्थव्यवस्था आधारित,
डिजिटल भुगतान,
तेजी से बढ़ रहा,
सामान्य जीवन का हिस्सा,
साइबर अपराध,
जागरुकता की कमी के कारण अधिक जोखिम,
तकनीकी सुरक्षा अपेक्षाकृत बेहतर,
सामाजिक प्रभाव,
सामुदायिक सम्बन्धों में परिवर्तन,
व्यक्तिगत जीवन शैली में परिवर्तन।

3.5 डिजिटल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव–

सूचना तक त्वरित पहुँच,
शिक्षा का विस्तार,
डिजिटल वित्तीय समावेशन,
महिला सशक्तिकरण,
ई–गवर्नेंस को बढ़ावा,
रोजगार एवं उद्यमिता के अवसर,
सामाजिक जागरूकता में वृद्धि,
लोकतांत्रिक भागीदारी का विस्तार।

3.6 डिजिटल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव–

साइबर अपराध एवं डेटा चोरी,
फर्जी समाचार एवं अफवाहें,
मानसिक तनाव एवं सोशल मीडिया की लत,
गोपनीयता का उल्लंघन,
डिजिटल विभाजन,
सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रभाव,
ऑनलाइन ठगी एवं वित्तीय धोखाधड़ी।

3.7 समाजशास्त्रीय विश्लेषण–

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख कारक बन गया है। एवरेट रोजर्स (Everett Roger) के Diffusion of Innovation Theory के अनुसार नई तकनीकों का प्रसार धीरे–धीरे समाज के विभिन्न वर्गों तक होता है। भारत में डिजिटल मीडिया का प्रसार भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण करता है, जहाँ शहरी क्षेत्रों ने पहले इसे अपनाया और बाद में ग्रामीण क्षेत्रों में इसका विस्तार हुआ।

मैनुअल कास्टेल्स (Manuel Castells) के Network Society Theory के अनुसार आधुनिक समाज नेटवर्क आधारित संरचना की ओर अग्रसर है, जिसमें सूचना और संचार तकनीक सामाजिक सम्बन्धों, आर्थिक गतिविधियों और राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करती है। भारतीय संदर्भ में यह सिद्धान्त ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव को स्पष्ट करता है।

3.8 अध्याय का सार–

विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि डिजिटल मीडिया ने ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में व्यापक सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में यह शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य एवं सरकारी सेवाओं तक पहुँच का प्रभावी माध्यम बना है, वहीं शहरी क्षेत्रों में यह आर्थिक विकास, ज्ञान–आधारित समाज और डिजिटल जीवनशैली का आधार बन चुका है। इसके साथ ही साइबर अपराध, डेटा चोरी, डिजिटल असमानता तथा फर्जी समाचार जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। अतः डिजिटल मीडिया के सकारात्मक प्रभावों को अधिकतम करने तथा नकारात्मक प्रभावों को न्यूनतम करने के लिए डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा और समावेशी डिजिटल नीतियों को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष–

अध्ययन के विश्लेषण से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष सामने आए–

(1) शिक्षा में परिवर्तन – डिजिटल मीडिया ने शिक्षा को अधिक सुलभ, लचीला और ज्ञान–केन्द्रित बनाया है। ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म, डिजिटल पुस्तकालय, ई–कन्टेंट तथा वर्चुअल कक्षाओं ने शिक्षा के नए अवसर उपलब्ध कराए हैं। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट, बिजली और डिजिटल उपकरणों की सीमित उपलब्धता अभी भी प्रमुख बाधाएँ हैं।

(2) सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन – सोशल मीडिया ने संचार को तेज और सरल बनाया है। परिवार एवं मित्रों के साथ सम्पर्क बनाए रखना आसान हुआ है, लेकिन आमने–सामने के सामाजिक सम्बन्धों में कमी, सामाजिक अलगाव तथा डिजिटल निर्भरता जैसी समस्याएँ भी उभरकर सामने आई हैं।

(3) आर्थिक परिवर्तन – डिजिटल भुगतान, ई–कॉमर्स, ऑनलाइन बैंकिंग तथा डिजिटल मार्केटिंग ने आर्थिक गतिविधियों को नई दिशा दी है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी न्च्, डिजिटल बैंकिंग तथा सरकारी डिजिटल योजनाओं का उपयोग लगातार बढ़ रहा है।

(4) राजनीतिक जागरुकता – डिजिटल मीडिया ने नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक जागरुकता को बढ़ाया है। विभिन्न सामाजिक अभियानों, जन आन्दोलनों तथा सरकारी योजनाओं की जानकारी आम नागरिकों तक शीघ्र पहुँचने लगी है।

(5) सांस्कृतिक परिवर्तन – डिजिटल मीडिया ने वैश्विक संस्कृति से परिचय कराया है, जिससे नए विचारों और जीवनशैली का प्रसार हुआ है। साथ ही स्थानीय संस्कृति, लोक परंपराओं और भाषाई विविधता पर भी इसका प्रभाव देखा गया है।

(6) साइबर सुरक्षा की चुनौतियाँ – डिजिटल मीडिया के बढ़ते उपयोग के साथ साइबर अपराध, डेटा चोरी, ऑनलाइन धोखाधड़ी, फर्जी समाचार तथा गोपनीयता संबंधी समस्याएँ भी बढ़ी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण लोग इन जोखिमों के प्रति अधिक संवेदनशील पाए गए।

4.3 चर्चा –

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। ग्रामीण समाज में इसका प्रभाव मुख्यतः शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य और सरकारी सेवाओं तक पहुँच के रूप में दिखाई देता है, जबकि शहरी समाज में यह आर्थिक गतिविधियों, ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था, डिजिटल व्यवसाय तथा आधुनिक जीवनशैली को प्रभावित करता है। हालाँकि दोनों क्षेत्रों के बीच डिजिटल विभाजन (Digital Divide) अभी भी मौजूद है। शहरी क्षेत्रों में इंटरनेट, डिजिटल उपकरणों तथा तकनीकी कौशल की उपलब्धता अधिक है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी, डिजिटल साक्षरता का निम्न स्तर तथा नेटवर्क संबंधी समस्याएँ डिजिटल विकास को सीमित करती हैं।

4.4 अध्ययन की सीमाएँ –

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों (Secondary Data) पर आधारित है।

अध्ययन का उद्देश्य सामान्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना थाय किसी एक राज्य या जिले का विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन इसमें शामिल नहीं है।

डिजिटल मीडिया में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण भविष्य में परिणामों में परिवर्तन संभव है।

4.5 सुझाव–

सरकार के लिए–

ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च गति इंटरनेट और डिजिटल अवसंरचना का विस्तार किया जाए।

डिजिटल साक्षरता अभियान को विद्यालयों,

महाविद्यालयों तथा पंचायत स्तर तक पहुँचाया जाए।

साइबर अपराध रोकने के लिए जागरुकता कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित किए जाएँ।

डेटा सुरक्षा और गोपनीयता से संबंधित कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए।

शैक्षणिक संस्थानों के लिए–

डिजिटल साक्षरता एवं साइबर सुरक्षा को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए।

विद्यार्थियों को जिम्मेदार एवं नैतिक डिजिटल मीडिया उपयोग के लिए प्रशिक्षित किया जाए।

ऑनलाइन शिक्षण संसाधनों की गुणवत्ता एवं पहुँच में सुधार किया जाए।

समाज के लिए–

सोशल मीडिया का जिम्मेदारीपूर्वक उपयोग किया जाए।

किसी भी जानकारी को साझा करने से पहले उसकी सत्यता की पुष्टि की जाए।

बैंक विवरण, आधार संख्या तथा व्यक्तिगत जानकारी किसी अज्ञात व्यक्ति के साथ साझा न की जाए।

बच्चों एवं युवाओं के डिजिटल उपयोग पर अभिभावकों द्वारा उचित मार्गदर्शन दिया जाए।

4.6 भविष्य के शोध की संभावनाएँ (Scope for Future Research)–

भविष्य में निम्न विषयों पर शोध किया जा सकता है–

डिजिटल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एवं सामाजिक परिवर्तन।

डिजिटल मीडिया का महिला सशक्तिकरण पर प्रभाव।

ग्रामीण युवाओं में सोशल मीडिया की भूमिका।

साइबर सुरक्षा एवं डेटा गोपनीयता का समाजशास्त्रीय अध्ययन।

डिजिटल मीडिया और लोकतांत्रिक भागीदारी।

4.7 समापन –

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डिजिटल मीडिया आज सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। इसने शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, व्यापार, शासन, संचार तथा सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में इसके प्रभावों की प्रकृति अलग–अलग होने के बावजूद दोनों समाजों में इसका महत्व लगातार बढ़ रहा है।

इसके साथ ही साइबर अपराध, डेटा चोरी, डिजिटल असमानता, गोपनीयता का उल्लंघन तथा फर्जी समाचार जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इसलिए डिजिटल मीडिया के सकारात्मक प्रभावों का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा, नैतिक उपयोग और समावेशी डिजिटल नीतियों को बढ़ावा देना आवश्यक है। यही संतुलित दृष्टिकोण भारत में समावेशी, सुरक्षित और सतत सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकता है।

Reference

1. Castells, M. (2010). The Rise of the Network Society (2nd ed.). Wiley-Blackwell.
2. Jenkins, H. (2006). Convergence Culture: Where Old and New Media Collide. New York University Press.
3. Kumar, K. (2020). Mass Communication in India (5th ed.). Jaico Publishing House.
4. Mc Quail, D. (2010). McQuail's Mass Communication Theory (6th ed.). Sage Publications.
5. Rogers, E. M. (2003). Diffusion of Innovations (5th ed.). Free Press.
6. Government of India. (2024). National Family Health Survey (NFHS-5). Ministry of Health and Family Welfare.
7. Ministry of Electronics and Information Technology. (2024). Digital India Programme. Government of India.
8. Internet and Mobile Association of India (IAMAI). (2024). Internet in India Report 2024.
9. Pew Research Center. (2024). Social Media Use Around the World.

Scribbr-

10. United Nations Development Programme (UNDP). (2023). Human Development Report 2023/24.
11. World Bank. (2024). World Development Report 2024.
12. UNESCO. (2023). Global Education Monitoring Report 2023.
13. Kapoor, A., & Verma, R. (2022). Digital media and social transformation in rural India. Journal of Media Studies, 14(2), 45–60.
14. Sharma, P., & Singh, R. (2021). Social media usage and youth participation in India. Indian Journal of Social Research, 62(4), 521–536.
15. Singh, Y. (2019). Modernization of Indian Tradition. Rawat Publications.

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 05 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में : मिथिला के लोक चित्र

– डॉ. ईश्वर चन्द गुप्ता
प्रोफेसर – चित्रकला विभाग,
धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़ – 202001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
ishwarartaligarh@gmail.com

सारांश

भारतीय संस्कृति, विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध और निरन्तर विकसित होने वाली संस्कृतियों में से एक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी विविधता में एकता के भाव परिलक्षित होते हैं, अध्यात्मिक दृष्टि, लोक परम्पराओं की जीवान्त तथा प्रकृति के साथ गहरे सामंजस्य की भावना है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र ने अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान विकसित की है, जो लोक जीवन रीति–रिवाज, धार्मिक आस्था, उत्सव तथा कलात्मक अभिव्यक्ति रूपों में दिखाई देती है। भारतीय लोक चित्रों की परम्परा केवल रूप, रंग और रेखा का शिल्प नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन दर्शन सांस्कृतिक चेतना का सजीव प्रमाण है। वैश्विक दृष्टि से मिथिला की लोक चित्रकला एक सौन्दर्य शास्त्र नहीं बल्की यह जीवनशैली एक विचारधारा है। यह लोक चित्रकला स्त्री दृष्टिकोण से जीवन प्रेम, आध्यात्मिकता, प्रकृति और सामाजिक सम्बन्धों को चित्रित करती है यह लोक कला अब केवल बिहार या भारत तक सीमित नहीं रहीं इसके विश्व के कई देशों में अपना परचम लहराया है। आज वैश्वीकरण के इस युग में स्त्रियों के साथ–साथ पुरुषों के आत्मनिर्भर बनने की राह दिखाई है। यह कला भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, संवर्धन में अपनी प्रमुख पहचान स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

मुख्य शब्द– भारतीय सांस्कृतिक परिवेश, लोक परम्परा, मधुवनी लोक चित्रकला, नारी सशक्तीकरण।

प्रस्तावना–

भारत की सांस्कृतिक विरासत विविधता अद्वितीय है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत का सशक्त माध्यम लोक कलाएं हैं, जो केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक चेतना और जीवन दर्शन की संवाहक है। यह विरासत ने केवल संगीत, साहित्य और स्थापत्य में प्रकट होती है, बल्कि लोक जीवन और चित्रण में समृद्ध रूप में दिखाई देती हैं। मिथिला चित्रकला जिसे मधुवनी लोकचित्रकला भी कहा जाता है, अपनी मौलिकता, प्रतीकात्मकता रंग संयोजन तथा सांस्कृतिक गहराई के कारण विशिष्ट स्थान रखती हैं। भारतीय लोक चित्रकला की एक अनुपम एवं समृद्ध धरोहर है जिसे महिलाओं ने संजोकर रखा है जिसने समय के साथ न केवल भारतीय पहचान को संव्यक्त सशक्त किया है बल्कि वैश्विक मंच पर भी अपनी विशिष्ट पहचान दी है। आज यह भारत की सांस्कृतिक विरासत महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा सांस्कृतिक पर्यटन

का महत्वपूर्ण आधार बन चुकी है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित कला प्रदर्शनियों तथा संग्रहालयों में मिथिला चित्रों को विशेष सम्मान प्राप्त है। ''भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में मिथिला के लोकचित्र'' विषय का गहन अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से भारतीय लोक सांस्कृतिक धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक संरचना, प्रकृति चेतना तथा लोक सौन्दर्य बोध को समस्त रूप से समझा जा सकता है। **(चित्र देखें– मिथिला चित्रकला बिहार)**

परिवेश में मिथिला के लोकचित्र'' विषय का गहन अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से भारतीय लोक सांस्कृतिक धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक संरचना, प्रकृति चेतना तथा लोक सौन्दर्य बोध को समस्त रूप से समझा जा सकता है।

मिथिला चित्रकला बिहार के मिथिला क्षेत्र की एक पारंपरिक लोक चित्रकला शैली है, जिसकी उत्पत्ति प्राचीन काल से माना जाता है। इस कला की प्राचीनता और सांस्कृतिक महत्व का प्रमाण मिलता है, कालांतर में यह परम्परा ग्रामीण महिलाओं द्वारा सुरक्षित रखी गई और आज यह विश्वव्यापी पहचान बन चुकी है। यह लोककला मुख्यतः महिलाओं द्वारा घरेलू दीवारों और घर के आंगन में बनाई जाती है।

समृद्धि और शान्ति के रूप में भगवान का आर्शीवाद प्राप्त करने के लिए कलाओं की इस अनुठी शैली का प्रयोग स्त्रियों ने अपने घरों और दरवाजों को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने लिए करती थी। इस महान देश में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है। जहाँ महिलाओं की रचनात्मकता के साथ अछुता हो। प्राचीनकाल से इस देश की महिलाओं ने रचनात्मक के विभिन्न रूपों में खुद को शामिल किया गया है। उनकी रचनात्मकता से हम पा सकते है। सबसे सुन्दर प्रकृति संस्कृति और मानस के बीच के अन्तः सम्बन्ध। यह सम्बन्ध मधुबनी लोक चित्रों में सहज रूप से बनाये रखा है। जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली लोक परम्परा का जीता–जागता उदाहरण है।

''मिथिला चित्रकला पर अपने अध्ययन के लिए सुपरिचित 'कृष्ण कुमार कश्यप' का मानना है कि इस लोक कला को दुनिया आज 'मधुबनी' पेंटिंग के नाम से जानती है, किन्तु इसका अपना पुराना नाम 'लिखिया' है। लिखिया का अर्थ है लिखने की कला या क्रिया। लिखने की इस

मिथिला चित्रकला (बिहार)

कला का वस्तुतः मिथिला की स्त्रियों की ज्ञान परंपरा से है। इस रूप में ये चित्र इन स्त्रियों की चित्रलिपि भी हैं और ज्ञान पोथी भी। मैथिली समाज में सदियों से प्रचलित इस परंपरा में चित्रकला का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों व्रत और मुंडन–उपनयन (जनेऊ) या विवाह के अवसर पर सांस्कारिक विधियों के अन्तर्गत किया जाता है। हालांकि 1970 के बाद यह मिथिला या मधुबनी चित्रकला के नाम से विख्यात हो गया।[1] **(चित्र अगले पृष्ठ पर देखें – मिथिला की लोक कला)**

मिथिला की लोक कला मधुबनी एक छोटे से गाँव में पनपी (जन्मा) आज पूरे विश्व में अपनी अलग पहचान बना लिया है। सदियों से महिलाओं ने इन चित्रों का निर्माण भी तीज त्यौहारों जैसे अवसरों पर घर–आंगन को मनमोहक रूप देने के उद्देश्य से सिर्फ महिलाओं द्वारा किया जाता रहा है। जो 'कोहबर' के रूप से वहाँ की ग्रामीण महिलायें करती, जो मिट्टी के दीवारों पर गाय को गोबर और मिट्टी का लेप लगाकर उपयोग किया जाता है। जिससे दीवारों पर बेहतर चित्र बनाया जा सकें। गाय के गोबर में एक खास तरह को रसायन पदार्थ होने के कारण दीवार पर विशेष चमक आ जाती है। साथ ही साथ प्राकृतिक रगों का प्रयोग अनुठी है। जिसमें चटख रंगों का प्रयोग खूब किया जाता है, जैसे–लाल, हरा, नीला, काला। कुछ हल्के रंगों से भी चित्र में निखार लाया है।

इन रंगों का निर्माण स्वयं स्त्रियों ने प्राकृतिक श्रोतों से स्वयं तैयार करती है। जिनमें चावल से सफेद रंग,

हरा रंग विभिन्न लताओं के रसों से, पीला रंग हर सिगांर के फूल से लाल रंग कुसुम के फूल का रस नारंगी के लिए सिन्दूर, काले रंग के लिए कालिख प्रयुक्त होते थे। जरूरत पड़ने पर विभिन्न प्राकृतिक सामग्रियों का भी इस्तेमाल किया जाता था रंग बनाने के लिए। रंगों में पकड़ बनाने के लिए बबूल का गोंद मिलाया जाता है। परन्तु आज अधिकतर कलाकार कैमिकल रंग जो बाजार में उपलब्ध है, उन्हीं का प्रयोग करते हैं। तूलिका स्त्रियां स्वयं बनाती थी। जिनमें नींम या बांस के तिनके में रूई के फाहे से चित्रों को अलंकृत करती है। आजकल आधुनिक तुलिकाओं एवं रंगों का प्रयोग इस कला के लिए होने लगा। मूल रूप से इन लोक चित्र उनमें असली रूप तो ये चित्र गाँवों की मिट्टी से लीपी गयी झोपड़ियों में देखने का मिलती थी। लेकिन अब मिट्टी के दीवारों से निकालकर पक्के दीवारों पर कपड़ा जूट, कैनवास पर भी किये जाते है।

वैश्विक पटल पर मिथिला चित्रकला–

यह कला केवल भारत के लोगों के बीच ही लोकप्रिय नहीं है बल्कि अन्य देशों के लोगों को खासकर अमेरिका और जापान के बीच खासी लोकप्रिय है। यहाँ के चित्र मुख्य रूप से रेखा और रंग प्रधान चित्रों में आकृतियों का जाल सा बिछा रहता है, कहीं भी खाली स्थान नहीं छोड़ा जाता है। ''जापान में मिथिला पेन्टिंग का एक 'मिथिला संग्रहालय' है जो जापान के निगाटा प्रान्त में टोकामाची पहाड़ियों में स्थित है, जिनमें पन्द्रह हजार से अधिक अति सुन्दर, अद्वितीय और दुर्लभ मधुबनी चित्रों का खजाने रखा गया है''।[2] इस लोक चित्रों को खासतौर पर धार्मिक कथावृतों एवं मिथको का जबरदस्त प्रभाव माना जाता है। ये चित्र राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह के दौरान महिला कलाकारों से बनवाये थे।[3] राजा जनक ने इस अनुठी कला से पूरे राज्य को सजाने के लिए बड़ी संख्या में कलाकारों का आयोजन किया था।

परिवार में धार्मिक अनुष्ठान हो या 'नववधु' का आगमन हो 'कोहबर' से चित्रित कक्ष में स्वागत किया जाता है। प्रथम बार दम्पत्ति मिलते है, इसी कोहबर से चित्रित कक्ष में किया जाता है, जिसमें उनका वैवाहिक जीवन मंगल कामना के साथ–साथ वंश वृद्धि की कामना होती है, जैसे विषयों का अंकन होता था। ''जिनमें स्त्री–पुरुष के काम क्रियाकलापों

मिथिला की लोक कला

नव वधू का आगमन

कोहबर–लेखन कला

की कामशास्त्रीय प्रेरणा परिभाषित की जाती है। इनका व्यवहारिक उद्‌देश्य यह है कि कामसूत्रों के ज्ञान से अनभिज्ञ नवविवाहित जोड़े ऐसे काम कोठरी में एक महीने तक निवास करते हैं। नवविवाहिता युगल की ब्रह्मचर्यात्मक आस्था यहाँ कमजोर पड़ जाती है और सांसारिक जीवन से काम क्रिया को एक नैसर्गिक मानवीय इच्छा मानने के लिए प्रेरित होते हैं।[4] हिन्दू रीति के अनुसार युवावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन कठोर था। जिसके कारण नववधु को लोकज्ञान से अनभिज्ञ रहे है। जिसके परिणामस्वरूप उन्हें विवाह संस्कार के बाद कोहबर गृह में रखकर ऐसे ज्ञान कराया जाता है। कोहबर चित्रण अनुभवी महिला चित्रकार ही करती है, कोहबर में प्रयुक्त होने वाली आकृतियाँ सार्थक

धार्मिक और लोक जीवन शैली

होती है और सभी का उद्देश्य नवदम्पत्ति के भावी जीवन की मंगलकामना होती है।

मूल रूप से इन चित्रों में कमल के फूल, बांस, तोता, कमल का पत्ता, मछली, कछुआ, सांप इन छवियों को जन्म के प्रजनन और प्रसार के प्रतिनिधित्व के रूप में दर्शाया गया है। जिसमे बास पुरूष लिंग एवं वंशवृद्धि का, कमल का पत्ता–स्त्री के जनन अंगों का प्रतीक है, तोता ज्ञान या ज्ञान के विकास का प्रतीक जो हमें इस बात का सदैव स्मरण दिलाता है कि मिथिला का यह भू–भाग सदैव ज्ञान का केन्द्र रहा है। कछुआ से वर–वधु के दीर्घायु होने तथा मछली से उसके पुत्रवान होने की कामना की जाती है।

इनके साथ कोहबर–लेखन में कुछ और ऐसे बूटे तथा अलंकरण रचे जाते है जो सर्वथा मंगल और शुभ माने जाते है।[5] हाथी–घोड़ा ऐश्वर्य का, सूर्य चन्द्रमा–दीर्घ जीवन के रूप में हंस तथा मोर शान्तिपूर्ण जीवन के प्रतीक रूप में अंकित किये गये, साथ ही साथ अग्नि का चित्रण विवाह के सात फेरे के साक्षी के रूप में किया जाता है।[6] इस लोक शैली के चित्रों का विषय धार्मिक और लोक जीवन की कथाओं से जुड़ा हुआ है। जिनमें हिन्दू देवी–देवताओं जिनमें, शिव–पार्वती, अर्धनारीश्वर, महादेव, काली राम कथा, कृष्ण लीला, तुलसी विवाह, दुर्गा के साथ नारी शक्ति के विविध रूपों की कल्पना मधुबनी चित्रों में इन महिलाओं के योगदान के कारण सम्भव हो सका। मधुबनी लोक चित्रों में मुख्यतः दो तरह की होती है पहला, भित्ति चित्रण

मिथिला के लोक चित्र

(कोहबर) जिसमें चटख रंगों का प्रयोग होता है और दूसरा अंरिपन या अल्पना (भूमि चित्रण) इस प्रकार दो उपशैलियाँ मानी जाती है। पहली मिथिला ब्राह्मण शैली दूसरी कायस्थ शैली।

मधुबनी ब्राह्मण शैली में किसी चुने गये विषय वस्तु को लेकर उसे चटक लाल पीला के साथ रचा गया है। इस

मिथिला के लोक चित्र

लोक शैली में रेखाओं का प्रयोग है। जबकि कायस्थ शैली में रंगों का प्रयोग को कम करके मधुबनी चित्रों को रेखाओं के साथ प्रभावी बनाया जाता है, पृष्ठभूमि का रंग काफी दबा हुआ होता है।[7]

आज भी मिथिला के लोक चित्रों में नारी के प्रसन्नता के भाव छिपा हैं। जो भी चित्रों का अंकन करती है, पूरे परिवार के साथ मिलकर मधुबनी लोकचित्रों में पूर्ण करती है। इस कारण मधुबनी में नारी शक्ति की साहस तथा परिवार को एक सूत्र में बांधकर इस लोक चित्र को पीढ़ी दर पीढी आज तक एक परम्परा के रूप में करती आ रही है। मिथिला चित्रकला यह सिद्ध करती है कि लोक परम्पराएं केवल अतीत की स्मृतियाँ नहीं होती बल्कि वे वर्तमान और भविश्य की वैश्विक चेतना को भी आकार दे सकती है। यह कला भारत की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हुए वैश्विक कला मंच पर संवाद करती है। इनके द्वारा बनाये गये लोक चित्रों की तुलना–'विलियम जी आर्चर' ने क्ली, मिरो और पिकासो जैसे आधुनिक पश्चिमी कलाकारों से की है।

निष्कर्ष–

मिथिला चित्रकला भारतीय सांस्कृतिक परिवेश की जीवन्त सशक्त और रचनात्मक अभिव्यक्ति है। यह केवल चित्रों की एक शैली नहीं है, इसमें धर्म, दर्शन, प्रकृति, लोक जीवन, सामाजिक मूल्य और सौन्दर्य बोध का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है। यह लोककला केवल एक शैली नहीं रही, बल्कि भारतीय सम्यता की जीवित सांस्कृतिक धरोहर है, जिसने स्थानीय लोक परम्पराओं को वैश्विक पहचान दिलाई है। समकालीन समय में इसके संरक्षण शोध और प्रचार–प्रसार की आवश्यकता पहले से अधिक है, आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अमूल्य सांस्कृतिक विरासत से अवगत हो सके। भारतीय संस्कृति की गहराई और उसकी वैश्विक स्वीकार्यता का एक सुन्दरतम् प्रतिबिम्ब के साथ आध्यात्मिक लोक चेतना स्त्री दृष्टिकोण और पारम्परिक ज्ञान का दृश्य रूप है। भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में वैश्विक दृष्टि से बात करते हैं तब की परंपरा को वर्तमान वैश्विक संवेदना से जोड़ती है। इस लोक चित्रों में न केवल सौन्दर्य है बल्कि वह संवेदना भी है जो विश्व को भारत की आत्मा से आत्मसात् कराती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. See: www.aalekhan/singh 63.blogspot.com
2. See: 10 UNKNOWN AND FROM M.Jagranjosh.com
3. जानिये मधुवनी चित्र See: www.NAMASTE.IN
4. मिथिला की लोक चित्रकला – सफलता – असफलता – अवधेश अमन, प्रकाशन ललित कला अकादमी नई दिल्ली–पृष्ठ नं.–25 ।
5. उपरोक्त– पृष्ठ नं.–24।
6. रंगों का संयोजन–इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च – ग्रन्थालय प्रकाशन इन्दौर–पृष्ठ नं. 38।
7. भारत की लोक कलाएँ, सम्पादक डॉ अर्चना रानी, आनन्द पब्लिकेशन, मेरठ पृष्ठ नं. 32–33।
8. दीर्घा, सम्पादक अवधेश मिश्रा, प्रकाशन अंजू सिन्हा, उत्कर्ष प्रतिष्ठान–लखनऊ।
9. मधुबनी चित्रकला, Life hi.M.Wikipedia.org

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 07 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

– डॉ. नम्रता तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–बी.एड. विभाग, महिला महाविद्यालय (पी.जी.) कालेज, किदवई नगर, कानपुर – 208011 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल : **namratammv.099@gmail.com**

शोध सारांश

भारत विश्व के उन देशों में शामिल है जहाँ उसने अपने असीमित विकास कार्यों से दुनियाँ में नाम रोशन किया है। ज्ञान – विज्ञान, शोध नवाचार, शिक्षा स्वास्थ्य के क्षेत्र में दुनियाँ के टॉप देशों के सूची में आता है भारत। लेकिन भारत जहाँ अपने वैविध्य ज्ञान से लोगों अचरज में डाल देता है, वहीं दूसरी ओर भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में कई समस्या और चुनौतियों से जूझ रहा है। भारत ग्रामीण विकास सूचकांक में अपनी धीमी गति को दर्ज कराया है। भारत में महिला और गरीबी एक जटिल समस्या के रूप में उभरा है। हम अपने शोध अध्ययन के माध्यम से इन्हीं जटिल समस्याओं को केन्द्र में रखकर गरीबी उन्मूलन एवं महिहा सशक्तिकरण में सूक्ष्म वित्त की भूमिका का अध्ययन किया गया है। भारत जनसंख्या की दृष्टिकोण से दुनियाँ में दूसरे स्थान पर है। यहाँ पर भाषाई और धर्म, जाति के आधार पर लोग निवास करते हैं। यहाँ पर अनेकता में एकता की भावना से प्रेरित लोग हैं। इसलिए भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व में सर्वोपरि स्थान दिया गया है। आजादी के बाद भारत ने अनेक समर्स्याओं का समाधान करते हुए कई उपलब्धियों को हासिल किया है। कई क्षेत्रों में जैसे– शिक्षा, कृषि, औद्योगीकरण, सड़कें, परिवहन आदि का चहुंमुखी विकास कर राष्ट्र को विकास की धारा से जोड़ा है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कम किन्तु नगरीय क्षेत्र में ही विकास दृष्टिगोचर होता है। आज हम 'अमृत महोत्सव' मना रहे हैं। हम आजादी के अस्सीवें दशक में प्रवेश कर चुके हैं। लेकिन हमारे ग्रामीण क्षेत्र आज भी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक रूप से पिछड़े वर्ग में शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा, स्वास्थ्य, शुद्ध जल जैसे जीवन रूपी संसाधनों से अभी भी बहुत पीछे हैं। शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र दलित, पिछड़े, शोषित सभी निर्धनता का जीवन जीने को मजबूर हैं।

मुख्य शब्द– महिला सशक्तिकरण, उन्मूलन, आत्मनिर्भर, डिजिटलीकरण, ग्रामीण समाज, गरीबी।

मुख्य लेख–

भारत की लगभग सत्तर फीसदी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। यही कारण भी है कि भारत को गाँवों का देश भी कहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वालों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति बेहद नाजुक है। आजादी के उपरान्त ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को सुधारने के लिए ठोस प्रयास किये गये हैं। ग्रामीण विकास की भावना एकीकृत विकास की अवधारणा पर आधारित रही है और यही कारण रहा है कि

पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन की सर्वोपरि चिन्ता रही है। ग्रामीण कार्यक्रम में निम्नलिखित का समावेश है–

1. ग्रामीण विकास हेतु सामाजिक – आर्थिक के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा का समुचित प्रबन्ध।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में सुधार।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं जैसे– स्कूल, स्वास्थ्य, सड़क, पेयजल, खेल के मैदान, शुद्ध वाातावरण, विद्युतीकरण आदि का प्रावधान।

4. कृषि उत्पादकता बढ़ाकर ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराना।

भारत के ग्रामीण इलाकों में शहरी और ग्रामीण आर्थिक विषमता बड़े पैमाने पर देखने को मिलता है । इन्हीं विषमताओं को दूर करने के लिए आर्थिक योजनाओं की प्रमुखता रहती है।

राष्ट्र का विकास तभी सम्भव हो पायेगा जब ग्रामीण महिलाओं को विकसित किया जायेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, न्यायिक, सांस्कृतिक ज्ञान की दूरियों को कम करना होगा। समय – समय पर ग्रामीणों के खुशहाल जीवन जीने के लिए सतत् प्रयास ग्रामीण विकास मंत्रालय के अर्न्तगत किया जाता है। ग्रामीण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा ग्रामीण इलाकों में विकास हेतु ग्रामीण क्षेत्रीय इकाई स्थापित किया गया है जो ग्रामीण महिलाओ के सर्वांगीण पर कार्य करते हैं। ग्रामीण विकास इकाई ग्रामीण और शहर विभाजन की खाई कम करने के लिए एक विस्तृत कार्य योजना तैर्यार करती है। ग्रामीण विकास के लर्क्ष्य को प्राप्त करने से कई स्तर पर योजना जैसे गाँव स्तर पर मनरेगा, पंचायत स्तर पर और जिला स्तर पर। ग्रामीण इलाकों में रोजगार सृजन और ,सामाजिक सुरक्षा, पीने के लिए गुणवत्ता युक्त, खाद्य सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण योजनाओं का संचालन किया जाता है। ग्रामीण महिलाओं को समय – समय पर प्रशिक्षित मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन किया जाता है। स्वैच्छिक कार्यों के विकास योजनाओं के प्रति जागरुक करने हेतु चौपाल लगाया जाता है। समय अनुरूप ग्रामीण विकास हेतु योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है।

वर्तमान में महिलाओं की सामाजिक स्थिति –

भारतीय संस्कृत में महिलाओं को प्राचीन काल में सम्मान, सशक्त और सम्माननीय माना जाता था। हमारे वैदिक साहित्य में महिलाओं को सम्मान और समान स्तर से सम्बन्धित अनेक श्लोक, दोहे, रचनाएं रची गई हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।।' वैदिक काल में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में वही स्थिति थी जो पुरुषों की होती थी। समय काल के अनुरूप स्थिति में गिरावट आने लगी। 19वीं सदी के आते–आते महिलाओं की दशा – दिशा बहुत दयनीय हो गयी। अब स्त्री भोग–विलास की वस्तु समझी जाने लगी।

बीसवीं सदी में महिलाओं की स्थिति में विशेष बदलाव नहीं आया। कई समाज सुधारकों के अथक प्रयास के बाद भी कोई सकारात्मक परिणाम नहीं आए। बीसवीं सदी में महिलाओं की स्थिति में पहले की अपेक्षा बेहतर बदलाव आया और महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने लगीं। वैश्विककरण के दौर में महिलाओं में जनचेतना की भावना तेज हुई, वो प्रत्येक क्षेत्र में खुद को स्थापित करने लगीं। शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीतिक और सामाजिक कल्याण हेतु ठोस कदम उठाने लगीं। निर्णयान क्षमता में भी तेजी दिखाई देने लगी। आज महिलाएं रोजगार, समाज कल्याण, राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान करने लगी हैं। महात्मा गाँधी जी कहते थे कि 'अगर घर के किसी कोने में गड़ा खजाना अचानक मिल जाए तो अन्दर आत्मविश्वास और कितनी खुशी होगी। इसी प्रकार महिला शक्ति सुस्त पड़ी है, अगर भारत सशक्त पंचायत की महिलाएं जाग जाएं तो वे इसी प्रकार विश्व को चकाचौंध पंचायती राज से कर देंगी।'

इस क्रम में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था – 'समाज में स्त्री का बड़ा महत्व है, जिस घर–परिवार में स्त्री शिक्षित–प्रशिक्षित हो, उनके बच्चे सदा ही उन्नति के पथ पर अग्रसर रहते हैं। वह सुन्दर परिवार की जन्मदात्री है, जब तक हमारे आन्दोलनों में महिलाएं भी भरपूर हिस्सा नहीं लेंगी, तब तक हमारा आन्दोलन कभी सफल नहीं हो सकता। 'आज डिजिटल दुनियां में महिलाओं ने खुद को स्थापित करने के साथ प्रतिस्पर्धा में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्तर पर देश का नाम रोशन कर रही हैं।

शोध का मूल उद्देश्य शोधपत्र महिला मजदूरों को लेकर है। महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से सशक्त बनाने से पूर्व और कैसे महिलाएं आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर गरीबी से बाहर आने के लिए कौन–कौन

से कार्य कर रही हैं जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हो, यह कार्य निम्नलिखाति हैं –

मनरेगा –

ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए मनरेगा योजना बहुत उपयोगी साबित हो रहा है।

बागवानी –

बागवानी फसलों का कार्य ग्रामीण महिलाओं के सहयोग से किया जाता है, चाय बगान पूरी तरह से ग्रामीण महिलाओं पर निर्भर है। बागवानी फसलों ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया है।

कृषि –

कृषि क्षेत्र में महिलाओं को रोजगार आसानी से उपलब्ध हो जाए, तो खासकर ग्रामीण महिलाओं को, धान की रोपाई या कटाई महिलाओं पर निर्भर रोजगार है।

साडी उद्योग –

साड़ी बुनाई और कढ़ाई के कार्यों में महिलाओं को सबसे ज्यादा कार्य मिलते हैं। इस उद्योग में शहर और ग्रामीण महिलाएं साथ – साथ कार्य करती हैं।

सड़क और भवन निर्माण–

सड़क और भवन निर्माण में ग्रामीण महिलाओं को ज्यादा अवसर मिलता है क्योंकि इन कार्यों में ये लोग पहले से दक्ष होती हैं। इस क्षेत्र में महिलाओं को दूसरे जिलों से लाया जाता है कार्य करने के लिए।

पापड उद्योग –

ग्रामीण महिलाएं पापड उद्योग के अर्न्तगत भी कार्य करती हैं। ये मूंग, उड़द, मसूर, आलू, चावल, साबूदाने, मक्के, मैदा, सूजी के पापड़ तैयार करती हैं।

ग्रामीण महिलाओं की गरीबी उन्मूलन में योगदान –

भारत एक ऐसा देश है जिसकी एक तिहाई जनसंख्या का हिस्सा गाँवों में निवास करती है। आज भारत के ग्रामीण विकास में और महिलाओं के साथ कितना विभेद है। आजादी में महिलाओं ने पुरुषों के साथ लड़ाई लड़ी थी। ये सोच कर की आजाद के बात समाज में एकरूपता आयेगी। लेकिन आज तस्वीर कुछ और है। भारत में संस्कृति, भाषा और जाति, धर्म के विभिन्न लोग निवास करते हैं, इसे मिश्रित संस्कृति का उदाहरण दिया जाता है। आज सोचने वाली बात है कि महिलाओं ने विकास के प्रत्येक पथ पर पुरुष के साथ–साथ कदम से कदम मिलाकर न केवल अपने बल्कि सम्पूर्ण समाज के विकास रूपी कल्याण में अहम भूमिका निभायी है, गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार के द्वारा जो व्यापक स्तर पर कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, उनकी सफलता अथवा असफलता महिलाओं के योगदान पर ही निर्भर करती है। वास्तव में यह सत्य है कि महिलाएं किसी भी समाज अथ्वाा राष्ट्र के उपलब्ध मानव संसाधन के उस अहम् हिस्से का प्रतिनिधित्व करती हैं जो दुर्भाग्यवश अभी तक राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास हेतु निश्चित नहीं हो पाई है। भारतीय समाज में महिलाओं के बारे में कहा जाता है– 'भारतीय नारी बाल्यावस्था में पिता पर, यौवनावस्था में पति पर तथा वृद्धावस्था में पुत्र पर निर्भर रहती है।' भारत में कभी महिलाओं को आर्थिक शक्ति और ज्ञान की देवी, शक्ति की देवी के रूप में पूजा जाता था।

आज वैश्वीकरण के दौर में वैज्ञानिक सोच विश्व में लोगों की सोच बदल रही है। वहीं भारत में स्त्री को भोग की वस्तु समझा जाता रहा है। राष्ट्र की गति आर्थिक विकास के प्रति तभी बढ़ेगी जब स्त्रियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जायेगा। महिलाओं में समाज को मजबूत और सक्षम बनाने का साहस होता। ग्रामीण महिलाओं में स्वयं को (आत्म इच्छाशक्ति) मजबूत करने हेतु निम्न गुणों का होना आवश्यक है–

इच्छाशक्ति –

इच्छाशक्ति किसी भी समाज को सशक्त बनाने का कार्य करता है। उद्यमशीलता की मजबूत नींव इच्छाशक्ति की मजबूत नींव से निर्मित होता है। अक्सर देखने को मिलता है कि महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा खुद को बेहतर नहीं पाती हैं, खुद को साबित करने के लिए क्योंकि हमारे समाज में विभेद जन्म से कर दिया जाता है। इस लिए ग्रामीण महिलाओं में इच्छाशक्ति का आभव होता है, कार्यों को करने का तरीका, संचालन करने का भाव होते हुए कार्यों की शुरुआत नहीं कर पाती हैं। प्रत्येक महिलाओं में इच्छाशक्ति पुरुषों से कम नहीं होता है। ये बात उन्हें जानने और समझने की जरूरत है और खुद के क्षमता से अधिक कार्य करने का साहस भी होता है। जरूरत है ग्रामीण महिलाओं को अपने इच्छाशक्ति को जगाने की।

शिक्षा स्वास्थ्य–

किसी राष्ट्र का विकास तब तक अधूरा होता है, जब तक वहाँ की महिलाएं शिक्षा और स्वास्थ्य में योगदान

न कर पाएं। उद्यमिता के क्षेत्र में सफल होने के लिए महिला में शिक्षा एवं सामर्थ्य का होना आवश्यक है। किसी भी समाज को सशक्त करने का प्रथम माध्यम शिक्षा होता है। शिक्षा से महिलाओं को मानसिक रूप से सशक्त बनाने का कार्य है । शिक्षा और स्वास्थ्य जीवन के प्राथमिकता में शामिल है। आज ग्रामीण महिलाओं ने शिक्षा से खुद को स्थापित किया है। स्वास्थ्य सेवा सुदृढ़ करने में ग्रामीण महिलाओं का योगदान कोरोना काल में देखने को मिला है।

डिजिटलीकरण –

21वीं सदी तकनीकी युग की है। दुनियाँ डिजिटल युग की ओर तेजी से बढ़ रही है। ऐसे में ग्रामीण महिलाओं ने भी खुद को डिजिटल प्लेटफॉर्म से जुड़कर दुनियाँ को देख रही हैं। भारत की ग्रामीण महिलाओं ने डिजिटल से खुद को और समाज को सशक्त बना रही हैं। विगत कोरोना काल में महिलाओं द्वारा डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वर्क फ्रॉम होम, बैंकिंग जैसे कार्यों को दृढ़ता से किया गया है। आज ग्रामीण महिलाएं डिजिटल प्लेटफॉर्म पर रोजगार सृजन का मंच संचालन कर रही हैं। डिजिटल इकोनॉमी में ग्रामीण महिलाओं का योगदान देखा जा सकता है। कई सरकारी योजनाओं की पहुँच को महिलाओं ने सुनिश्चित किया है और उनके कार्यों में कोई रुकावट न आए, इसलिए इस पर कई पहल भी किया है। डिजिटल से महिलाओं को सशक्त एवं आत्मनिर्भर बनाने में कारगर साबित होता है।

संकल्पना–

ग्रामीण महिलाओं को उद्यमशीलता में उन्नति करने हेतु और कार्यों के क्रियान्वित करने के लिए संकल्पवान होना चाहिए क्योंकि किसी में उद्यम में जोखिमपूर्ण होता है। जिसका निर्वाह बिना दृढ़ इच्छा शक्ति के पूर्ण होना संभव नहीं है। किसी भी उद्यम की अनिवार्य योग्यता दृढ़ इच्छाशक्ति, आत्मबल, जोखिम उठाने का साहस है। तभी ग्रामीण महिलाओं में बेहतर पूर्वानुमान, निर्णयन, नियोजन तथा गणना का कार्य करने में सक्षम होंगी। ग्रामीण महिलाओं में दृढ़ निश्चय एवं योग्यता रूपी विशिष्टता होनी चाहिए।

महिलाओं की नेतृत्व क्षमता –

विश्व के अनेक देशों का अनुभ्वा रहा है कि ग्रामीण महिलाओं का राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व क्षमता अच्छा रहा है। ग्रामीण महिलाओं में कार्यों के प्रति निष्ठा, ईमानदारी और संचालन की क्षमता पुरुषों के अपेक्षा कई कार्यों में बेहतर प्रदर्शन रहा है। आज ग्रामीण महिलाओं ने संसद से लेकर राष्ट्रपति भवन तक का सफर तय कर लिए हैं। पर्यावरण संरक्षण और जीवन खुशहाली हेतु महिलाओं की क्षमता अतुलनीय रही है। ग्रामीण महिलाओं का पंचायत से जुड़ाव बढ़ा है। महिलाओं की नेतृत्व क्षमता ने महिलाओं के साथ समाज को भी सशक्त किया है। विकास के किसी भी क्षेत्र में महिलाओं का योगदान और प्रगति की दृष्टि से भी एक सराहनीय उपलब्धियाँ रही हैं।

आत्मनिर्भर –

कोई भी समाज तभी उन्नति कर पायेगा जब वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और मानसिक रूप से आत्मनिर्भर होगा। ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए जमीनी स्तर पर कई योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। जब ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जायेगा तभी वह समाज के विकास में योगदान देंगी । हालांकि पुरुषों के साथ अब महिलाएं भी आत्मनिर्भर हो रही हैं, कई महिलाएं खुद का स्टार्टअप चला रही हैं और लोगों को रोजगार भी उपलबध करा रही हैं।

निष्कर्ष –

किसी भी राष्ट्र में गरीबी का निर्माण स्त्री पुरुषों के जन्म से नहीं होता है। आज ग्रामीण महिलाएं गरीबी उन्मूलन को जड़ से खत्म करने के लिए निरन्तर संघर्ष कर रही हैं, वे अपनी सामर्थ्य से कहीं ज्यादा कार्य कर रही हैं, वे आत्मविश्वास और पूरी दृढ़ता के साथ सभी कार्य कर रही हैं जो पहले पुरुष लोग करते थे। आज हम आजादी के अमृत काल में प्रवेश कर चुके हैं, ऐसी महिलाएं खुद सशक्त होकर गरीबी उन्मूलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत की जनगणना – 2011।
2. क्रानिकल पत्रिका – मार्च, अंक – 2023।
3. कुरुक्षेत्र अंक – जुलाई, 2018।
4. सिंह, वी. पी. जनमोहना सिंह, आधुनिकता एवं महिला सशक्तीकरण, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010।
5. नारी सशक्तीकरण के नए क्षितिज, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017।
6. महिला सशक्तीकरण और नारीवाद – पी. डी. शर्मा, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017।

ISSN : 2394-4366
Received: 11 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

रुद्रयामल तन्त्र एवं आधुनिक न्यूरो–फिजियोलॉजी के परिप्रेक्ष्य में त्रिनाड़ी स्वर विज्ञान, कोशिकीय चक्रानुक्रम एवं सूक्ष्म शरीर (Astral Body) : एक तुलनात्मक एवं प्रयोगात्मक अनुशीलन

– मनोज कुमार मिश्रा
शोध छात्र – दर्शनशास्त्र विभाग,
मेरठ कॉलेज, मेरठ – 250001
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
25mishramanoj@gmail.com

शोध निर्देशक –
– डॉ. हितेश कुमार सिंह
एसोविसएट प्रोफेसर –
दर्शनशास्त्र विभाग,
मेरठ कॉलेज, मेरठ – 250001
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
hiteshsinghgkp@gmail.com

शोध–सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र में 'रुद्रयामल तन्त्र' (पटल 27) और 'श्रीतन्त्रालोकः' (29वें आह्निक) के आलोक में मानव के सूक्ष्म शरीर (Subtle/Astral Body), त्रिनाड़ी स्वर विज्ञान और चक्र–भेदन के गत्यात्मक नियमों का प्रयोगात्मक व तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। शोध की मौलिकता को पुख्ता करने हेतु आधुनिक पाश्चात्य न्यूरो–फिजियोलॉजी (Cerebrospinal Nervous System) और बायो–एनर्जेटिक्स (Bio-Energetics) के सिद्धान्तों के साथ इसका एक गम्भीर दार्शनिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह लेख प्रमाणित करता है कि इसका एक गम्भीर दार्शनिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह लेख प्रमाणित करता है कि मानव का अस्तित्व केवल स्थूल पिण्ड तक सीमित नहीं है, अपितु प्रत्येक चक्र का अपना एक स्वतंत्र सूक्ष्म शरीर और विशिष्ट वर्ण (Color) होता है। कौल समागम के अन्तर्गत होने वाले स्त्री–पुरुष प्रधान चक्रों (लिंग एवं योनि मण्डल) के परस्पर महा–संघट्ट, उत्तेजना–रहित चक्र भेदन, आनन्द बहुल रसों के स्राव तथा स्खलन–रहित (Non-Ejaculatory Status) बिन्दु–धारण की क्रमिक कायिक अनुभूतियों को शास्त्रों के ठोस साक्ष्यों द्वारा सिद्ध करना ही इस शोध का मूल प्रयोजन है (Index)।

बीज शब्द (Keywords) : रुद्रयामल तन्त्र, तन्त्रालोक, सूक्ष्म शरीर, योगिनीवक्त्र, चक्र–भेदन, आनन्दबहुल रस, बिन्दु–धारण, न्यूरो – फिजियोलॉजी।

2. प्रस्तावना : त्रिनाड़ी और त्रिकाल–मीमांसा (Introduction)–

शैव आगमों और तांत्रिक शरीर–विज्ञान (Tantric Physiology) के अन्तर्गत, काम–ऊर्जा का आध्यात्मिक रूपान्तरण केवल शारीरिक वायु का नियंत्रण नहीं है, अपितु मन को काल (Time) की सीमाओं से मुक्त कर 'वर्तमान क्षण' में स्थिर करने का विज्ञान है। मेरुदण्ड के वाम भाग में स्थित 'इडा नाडी' (चन्द्र स्वर/शक्तिरूपा) करने का विज्ञान है। मेरुदण्ड के वाम भाग में स्थित 'इड़ा नाड़ी' (चन्द्र स्वर/शक्तिरूपा) मन को भविष्य की चिन्ताओं और आगामी वासना की योजनाओं में भटकाती है तथा दक्षिण भाग में स्थित 'पिंगला नाड़ी' (सूर्य स्वर/पुंरूपा) मन को भूतकाल की स्मृतियों में बाँधकर रखती है।

तन्त्र का यह अचल नियम है कि काम–ऊर्जा का रूपान्तरण केवल शुद्ध 'वर्तमान क्षण' (Present Moment) में ही घटित होता है, जो मेरुदण्ड के

मध्य में स्थित 'सुषुम्ना नाड़ी' का शाश्वत् मार्ग है। जब प्राणायाम और मानसिक धारणा द्वारा इड़ा–पिंगला के सांसारिक स्वर को शान्त कर प्राण को सुषुम्ना में प्रविष्ट किया जाता है, तभी मूलाधार के त्रिकोण पीठ पर सोई कुण्डलिनी कपाट खोलती है।

इसकी पूर्ण दार्शनिक पुष्टि 'रुद्रयामल तन्त्र' (पटल 27) का यह साक्ष्य करता है –

''इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी।
शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा।।''
''दक्षिणे पिंगलाख्या तु पुंरूपा सूर्यविग्रहा।
दाडिमीकुसुमप्रख्या विषाख्या परिकीर्तिता।।''

– (रुद्रयामल –27.51–52) (1)

इस श्वास–वायु के मध्य मार्ग में स्थापित होने का परम साक्ष्य 'श्रीतन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 365) का यह मूल श्लोक भी प्रदान करता है –

''स्रोतोद्वयस्य निष्ठान्प्रमूर्धस्थचक्रबोधनम्।
विश्रामं च समावेशं सुधीनां मरुतां तथा ।।''

– (तन्त्रालोक – 29.142) (2)

दार्शनिक विश्लेषण – महाचार्य अभिनवगुप्त स्पष्ट करते हैं कि स्रोतोद्वय (अर्थात दो स्रोतों – इड़ा और पिंगला) का निष्ठा (लय) जब मध्य मार्ग में होता है, तो वह मरुतों (प्राणों) और मर्मों का भेदन करता हुआ सीधे मूर्धस्थ चक्र (सहस्रार चक्र) का बोध कराता है, जहाँ चेतना का शाश्वत् समावेश (Absolute Rest) घटित होता है।

3. सप्त–चक्र, सप्त–वर्ण सूक्ष्म शरीर एवं आधुनिक न्यूरो–फिजियोलॉजी (10X Comparison) –

शैव तंत्र की यह परम क्रांतिकारी स्थापना है कि मानव देह सात परतों या सात शरीरों का एक सघन पुंज है, जिसे 'सप्त–शरीर' (Seven Bodies) कहा जाता है। प्रत्येक चक्र का अपना एक स्वतंत्र सूक्ष्म शरीर होता है। चूँकि सातों चक्रों के अपने विशिष्ट दार्शनिक रंग निर्धारित हैं (जैसे मूलाधार का रक्त वर्ण, स्वाधिष्ठान का नारंगी वर्ण आदि), इसलिए मानव चेतना के भीतर सात भिन्न वर्णों (7 Colors) के सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहते हैं। जब हम इस तान्त्रिक सूक्ष्म–शरीर विज्ञान की तुलना आधुनिक 'न्यूरो–फिजियोलॉजी' (Neuro-Physiology) से करते हैं, तो विज्ञान के कपाट खुल जाते हैं '

1. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) और चक्र विन्यास – आधुनिक चिकित्सा विज्ञान जिसे 'सेरेब्रोस्पाइनल नर्वस सिस्टम' (Cerebrospinal Nervous System) और स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic Nervous System) कहता है, वह रीढ़ की हड्डी के विभिन्न 'प्लेक्सस' (Nerve Plexuses) पर टिका है। जैसे– 'सैकरल प्लेक्सस' (मूलाधार), 'प्रोस्टेटीक प्लेक्सस' (स्वाधिष्ठान), 'सोलार प्लेक्सस' (मणिपुर) और 'कार्डिएक प्लेक्सस' (अनाहत चक्र)। पाश्चात्य विज्ञान मानता है कि इन केन्द्रों से केवल विद्युत–रासायनिक तरंगें और हॉर्मोन्स (जैसे एंडोर्फिन, डोपामाइन) स्रावित होते हैं। परन्तु तन्त्र विज्ञान इससे आगे जाकर यह सिद्ध करता है कि ये तंत्रिका केन्द्र वास्तव में 'सात वर्णों के सूक्ष्म शरीरों' (Astral Bodies) के द्वार हैं।

2. बायो–एनर्जेटिक्स (Bio-Energetics) का नियम और ध्यान पोषण – आधुनिक बायो–एनर्जेटिक्स विज्ञान यह स्वीकार करता है कि मानव शरीर के चारों ओर एक विद्युत–चुम्बकीय ऊर्जा क्षेत्र होता है, जिसे 'आभामण्डल' (Aura Field) कहा जाता है। तन्त्र स्पष्ट करता है कि यदि साधक का सूक्ष्म शरीर ध्यान के पोषण से पूर्णतः स्वस्थ, सशक्त और संतुलित अवस्था में है, तो मूलाधार चक्र पर जाग्रत होने वाली काम–ऊर्जा का आध्यात्मिक रुपान्तरण (Sublimation) अत्यधिक तीव्र गति से और बिना किसी मानसिक अवरोध के स्वतः घटित होता है।

इसका परम प्रामाणिक साक्ष्य 'श्री तन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 408–409) के इन श्लोकों में मिलता है, जहाँ पाँच प्रकार के चक्र–व्यूहों (सूक्ष्म शरीरों) का विवरण दिया गया है –

''कलास्तत्त्वानि नन्दाद्या व्योमानि च कुलानि च।
ब्रह्मादिकारणव्याप्येश्वेश सा पंचकात्मिका।।''

– (तन्त्रालोक–29.249) (3)

दार्शनिक विश्लेषण – अभिनवगुप्त पाद स्पष्ट करते हैं कि कुण्डलिनी जब ऊपर उठती है, तो वह नाड़ी चक्र, माया चक्र, योगी चक्र, दीप्ति चक्र और शान्त चक्र जैसे पाँच प्रकार के चक्र–व्यूहों (चक्र–शरीरों) को जाग्रत करती हुई सहस्त्रार में विलीन होती है। यह सात वर्णों के सूक्ष्म शरीर के पोषण का साक्षात् आगमिक प्रमाण है।

4. प्रधान चक्रों का विनिमय : लिंग और योनि मण्डल का तान्त्रिक समागम –

जब साधक युगल इस सूक्ष्म शरीर विज्ञान के अभ्यास में परिपक्व हो जाते हैं, तब वे कौल मार्ग के मुख्य तान्त्रिक यज्ञ (यामल संघट्ट) में प्रवेश करते हैं। तंत्र विज्ञान

के अनुसार– पुरुष देह का प्रधान ऊर्जा–केन्द्र इसका जननांग अर्थात् 'लिंग मंडल' (शिव ऊर्जा) है, और स्त्री देह का प्रधान ऊर्जा–केन्द्र उसका 'योनि मण्डल' (शक्तिचक्र) है।

इसका सबसे बड़ा साक्षात् साक्ष्य 'श्री तन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 355) के इन श्लोकों में उद्घाटित होता है–

''तन्मुख्यचक्रमुक्तं महेशिना योगिनीवक्त्रम्।
तत्रैव सम्प्रदायस्त्तस्मात्संज्ञायते ज्ञानम्।।
– 124।।''

**''तद्विदमलेख्यं भणितं वक्त्राद्वक्त्रसमुद्भूतयुक्त्या च।
वक्त्रं प्रधानचक्रं स्यात् संविल्लक्षणं च कथम्।।''**
– 125 (4)

गहन आगमिक मीमांसा – महाचार्य अभिनवगुप्त स्पष्ट घोषणा करते हैं कि परमेश्वर शिव के द्वारा 'योगिनीवक्त्र' (अर्थात् स्त्री का योनि मण्डल/शक्तिचक्र) ही मुख्य चक्र कहा गया है। यह परम ज्ञान 'वक्त्राद्वक्त्रसमुद्भूत' (अर्थात एक मुख/चक्र से दूसरे मुख/चक्र में स्थित होना) की युक्ति से घटित होता है। यहाँ 'वक्त्र' का अर्थ साक्षात् 'प्रधान चक्र' है। समागम के समय पुरुष अपने प्रधान चक्र (लिंग मण्डल) के द्वारा स्त्री के इस मुख्य प्रधान चक्र (योनि मण्डल) में उत्तेजना–रहित होकर (Calm Activation) प्रवेश करता है, जिससे दोनों प्रधान चक्रों के महा–संघट्ट से साक्षात् 'संविद्' (विशुद्ध चेतना) का उदय होता है।

यह सम्पर्क केवल कामुक क्रिया नहीं, बल्कि देह के भीतर छिपे शिवत्व की साक्षात् पूजा है, जिसका प्रमाण 'श्री तन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 376) देता है –

**''देह एव पंर लिंगं सर्वतत्त्वात्मकं शिवम्।
देवताचक्रसन्दोहं पूजायत् परं यजेत्।।''**
– 170–171 (5)

5. क्रमिक चक्र – भेदन विज्ञान एवं स्खलन – रहित चरम आनन्द (The Cosmic Peak) –

प्रस्तुत शोध पत्र का सबसे गूढ़ और प्रयोगात्मक निष्कर्ष यह स्थापित करता है कि जो पुरुष इन चक्रों के मार्ग में प्रवेश करना भलीभाँति जानता है, वह समागम के द्वारा स्त्री के सातों चक्रों का क्रमिक भेदन करने में समर्थ होता है–

1. चक्रों के भेदन पर सुख और आनन्द बहुल रसों का स्राव – पुरुष साधक अपनी जाग्रत कुण्डलिनी ऊर्जा को लिंग मार्ग से स्त्री के योनि मण्डल में प्रवाहित करते हुए क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत आदि चक्रों की ओर ऊपर धकेलता है (Index)। इसका साक्ष्य 'श्री तन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 376–377) इस प्रकार देता है–

**''तदेव मण्डलं मुख्यं त्रित्रिशूलाब्जचक्रकम्।
आनन्दबहुलैः सूतैर्धारासंचारविधिन स्मृतम्।।''**
– 172–173 (6)

व्याख्या – शरीर को जन्म देने वाले अंगों (लिंग और योनि) से उत्पन्न 'आनन्दबहुल रसों' के द्वारा सृष्टि–संहार की विधियों से चक्रों का स्पर्श (भेदन) करें। प्रत्येक चक्र के भेदन पर दोनों साधकों को उस चक्र की चेतना के अनुरुप एक अत्यन्त अलौकिक, अतीन्द्रिय सुख (आनन्दबहुल रस) की अनुभूति होती है।

2. स्त्री का चक्रानुक्रमिक विसर्जन (Climax) और पुरुष का बिन्दु–धारण – इस समागम का सबसे विस्मयकारी नियम यह है कि ऊर्जा के इस क्रमिक आरोहण के दौरान स्त्री प्रत्येक चक्र के भेदन पर अपने चरम आनन्द (Discharge / Climax) को प्राप्त होती चली जाती है, जिससे उसका सूक्ष्म शरीर परम तृप्ति का अनुभव करता है। परन्तु, पुरुष इस पूरी प्रक्रिया में अपने 'बिन्दु' (Vital Fluid) को पूरी तरह धारण करके रखता है। पुरुष बिना स्खलित हुए (Non-Ejaculatory Status) स्त्री के चक्रों के भीतर और गहरा पैठता चला जाता है।

3. भूमध्य नाद–वेध और सहस्त्रार में परानन्द (बिन्दु–भेद) – जब यह ऊर्जा भूमध्य (आज्ञा चक्र) पर पहुँचती है, तो साधक अपने चित्त को वहाँ ज्वालाकुल–प्रभमम् (ज्योति) के रूप में धारण करता है, जिसका प्रमाण 'श्री तन्त्रालोकः' (खण्ड–5, पृष्ठ 406) देता है –

**''बिन्दुस्थानगतं चित्तं भूमध्यपथसंस्थितम्।
हल्लक्ष्ये वा महेशानि बिन्दुं ज्वालाकुलप्रभम्।।''**
– 245 (7)

बिन्दु–भेदन और ऊर्ध्वरेता गति – आज्ञा चक्र से ऊपर उठकर जब चेतना सहस्त्रार चक्र (परम निर्वाण मण्डल) में प्रवेश करती है, तो वहाँ 'शिव–शक्ति सामरस्य' घटित होता है। पुरुष वहाँ बिन्दु का स्खलन (Ejaculation) नहीं होने देता, बल्कि वह ध्यान के प्रचण्ड आघात से उस बिन्दु का 'वेधन' (बिन्दु–भेद) करके उसे परमानन्द के रस में रुपान्तरित कर देता है, जिसका प्रमाण पृष्ठ 407 देता है –

''भूमध्य हृदये वापि कन्दे वा

ISSN : 2394-4366

बिन्दुभावनात्... बिन्दुभेदैः (उसका) वेधन करे।' (8)

सहस्त्रार के इस चरम क्षण के बाद, पुरुष उस अनन्त गुना बढ़ी हुई ऊर्जा को नष्ट होने देने के बजाय, अपने भीतर समेटकर स्खलन–रहित मार्ग से वापस नीचे मूलाधार की ओर ले आता है। इस महा–आवर्तन के पश्चात् काम–ऊर्जा का उद्वेग शान्त हो जाता है और साधक का सूक्ष्म शरीर इतना सशक्त हो जाता है कि वह भौतिक सीमाओं को लांघकर 'सुदूर यात्रा' करने में सक्षम (Astral Travel / Siddhis) हो जाता है।

6. निष्कर्ष (Conclusion) –

प्रस्तुत शोध पत्र यह प्रमाणित करता है कि काम–ऊर्जा का रुपान्तरण केवल चक्रों का मानसिक चिन्तन नहीं, बल्कि सात वर्णों के सूक्ष्म शरीरों और स्त्री–पुरुष के प्रधान चक्रों के मिलन का एक सुनिश्चित प्रायोगिक महा–विज्ञान है। आधुनिक न्यूरो– फिजियोलॉजी और बायो–एनर्जेटिक्स के सिद्धान्तों की तुलना में शैव तन्त्र का यह 'वक्त्र–संघट्ट' और 'आनन्दबहुल रस स्त्राव' का सिद्धान्त काम–ऊर्जा के पूर्ण पुनरावर्तन (Return Circuit) का एक अत्यन्त प्रामाणिक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक मार्ग प्रस्तुत करता है, जहाँ पुरुष बिना स्खलित हुए स्त्री चेतना को परम धाम (सहस्त्रार) तक लेकर जाता है और वापस लाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची (References)

1. डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी (संपादक) – रुद्रयामलतन्त्रम् (उत्तराद्धम्), पटल 27 (नाड़ीचक्र–निरुपण), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, संस्करण 2015, श्लोक 51–52, पृष्ठ संख्या – 287 (1)।
2. आचार्य अभिनवगुप्त – तन्त्रालोकः (खण्ड–5, एकोनत्रिंश–दाह्निकम् – 29वाँ आह्निक), व्याख्याकार : प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2016, श्लोक 142, पृष्ठ संख्या – 365 (2)।
3. आचार्य अभिनवगुप्त – तन्त्रालोकः (खण्ड–5, एकोनत्रिंश – दाह्निकम्), वही, श्लोक 249–252, पृष्ठ संख्या – 408–409 (3)।
4. आचार्य अभिनवगुप्त – तन्त्रालोकः (खण्ड–5, एकोनत्रिंश–दाह्निकम) वही, श्लोक 124–125, पृष्ठ संख्या – 355 (4)।
5. आचार्य अभिनवगुप्त – तन्त्रालोकः (खण्ड–5, एकोनत्रिंश–दाह्निकम) वही, श्लोक 170–175, पृष्ठ संख्या – 376–377 (5), (6)।
6. आचार्य अभिनवगुप्त – तन्त्रालोकः (खण्ड–5, एकोनत्रिंश – दाह्निकम) वही, श्लोक 244–247, पृष्ठ संख्या – 406–407 (7), (8)।
7. गायटन और हॉल – टेक्स्टबुक ऑफ मेडिकल फिजियोलॉजी (Textbook of Medical Physiology), एल्सेवियर पब्लिशर्स, संस्करण 2016 (केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र एवं नर्व प्लेक्सस की तुलनात्मक न्यूरो–फिजियोलॉजी हेतु)।

◈◈

शोध-पत्र लेखकों को विशेष निर्देश

'दि गुंजन' और **'अभिनव गवेषणा'** मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड / पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में पेपर प्रकाशित कराने के लिए पाँच प्रमुख बातों का होना बहुत ही आवश्यक है–

(1) रिसर्च जर्नल पत्रिका के क्रमानुसार चार पेज से कम नहीं होना चाहिए।

(2) रिसर्च जर्नल में कम से कम आठ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References) का होना आवश्यक है।

(3) रिसर्च जर्नल में लेखक का नाम, पद, कालेज का पता, ऊपर अंकित होना चाहिए।

(4) नवीनतम एक पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ एवं ई-मेल एड्रेस।

(5) रिसर्च जर्नल में प्रमाण-पत्र हेतु आपके निवास का पता अंकित होना जरूरी है।

यह आप सभी के स्नेह का ही परिणाम है कि आपके प्रबुद्ध विचारों को **'दि गुंजन'** और **'अभिनव गवेषणा'** **मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड / पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल** के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने का सुअवसर मिल रहा है। विस्तृत जानकारी हेतु कार्यालय अथवा मोबाइल पर सम्पर्क करें।

- प्रबन्ध सम्पादक

सम्पर्क- 8896244776, 9335597658

ISSN : 2394-4366

Received: 13 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में महिला कलाकारों की भूमिका
Role of Women Artists in Various Fields of Music

– डॉ. सुमन लता
असिस्टेंट प्रोफेसर (सितार) –
संगीत विभाग,
महिला महाविद्यालय (पी.जी.)
कॉलेज, किदवई नगर,
कानपुर–208011 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
suman.lata001234@gmail.com

सारांश (Abstract)

भारतीय संगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन, समृद्ध एवं बहुआयामी रही है। इस परंपरा के संरक्षण, संवर्धन और विकास में महिला कलाकारों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। प्राचीन काल से आधुनिक युग तक महिलाओं ने गायन, वादन, लोक संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, संगीत शिक्षा तथा शोध के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है।

यद्यपि सामाजिक रूढ़ियों, लैंगिक असमानता, पारिवारिक प्रतिबन्धों तथा मंचीय अवसरों की सीमाओं के कारण महिलाओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी उन्होंने अपनी प्रतिभा, साधना और दृढ़ इच्छाशक्ति के माध्यम से संगीत जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

बीज शब्द (Keywords) – महिला कलाकार, भारतीय संगीत, शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, वादन, फिल्म संगीत, संगीत शिक्षा, महिला सशक्तीकरण।

1. प्रस्तावना–

भारतीय संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा का महत्वपूर्ण अंग है। संगीत का विकास भारतीय समाज, धर्म, दर्शन, लोकजीवन एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ निरन्तर हुआ है। इस समृद्ध परम्परा में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है।

महिलाओं ने विभिन्न कालखण्डों में संगीत को केवल प्रस्तुत ही नहीं किया, बल्कि उसकी परम्पराओं को आगे बढ़ाने, नई शैलियों को विकसित करने तथा अगली पीढ़ी को प्रशिक्षित करने में भी योगदान दिया।

आधुनिक काल में महिला कलाकार गायिका और वादिका के साथ–साथ संगीत शिक्षिका, प्रोफेसर, शोधकर्ता, संगीत निर्देशक, संगीत संयोजक तथा सांस्कृतिक आयोजक के रूप में भी कार्य कर रही हैं।

2. शोध समस्या–

भारतीय संगीत के इतिहास में अनेक महिला कलाकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन सामान्य संगीत इतिहास में उनके योगदान का उल्लेख कई बार पुरुष कलाकारों की तुलना में कम दिखाई देता है।

विशेष रूप से महिला वादकों, संगीत शिक्षिकाओं, संगीत शोधकर्ताओं और पारम्परिक लोक कलाकारों के योगदान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण

अपेक्षाकृत कम हुआ है।

अतः संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका का समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यक है।

3. शोध के उद्देश्य–

1. भारतीय संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में महिला कलाकारों की भूमिका का अध्ययन करना।

2. शास्त्रीय संगीत में महिला गायिकाओं एवं वादिकाओं के योगदान का विश्लेषण करना।

3. लोक एवं उपशास्त्रीय संगीत में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।

4. फिल्म एवं सुगम संगीत के विकास में महिलाओं के योगदान को रेखांकित करना।

5. संगीत शिक्षा एवं शोध में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।

6. महिला कलाकारों के समक्ष उपस्थित सामाजिक एवं व्यावसायिक चुनौतियों का अध्ययन करना।

7. वर्तमान समय में महिलाओं के लिए संगीत क्षेत्र में उपलब्ध अवसरों का विश्लेषण करना।

4. अनुसंधान पद्धति–

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

प्राथमिक स्रोतों में कलाकारों के साक्षात्कार, संगीत शिक्षकों एवं विशेषज्ञों से बातचीत, प्रश्नावली, प्रत्यक्ष अवलोकन तथा संगीत प्रस्तुतियों का अध्ययन शामिल है।

द्वितीयक स्रोतों में संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ, शोध पत्र, शोध प्रबन्ध, संगीत पत्रिकाएँ, कलाकारों की आत्मकथाएँ, संस्थागत अभिलेख तथा विश्वसनीय डिजिटल स्रोत शामिल हैं।

5. भारतीय संगीत में महिलाओं की ऐतिहासिक भूमिका–

भारतीय संगीत की परम्परा में महिलाओं की उपस्थिति को केवल आधुनिक काल से जोड़ना उचित नहीं है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में संगीत एवं कला के क्षेत्र में स्त्री की उपस्थिति विभिन्न रूपों में दिखाई देती है।

मध्यकाल एवं उसके बाद दरबारी तथा लोक–सांस्कृतिक परम्पराओं में अनेक महिलाओं ने गायन एवं नृत्य के माध्यम से संगीत को जीवित रखा।

आधुनिक संगीत शिक्षा संस्थानों, आकाशवाणी, ग्रामोफोन रिकॉर्डिंग, संगीत सम्मेलनों और विश्वविद्यालयों के विकास के साथ महिलाओं को सार्वजनिक मंच पर नए अवसर प्राप्त हुए।

6. शास्त्रीय गायन में महिला कलाकारों की भूमिका–

एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी ने कर्नाटक संगीत को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

किशोरी अमोनकर ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन में राग की भावात्मक अभिव्यक्ति, स्वर की सूक्ष्मता तथा व्यक्तिगत सृजनात्मकता को विशेष पहचान दी।

गिरिजा देवी ने बनारस अंग की ठुमरी को व्यापक प्रतिष्ठा दिलाई और दादरा, कजरी तथा चौती जैसी विधाओं को लोकप्रिय बनाया।

प्रभा अत्रे ने गायन के साथ संगीत शिक्षा एवं लेखन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

7. शास्त्रीय वादन में महिला कलाकारों की भूमिका–

वाद्य संगीत को लम्बे समय तक पुरुष–प्रधान क्षेत्र माना जाता रहा।

इसके बावजूद महिलाओं ने सितार, सरोद, वायलिन, तबला तथा अन्य वाद्यों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

अन्नपूर्णा देवी भारतीय वाद्य संगीत एवं गुरु–शिष्य परम्परा की अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थीं और उन्होंने अनेक शिष्यों को प्रशिक्षित किया।

एन. राजम ने वायलिन वादन को हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रभावशाली माध्यम बनाया।

8. लोक संगीत में महिला कलाकारों की भूमिका –

लोक संगीत भारतीय समाज के दैनिक जीवन, संस्कारों, उत्सवों, ऋतु–परिवर्तन, धार्मिक आस्था और सामुदायिक अनुभवों से जुड़ा हुआ है।

विवाह गीत, सोहर, कजरी, चौती, सावन गीत, होली गीत, देवी गीत और अन्य लोक विधाओं को पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाने में महिलाओं का विशेष योगदान रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ लोकगीतों की मौखिक परंपरा की प्रमुख संवाहक रही हैं।

9. उपशास्त्रीय एवं भक्ति संगीत में महिलाओं की भूमिका–

ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, भजन तथा अन्य उपशास्त्रीय एवं भक्तिपरक संगीत विधाओं में महिला कलाकारों का विशेष योगदान रहा है।

महिला कलाकारों ने इन विधाओं के माध्यम से प्रेम, भक्ति, विरह, प्रकृति तथा सामाजिक अनुभवों को प्रभावशाली स्वर प्रदान किया।

10. फिल्म संगीत में महिला कलाकारों की भूमिका–

भारतीय फिल्म संगीत के विकास में महिला कलाकारों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

लता मंगेशकर ने भारतीय फिल्म संगीत में स्वर की शुद्धता, भाव–अभिव्यक्ति और गायन की विशिष्ट शैली के माध्यम से एक नया मानदण्ड स्थापित किया।

आशा भोसले ने विविध प्रकार के संगीत में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया।

वर्तमान समय में महिला संगीतकार, गीतकार, संगीत निर्देशक, निर्माता एवं स्वतंत्र कलाकार भी सक्रिय हैं।

11. संगीत शिक्षा में महिलाओं की भूमिका–

संगीत शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, संगीत संस्थानों एवं निजी प्रशिक्षण केन्द्रों में महिलाएँ शिक्षक एवं गुरु के रूप में कार्य कर रही हैं।

महिला शिक्षिकाएँ तकनीकी संगीत ज्ञान के साथ विद्यार्थियों में अनुशासन, मंचीय आत्मविश्वास, सांस्कृतिक चेतना एवं रचनात्मकता विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

12. संगीत अनुसंधान में महिलाओं की भूमिका –

आधुनिक समय में महिलाओं की भागीदारी संगीत अनुसंधान के क्षेत्र में भी बढ़ी है।

महिला शोधकर्ता भारतीय संगीत के इतिहास, संगीतशास्त्र, लोक संगीत, वाद्य विज्ञान, संगीत मनोविज्ञान, संगीत शिक्षा तथा प्रदर्शन अध्ययन जैसे विषयों पर शोध कर रही हैं।

शोध के माध्यम से महिला कलाकारों एवं संगीत परंपराओं का दस्तावेजीकरण संभव हो रहा है।

13. महिला कलाकारों के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ–

प्रमुख चुनौतियों में पारिवारिक एवं सामाजिक प्रतिबन्ध, मंचीय अवसरों में असमानता, आर्थिक असुरक्षा, प्रशिक्षण सुविधाओं तक असमान पहुँच, पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण पेशेवर निरन्तरता में बाधा, ग्रामीण क्षेत्रों में अवसरों की कमी, महिला वादकों को लेकर पारंपरिक धारणाएँ तथा डिजिटल एवं व्यावसायिक संगीत उद्योग में प्रतिस्पर्धा शामिल हैं।

14. आधुनिक तकनीक और महिला कलाकार –

डिजिटल युग ने महिला कलाकारों के लिए नए अवसर उत्पन्न किए हैं।

सोशल मीडिया, ऑनलाइन संगीत शिक्षा, डिजिटल रिकॉर्डिंग, स्वतंत्र संगीत मंच तथा वीडियो प्लेटफॉर्म के माध्यम से कलाकार अपने कार्य को सीधे श्रोताओं तक पहुँचा सकती हैं।

इससे पारम्परिक संस्थागत संरचनाओं पर निर्भरता कुछ हद तक कम हुई है।

15. महिला सशक्तीकरण और संगीत–

संगीत महिलाओं के सशक्तीकरण का प्रभावी माध्यम बन सकता है।

संगीत के माध्यम से महिलाओं को आत्मविश्वास, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक पहचान तथा रचनात्मक अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता है।

एक महिला कलाकार की सफलता आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है।

16. विश्लेषण एवं चर्चा–

महिला कलाकारों का योगदान संगीत के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। उन्होंने गायन, वादन, लोक संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, भक्ति संगीत, फिल्म संगीत, संगीत शिक्षा, अनुसंधान और संगीत निर्देशन तक अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराई है।

उनकी भूमिका कलाकार से आगे बढ़कर गुरु, शोधकर्ता, शिक्षिका, रचनाकार और सांस्कृतिक संरक्षक के रूप में विकसित हुई है।

17. निष्कर्ष–

भारतीय संगीत के विकास में महिला कलाकारों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं बहुआयामी रही है।

उन्होंने कठिन सामाजिक परिस्थितियों के बावजूद संगीत साधना को अपना जीवन समर्पित किया और विभिन्न संगीत विधाओं को समृद्ध किया।

एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी, किशोरी अमोनकर, गिरिजा देवी, प्रभा अत्रे, अन्नपूर्णा देवी, एन. राजम, लता मंगेशकर और आशा भोसले जैसी कलाकारों ने अपने–अपने क्षेत्रों में

विशिष्ट पहचान बनाई।

वर्तमान समय में महिलाएँ संगीत शिक्षक, प्रोफेसर, शोधकर्ता, संगीतकार, निर्देशक और सांस्कृतिक आयोजक के रूप में भी सक्रिय हैं।

अतः भारतीय संगीत के विकास, संरक्षण, संवर्धन और आधुनिकीकरण में महिला कलाकारों की भूमिका अविस्मरणीय है।

18. सुझाव –

☛ महिला कलाकारों के लिए विशेष संगीत प्रशिक्षण एवं शोध योजनाएँ विकसित की जाएँ।

☛ संगीत संस्थानों में महिला कलाकारों के योगदान पर नियमित संगोष्ठियाँ आयोजित की जाएँ।

☛ महिला वादकों एवं लोक कलाकारों के कार्य का डिजिटल दस्तावेजीकरण किया जाए।

☛ ग्रामीण क्षेत्र की प्रतिभाशाली बालिकाओं को छात्रवृत्ति एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए।

☛ महिला कलाकारों के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर समान अवसर सुनिश्चित किए जाएँ।

19. संदर्भ ग्रंथ एवं संदर्भ सामग्री

1. भातखण्डे, विष्णु नारायण – हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति।
2. शारंगदेव – संगीत रत्नाकर।
3. मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत वाद्य।
4. शर्मा, प्रेमलता – भारतीय संगीत एवं संगीतशास्त्र सम्बन्धी लेखन।
5. Raghavan] V- – Indian Music.
6. Bagchee] S- – Nad: Understanding Raga Music.
7. Sangeet Natak Akademi (Ministry of Culture) Government of India – Awards and Honours.
8. Niranjana (Tejaswini & Deo) Aditi - Crafting Lives in Music : Women Vocalists in Early 20th & Century Bombay - Indian Journal of Gender Studies (Vol.- 32) Issue - 3, 2025, pp- 338–361- ।

◈◈

सुपर प्रकाशन

(विश्वविद्यालय स्तरीय लाइब्रेरी पुस्तकों के प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

हम पुस्तकों को स्पष्ट शब्द सज्जा, डिजाइन एवं उत्तम कोटि की छपाई व अत्याधुनिक बाइंडिंग के साथ प्रकाशित करते हैं। विभागाध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रवक्ता, कवि, लेखक, रचनाकार - कहानीकार अपने संस्मरण, गीत, ग़ज़ल एवं कृतियाँ या अन्य किसी भी विधा पर उत्कृष्ट ग्रन्थ अथवा रिसर्च स्कालर (शोध कर्ता) थीसिस प्रकाशन हेतु तैयार हो तो मूल प्रति (Script) भेजकर एक माह में ही अपनी प्रति को पुस्तक के आकार में प्राप्त करें।

सुपर प्रकाशन देश-विदेश के समस्त शिक्षा जगत् से जुड़े डिग्री कालेजों (Higher Education) में यू जी सी के द्वारा उपलब्ध निर्धारित मानकों के अनुसार नेशनल एवं इन्टरनेशनल पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल में अपने शोध लेख (Research Paper) को **'दि गुँजन'** एवं **'अभिनव गवेषणा'** (**मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल**) के द्वारा प्रकाशित कराने का अवसर उपलब्ध कराता है।

सुपर प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य - कला संकाय, कामर्स संकाय एवं विज्ञान संकाय तीनों फैकल्टी की पुस्तकों एवं इनसाइक्लोपीडिया का प्रकाशन एवं विक्रय विश्वविद्यालय लाइब्रेरी स्तर पर किया जाता है। हमें एक बार सेवा का अवसर अवश्य प्रदान करें।

- सर्वेश तिवारी 'राजन'

(प्रबन्ध संपादक - 'दि गुँजन' एवं 'अभिनव गवेषणा'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश)

मो0- 09335597658, 08896244776 E-mail:super.prakashan@gmail.com

ISSN : 2394-4366
Received: 15 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

झुन्झुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं की जनसहभागिता एवं लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व : एक राजनीतिक अध्ययन

– प्रवीण चौधरी
शोध छात्र –
राजनीति विज्ञान विभाग,
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर–303122 (राजस्थान)

Email :
pcchoudhary20599@gmail.com

सार

भारत में लोकतंत्र की सफलता केवल संसद एवं विधानसभाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की प्रभावशीलता पर भी निर्भर करती है। पंचायती राज संस्थाएँ लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का सबसे सशक्त माध्यम रही है, जिनके द्वारा ग्रामीण नागरिकों को शासन एवं विकास प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर प्राप्त होता है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देकर स्थानीय लोकतंत्र को नई दिशा प्रदान की। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक सहभागिता, सामाजिक न्याय, महिला–सशक्तिकरण तथा उत्तरदायी शासन को बढ़ावा मिला है।

राजस्थान देश का पहला राज्य रहा है जहाँ पर 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर से पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ हुआ। समय के साथ यह व्यवस्था पूरे राज्य में विकसित हुई और झुन्झुनूं जिला स्थानीय लोकतंत्र के प्रभावी क्रियान्वयन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बनकर उभरा। शेखावटी क्षेत्र का यह जिला शिक्षा, महिला भागीदारी, सामाजिक चेतना तथा राजनीतिक सक्रियता के लिए जाना जाता है। यहाँ की पंचायतें केवल सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन ही नहीं करती, बल्कि ग्राम सभा, सामाजिक अंकेक्षण, महिला नेतृत्व तथा स्थानीय निर्णय प्रक्रिया के माध्यम से लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को भी मजबूत करती है।

यह शोध–पत्र झुन्झुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं की जनसहभागिता एवं लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का राजनीतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है तथा इसमें शोध–पत्रों, आधिकारिक दस्तावेजों, सरकारी प्रतिवेदनों एवं पुस्तकों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पंचायतों ने स्थानीय लोकतंत्र को सुदृढ़ किया है, किन्तु ग्राम सभा की सक्रियता, वित्तीय स्वायत्तता, प्रशासनिक नियंत्रण तया डिजिटल क्षमता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान है।

मुख्य शब्द – पंचायती राज, जनसहभागिता, स्थानीय स्वशासन, लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, झुन्झुनूं, राजस्थान।

परिचय

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जहाँ लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप तभी सार्थक माना जाता है जब शासन व्यवस्था में प्रत्येक

नागरिक की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होती है। लोकतंत्र केवल प्रतिनिधियों के चुनाव तक सीमित नहीं है, बल्कि नागरिकों को नीति–निर्माण, संसाधनों के उपयोग, विकास योजनाओं के चयन तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व की निगरानी में भी भागीदारी प्रदान करता है। इसी विचार को साकार करने के लिए स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की स्थापना की गई है।

महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज की परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए कहा था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उनका मानना था कि जब तक ग्राम स्तर पर लोकतंत्र मजबूत नहीं होगा, तब तक राष्ट्रीय लोकतंत्र भी पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकता है। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के नीति–निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 40 में राज्य को ग्राम पंचायतों के संगठन एवं उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में विकसित करने का निर्देश दिया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु यह अनुभव किया गया कि केंद्रीकृत प्रशासन स्थानीय समस्याओं का समुचित समाधान करने में सक्षम नहीं रहा है। इसी कारण बलवंत राय मेहता समिति (1957), अशोक मेहता समिति (1978), जी.वी.के. राव समिति (1985) तथा एल.एम. सिंहवी समिति (1986) ने पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त बनाने की अनुशंसा की है। इन सिफारिशों के परिणामस्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 को लागू किया गया, जिससे पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ।

राजस्थान ने पंचायती राज व्यवस्था के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। राजस्थान राज्य में 2 अक्टूबर, 1959 को सर्वप्रथम नागौर जिले में उसकी औपचारिक शुरुआत हुई। इसके बाद भारत के सभी राज्यों में एवं राजस्थान के सभी जिलों में पंचायतों की स्थापना की गई और उन्हें ग्रामीण विकास की प्रमुख इकाई बनाया गया।

झुन्झुनूं जिला शेखावटी क्षेत्र का एक प्रमुख जिला है। यह जिला शिक्षा, सैनिक परंपरा, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक चेतना तथा लोकतांत्रिकसहभागिता के लिए जाना जाता है। यहाँ की पंचायतों ने ग्रामीण विकास के साथ–साथ नागरिक भागीदारी एवं पारदर्शिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व को भी प्रोत्साहित किया है। इसलिए राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से झुन्झुनूं जिले का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि –

भारतीय लोकतंत्र में पंचायती राज संस्थाएँ केवल प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक संस्कृति को ग्राम स्तर तक विकसित करने का माध्यम भी रही है। स्थानीय शासन की प्रभावशीलता इस बात निर्भर करती है कि नागरिक निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में कितनी सक्रियता से भाग लेते हैं तथा निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के प्रति कितने उत्तरदायी रहे हैं।

झुन्झुनूं जिले का सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण इस अध्ययन को विशेष महत्व प्रदान करता है। यह जिला महिला शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, राजनीतिक सक्रियता तथा उच्च साक्षरता के लिए जानाजाता है। पंचायत चुनावों मे मतदाताओं की भागीदारी तथा महिलाओं एवं युवाओं की बढ़ती राजनीतिक उपस्थिति स्थानीय लोकतंत्र को नई दिशा प्रदान करती है।

झुन्झुनूं जिले की पंचायतें जल जीवन मिशन, स्वच्छ भारत मिशन, मनरेगा, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) तथा अन्य विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्राम सभाओं के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कार्यों का चयन किया जाता है तथा सामाजिक अंकेक्षण द्वारा सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग की निगरानी की जाती है।

हालांकि पंचायतों की उपलब्धियों के साथ–साथ अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान रही है। वित्तीय संसाधनों की कमी, ग्राम सभा में असमान सहभागिता, राजनीतिक हस्तक्षेप, प्रशासनिक निर्भरता तथा तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव जैसी समस्याएँ स्थानीय लोकतंत्र की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है। इन परिस्थितियों में झुन्झुनूं जिले का अध्ययन स्थानीय लोकतंत्र की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण करने के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है।

अध्ययन की समस्या –

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का उद्देश्य केवल प्रशासनिक विकेंद्रीकरण नहीं रहा, बल्कि लोकतंत्र को ग्राम स्तर तक पहुँचाना है। 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ, जिससे यह

अपेक्षा की गई कि स्थानीय स्तर पर नागरिकों की भागीदारी बढ़ेगी, निर्णय प्रक्रिया अधिक पारदर्शी होगी तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों की जनता के प्रति जवाबदेही मजबूत होगी। यद्यपि संवैधानिक प्रावधानों ने पंचायतों को अधिकार प्रदान किए है, फिर भी विभिन्न क्षेत्रों में इनकी प्रभावशीलता समान नहीं रही है।

राजस्थान पंचायती राज व्यवस्था का अग्रणी राज्य रहा है। झुन्झुनूं जिला शिक्षा, राजनीतिक सक्रियता तथा सामाजिक जागरूकता के लिए प्रसिद्ध है। इसके बावजूद यह जानना आवश्यक है कि क्या पंचायतें वास्तव में लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को मजबूत कर रही है? क्या ग्राम सभा केवल औपचारिक संस्था तो बनकर नहीं रह गई है या वह निर्णय प्रक्रिया में भी वास्तविक भूमिका निभाती है?क्या महिला एवं आरक्षित वर्ग के प्रतिनिधियों की भागीदारी केवल संवैधानिक व्यवस्था तक सीमित है या उन्होंने स्थानीय शासन में प्रभावी नेतृत्व स्थापित किया है?

इन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के उद्देश्य से यह अध्ययन झुंझुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं की जनसहभागिता एवं लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का राजनीतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य–

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :–

(i) झुंझुनूं जिले की पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना।

(ii) पंचायतों में लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व की स्थिति का मूल्यांकन करना।

(iii) पंचायतों के समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना।

(iv) स्थानीय लोकतंत्र को अधिक प्रभावी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

(v) स्थानीय शासन में जनसहभागिता की प्रकृति एवं स्तर का विश्लेषण करना।

(vi) ग्राम सभा की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

(vii) महिला एवं वंचित वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विश्लेषण करना।

शोध प्रश्न–

इस अध्ययन में निम्नलिखित शोध प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है–

(I) क्या जनसहभागिता ग्रामीण विकास योजनाओं की गुणवत्ता को प्रभावित करती है?

(ii) क्या झुंझुनूं जिले की पंचायतें लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को प्रभावी रूप से स्थापित कर रही है?

(iii) महिला नेतृत्व का पंचायतों की कार्यप्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ा है?

(iv) पंचायतों की प्रभावशीलता में प्रमुख बाधाएँ कौन–सी है?

(v) ग्राम सभा स्थानीय लोकतंत्र को कितना सशक्त बना रही है?

शोध पद्धति–

यह अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक – विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

अध्ययन के लिए द्वितीयक स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। इनमें जिला सांख्यिकीपुस्तिका (झुंझुनूं), शोध–पत्र, संविधान सम्बन्धी सामग्री, सरकारी अधिनियम, राजनीतिक विज्ञान की मानक पुस्तकें, राजस्थान सरकार के दस्तावेज तथा पंचायती राज मंत्रालय की रिपोर्टें सम्बन्धी सामग्री सम्मिलित हैं।

संकलित तथ्यों का व्याख्यात्मक, तुलनात्मक तथा राजनीतिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य केवल पंचायतों के कार्यों का विवरण देना नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व एवं जनसहभागिता की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन करना है।

साहित्य समीक्षा–

पंचायती राज संस्थाओं पर उपलब्ध साहित्य यह स्पष्ट करता है कि स्थानीय स्वशासन भारतीय लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है। प्रारम्भिक अध्ययनों में पंचायतों को ग्रामीण विकास की प्रशासनिक इकाई माना गया, जबकि आधुनिक अध्ययनों में उनको लोकतांत्रिक सहभागिता, सामाजिक न्याय और सुशासन के दृष्टिकोण से देखा गया है।

• **एस.आर. महेश्वरी (2021)** ने स्थानीय स्वशासन को लोकतंत्र की आधारशिला बताते हुए कहा कि पंचायतों की सफलता केवल संवैधानिक अधिकारों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि नागरिकों की सक्रिय भागीदारी एवं प्रशासनिक पारदर्शिता पर भी आधारित होती है।

• **बी. एल. फाडिया एवं कुलदीप फाडिया (2022)** के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था ने भारतीय

लोकतंत्र को ग्राम स्तर तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किन्तु वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता अभी भी प्रमुख चुनौती बनी हुई है।

• **जॉर्ज मैथ्यू (2000)** ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि 73वें संविधान संशोधन ने पंचायतों की संवैधानिक स्थिति को मजबूत किया, परन्तु वास्तविक विकेंद्रीकरण राज्यों की राजनीतिक इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है।

• **आर. के. अरोड़ा एवं महेश दूजा (2013)** ने राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था का अध्ययन करते हुए पाया कि ग्राम सभा की सक्रियता स्थानीय लोकतंत्र की गुणवत्ता निर्धारित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

महिला नेतृत्व पर किए गए नवीन अध्ययनों में यह निष्कर्ष सामने आया है कि पंचायतों में आरक्षण ने महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाया है, किन्तु प्रभावी नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण एवं संस्थागत सहयोग आवश्यक है।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि झुंझुनूं जिले में लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व एवं जनसहभागिता पर केन्द्रित राजनीतिक अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है। यही इस शोध की मौलिकता एवं आवश्यकता को सिद्ध करता है।

झुंझुनूं जिले काराजनीतिक एवं प्रशासनिक परिदृश्य–

झुंझुनूं जिला राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र का एक प्रमुख जिला है, जिसने सामाजिक चेतना, शिक्षा तथा लोकतांत्रिक भागीदारी के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाई है। यह जिला केवल आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि राजनीतिक रूप में भी अत्यंत सक्रिय माना जाता है।

जिले में ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियाँ तथा जिला परिषद स्थानीय प्रशासन की प्रमुख इकाइयाँ हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा तथा रोजगार कार्यक्रम, कृषि शिक्षा, महिला एवं बाल विकास कार्यक्रमों का संचालन किया जाता है। झुंझुनूं जिले की विशेषता यह है कि यहाँ नागरिकों की राजनीतिक जागरुकता अपेक्षाकृत अधिक है। पंचायत चुनावों में महिलाओं, युवाओं तथा सामाजिक रूप से वंचित वर्गों की सक्रिय भागीदारी स्थानीय लोकतंत्र को और अधिक समावेशी बनाती है। ग्राम सभा की बैठकों में विकास कार्यों, बजट तथा सार्वजनिक योजनाओं पर चर्चा की परंपरा स्थानीय उत्तरदायित्व को मजबूत करती है।

हालाँकि विभिन्न पंचायतों में जनसहभागिता का स्तर समान नहीं है। कुछ ग्राम पंचायतों में ग्राम सभा अत्यंत सक्रिय है, जबकि कुछ स्थानों पर नागरिकों की उपस्थिति सीमित रहती है। यह अंतर स्थानीय नेतृत्व, सामाजिक जागरूकता तथा प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर करता है।

झुंझुनूं जिले में जनसहभागिता एवं लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का राजनीतिक विश्लेषण–

लोकतंत्र की सफलता केवल चुनाव कराने से ही सुनिश्चित नहीं होती, बल्कि यह इस बात पर निर्भर करती है कि नागरिक शासन की निर्णय प्रक्रिया में कितनी सक्रिय भागीदारी निभाते है। पंचायती राज व्यवस्था इसी लोकतांत्रिक दर्शन पर आधारित है। झुंझुनूं जिले में जनसहभागिता का स्वरूप अपेक्षाकृत सशक्त दिखाई देता है, क्योंकि यहाँ सामाजिक जागरूकता, शिक्षा का स्तर तथा सार्वजनिक जीवन में सहभागिता अन्य अनेक ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक है।

ग्राम सभा स्थानीय लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। झुंझुनूं जिले में ग्राम सभाएँ विकास योजनाओं की प्राथमिकता निर्धारित करने, पंचायत बजट पर चर्चा करने, सामाजिक अंकेक्षण तथा लाभार्थियों के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जहाँ ग्राम सभा नियमित एवं सक्रिय रहती है, वहाँ पंचायतों के निर्णय अधिक पारदर्शी एवं जनहितकारी पाए जाते है।

दूसरी ओर, जिन पंचायतों में ग्राम सभा औपचारिकता तक सीमित रह जाती है, वहाँ नागरिकों की भागीदारी भी कम दिखाई देती है।

राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से जनसहभागिता केवल मतदान तक सीमित नहीं होती। झुंझुनूं जिले में नागरिक पंचायतों के कार्यों की निगरानी, सामाजिक अंकेक्षण, महिला स्वयं सहायता समूहों, विकास योजनाओं के सुझाव, स्वच्छता अभियान, जल संरक्षण तथा युवा संगठनों के माध्यम से स्थानीय शासन में योगदान देते हैं। इससे लोकतांत्रिक संस्कृति को मजबूती मिलती है। डिजिटल प्रशासन के विस्तार ने भी पंचायतों की पारदर्शिता को बढ़ाने में योगदान दिया है। सार्वजनिक सूचना पट्ट, ई–ग्राम स्वराज, ऑनलाइन भुगतान प्रणाली

तथा डिजिटल अभिलेखों के कारण पंचायतों की जवाबदेही पहले की तुलना में अधिक मजबूत हुई है। इससे नागरिकों को पंचायतों के कार्यों एवं व्यय की जानकारी प्राप्त करने में सुविधा हुई है।

महिला नेतृत्व एवं सामाजिक समावेशन–

73वें संविधान संशोधन के बाद महिलाओं को पंचायतों में आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे स्थानीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन आया। झुंझुनूं जिले में महिला प्रतिनिधियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अनेक महिला सरंपचों एवं पंचों ने स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, महिला सुरक्षा, पोषण तथा पेयजल जैसे विषयों को पंचायतों की प्राथमिकताओं में शामिल किया है।

महिलाओं की भागीदारी ने निर्णय प्रक्रिया को अधिक संवेदनशील एवं समावेशी बनाया है। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जाति एवं अनुसूचितजनजाति वर्गों के लिए आरक्षण ने सामाजिक न्याय की दिशा में सकारात्मक प्रभाव से गति दी है। इससे पंचायतों में विविध सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व बढ़ा और लोकतांत्रिक शासन अधिक समावेशी बना है।

फिर भी कुछ स्थानों पर प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण की कमी तथा पारिवारिक हस्तक्षेप जैसी समस्याएँ प्रभावी नेतृत्व के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। इसलिए क्षमता विकास कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावी बनाने आवश्यकता है।

झुंझुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ–

अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियाँ सामने आती हैं–

(i) राजनीतिक ध्रुवीकरण : स्थानीय स्तर पर राजनीतिक प्रतिस्पर्धा कई बार विकास कार्यों की प्राथमिकताओं को प्रभावित करती है।

(ii) ग्राम सभा में असमान भागीदारी : सभी पंचायतों में ग्राम सभा समान रूप से सक्रिय नहीं है, जिससे लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व प्रभावित होता है।

(iii) प्रतिनिधियों का अपर्याप्त प्रशिक्षण : नए निर्वाचित प्रतिनिधियों को वित्तीय, प्रशासनिक एवं कानूनी प्रक्रियाओं का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिल पाता।

(iv) सीमित वित्तीय स्वायत्तताः पंचायतों के स्वयं के राजस्व स्त्रोत सीमित है, जिसके कारण वे सरकारी अनुदानों पर अधिक निर्भर रहती है।

(v) तकनीकी संसाधनों का अभावः डिजिटल सेवाओं के विस्तार के बावजूद कई पंचायतों में तकनीकी सुविधाएँ एवं डिजिटल दक्षता सीमित है।

(vi) प्रशासनिक नियंत्रण : अनेक निर्णयों के लिए उच्च अधिकारियों की स्वीकृति आवश्यक होने से स्थानीय स्वायत्तता प्रभावित होती है।

सुझाव–

झुंझुनूं जिले में पंचायती राज संस्थाओं को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं –

(i) पंचायतों एवं जिला प्रशासन के बीच समन्वय बढ़ाया जाए।

(ii) ई–गवर्नेंस एवं डिजिटल पंचायत व्यवस्था का विस्तार किया जाए।

(iii) पंचायतों को अधिक वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की जाए।

(iv) स्थानीय स्तर पर नागरिक जागरूकता अभियान चलाकर जनसहभागिता को प्रोत्साहित किया जाए।

(v) पंचायत प्रतिनिधियों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

(vi) महिलाओं एवं युवाओं के नेतृत्व विकास हेतु विशेष कार्यक्रम चलाए जाएँ।

(vii) सामाजिक अंकेक्षण को अधिक प्रभावी बनाया जाएँ।

(viii) ग्राम सभा की नियमित एवं प्रभावी बैठकें सुनिश्चित की जाएँ।

निष्कर्ष–

झुंझुनूं जिले का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि पंचायती राज सस्थाएँ स्थानीय लोकतंत्र को मजबूत करने का प्रभावी माध्यम है। पंचायतों ने ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय, नागरिक सहभागिता तथा महिला सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान की है। ग्राम सभा, सामाजिक अंकेक्षण तथा पारदर्शी प्रशासन जैसी व्यवस्थाओं ने लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ किया है।

फिर भी प्रशासनिक नियंत्रण, तकनीकी सीमाएँ, वित्तीय निर्भरता तथा असमान जनसहभागिता जैसी

चुनौतियाँ अभी भी मौजूद है। यदि पंचायतों को पर्याप्त अधिकार, प्रशिक्षण, तकनीकी सहयोग तथा संसाधन उपलब्ध कराया जाए तो वे ग्रामीण भारत में सुशासन, उत्तरदायित्व एवं सहभागी लोकतंत्र की सबसे प्रभावी संस्थाएँ बन सकती है।

झुंझुनूं जिले का अनुभव यह दर्शाता है कि स्थानीय लोकतंत्र की सफलता केवल संवैधानिक प्रावधानों पर नहीं, बल्कि नागरिकों की सक्रिय भागीदारी, पारदर्शी प्रशासन, उत्तरदायी शासन तथा सक्षम नेतृत्व पर निर्भर करती है। यही इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kumar, C.S., & Sharma, M. (2023). Realisation of Sustainable Development Goals Through Panchayati Raj Institutions. Indian Journal of Public Administration, 69 (4), 877-902.
2. Ministry of Panchayati Raj (2024). National Panchayat Awards : Best Practices of Awardee Panchayats and Institutions. Government of India.
3. Maheshwari, S.R. (2021). Local Government in India (9th ed.). Orient Black Swan.
4. Ministry of Panchayati Raj. (2024). Annual Report 2023-24. Government of India.
5. Mathew, G. (Ed.). (2000). Status of Panchayati Raj in the States of India. Concept Publishing Company.
6. Arora, R.K., & Hooja, M. (2013). Panchayati Raj. Participation and Decentralization. Rawat Publications.
7. Constitution of India (2024). The Constitution of India (Part IX : Articles 243-243O). Ministry of Law and Justice.
8. Bhargava, B.S. (1979). Panchayati Raj System and Political Parties. Ashish Publishing House.
9. Fadia, B.L., & Fadia, K. (2022). Indian Government and Politics (18th ed.). Sahitya Bhawan Publications.
10. Mishra, S.N. (1986). Panchayati Raj, Bureaucracy and Rural Development. Indian Institute of Public Administration.
11. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). District Census Handbook : Jhunjhunu, Rajasthan. Government of India.
12. Singh, K. (2009). Rural Development: Principles, Policies and Management (4th ed.). Sage Publications.
13. Mathew, G. (2014). Status of Panchayati Raj in the States and Union Territories of India. Asia-Pacific Journal of Rural Development, 24 (2), 103-120.
14. Government of Rajasthan. (1994). The Rajasthan Panchayati Raj Act, 1994 (as amended). Government of Rajasthan.
15. Government of Rajasthan. (2024). Rajasthan Economic Review 2023-2024. Directorate of Economics and Statistics.

ABHINAV GAVESHNA

Multi Displinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

I.S.S.N. : 2394-4366

(Multi Displinary Quareterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal)

(in Multi Language: Hindi + English + Sanskrit)

`Abhinav Gaveshna'

Sector-K-444, `Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027 (U.P.)

Contact- 08896244776, 09335597658,

E-mail: mohittrip@gmail.com

Visit us : www:abhinavgaveshna.com, thegunjan.com

ISSN : 2394-4366

Received: 21 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन : भारत की विदेश नीति के विशेष संदर्भ में

– राहुल कुमार झाझड़िया
शोध छात्र –
राजनीति विज्ञान विभाग,
ज्योति विद्यापीठ महिला
विश्वविद्यालय, जयपुर – 303122
(राजस्थान)

Email-
Rahuljat1397@gmail.com

सार

फरवरी 2022 में प्रारम्भ हुए रूस–यूक्रेन युद्ध ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा सुरक्षा व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न किए। इस संघर्ष ने वैश्विक शक्ति संतुलन, खाद्य आपूर्ति, रक्षा सहयोग, ऊर्जा सुरक्षा तथा बहुपक्षीय संस्थाओं की भूमिका पर गंभीर प्रभाव डाला है। इस बदलते अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि वह अपने पारम्परिक रणनीतिक सहयोगी देश रूस के साथ सम्बन्धों को बनाए रखते हुए अमेरिका, यूरोपीय संघ तथा अन्य प्रमुख शक्तियों के साथ भी संतुलित सम्बन्धों को बनाए रखा। भारत ने इस अवधि में अपनी विदेश नीति का संचालन किसी गुट विशेष के प्रभाव में न होकर राष्ट्रीय हित, रणनीतिक स्वायत्तता तथा व्यावहारिक कूटनीति के आधार पर किया।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य रूस–यूक्रेन युद्ध के पश्चात् भारत–रूस सम्बन्धों के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करना तथा भारत की विदेश नीति पर उसके प्रभाव का मूल्यांकन करना है। अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, जिसमें पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, विदेश मंत्रालय के दस्तावेजों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशित साहित्य का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों में निरन्तरता बनी रही, परन्तु इनका स्वरूप अधिक यथार्थवादी, बहुआयामी तथा राष्ट्रीय हितों पर आधारित हो गया। भारत ने ऊर्जा सुरक्षा, रक्षा सहयोग, आर्थिक हितों तथा वैश्विक कूटनीति के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया है।

मुख्य शब्द – भारत–रूस सम्बन्ध, रूस–यूक्रेन युद्ध, बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था, रणनीतिक स्वायत्तता, ऊर्जा सुरक्षा, भारत की विदेश नीति।

प्रस्तावना–

21वीं शताब्दी का तीसरा दशक अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में तीव्र परिवर्तन का काल माना जा रहा है। तकनीकी विकास, नई सुरक्षा चुनौतियाँ, वैश्वीकरण तथा परस्पर आर्थिक निर्भरता ने विश्व राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति को बदल दिया है। इसी बीच रूस–यूक्रेन युद्ध ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन में एक नया अध्याय जोड़ दिया। इस युद्ध ने न केवल यूरोप की सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि वैश्विक शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, विदेश नीतियों तथा ऊर्जा बाजार को भी पुर्नपरिभाषित किया।

भारत और रूस के सम्बन्ध ऐतिहासिक रूप से विश्वास, सहयोग और सामरिक साझेदारी पर आधारित रहे है। शीत युद्ध के समय से लेकर वर्तमान तक दोनों देशों ने रक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, परमाणु अर्जा तथा

कूटनीति के क्षेत्रों में घनिष्ठ सहयोग विकसित किया है। वर्ष 2000 में स्थापित ''विशेष एवं विशेषाधिकार प्राप्त सामरिक साझेदारी'' ने इन सम्बन्धों को नई मजबूती प्रदान की है। उसके बाद ब्रह्मोस मिसाइल परियोजना, कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा परियोजना, S–400 वायु रक्षा प्रणाली तथा संयुक्त सैन्य अभ्यास इस सहयोग के प्रमुख उदाहरण बने।

फरवरी, 2022 में रूस द्वारा यूक्रेन के विरुद्ध सैन्य अभियान प्रारम्भ किए जाने के बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले। पश्चिमी देशों ने रूस पर आर्थिक एवं वित्तीय प्रतिबन्ध लगा दिये, जिससे वैश्विक ऊर्जा बाजार, खाद्यान्न आपूर्ति तथा व्यापारिक व्यवस्था प्रभावित हुई।इस स्थिति में भारत के समक्ष यह चुनौती उत्पन्न हुई कि वह अपने पारम्परिक सहयोगी रूस के साथ संबंधों को बनाए रखते हुए पश्चिमी देशों के साथ विकसित हो रहे रणनीतिक सम्बन्धों को भी संतुलित रखे।

भारत ने इस संकट के दौरान किसी भी पक्ष का समर्थन या विरोध करने के बजाय शांतिपूर्ण समाधान, संवाद तथा कूटनीति पर बल दिया। संयुक्त राष्ट्र में भारत का मतदान व्यवहार, रूस से ऊर्जा आयात में वृद्धि तथा पश्चिमी देशों के साथ निरंतर सहयोग यह दर्शाता है कि भारत की विदेश नीति अब रणनीतिक स्वायत्तता पर आधारित है, जिसका उद्देश्य किसी भी शक्ति–गुट का अनुसरण करना नहीं बल्कि राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना है।

रूस–यूक्रेन युद्ध ने यह भी स्पष्ट किया कि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध केवल सैन्य शक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि ऊर्जा सुरक्षा, आपूर्ति श्रृंखला, आर्थिक स्थिरता, प्रौद्योगिकी तथा बहुपक्षीय संस्थाओं की भूमिका भी समान रूप से महत्वपूर्ण हो चुकी है। इस कारण भारत–रूस सम्बन्धों का अध्ययन केवल रक्षा सहयोग तक सीमित न होकर व्यापक राजनीतिक, आर्थिक, एवं कूटनीतिक संदर्भ में किया जाना आवश्यक है।

यह शोध–पत्र इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन करता है तथा यह विश्लेषण करता है कि बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत की विदेश नीति किस प्रकार राष्ट्रीय हितों, वैश्विक उत्तरदायित्व और रणनीतिक संतुलन के बीच सामंजस्य स्थापित करती है।

शोध समस्या–

रूस– यूक्रेन युद्ध ने विश्व राजनीति में शक्ति संतुलन, ऊर्जा सुरक्षा तथा वैश्विक कूटनीति के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। युद्ध के पश्चात् भारत के समक्ष यह चुनौती उत्पन्न हुई कि वह रूस के साथ अपने दीर्घकालिक रणनीतिक सम्बन्धों को बनाए रखते हुए पश्चिमी देशों के साथ अपने सहयोग को जारी कैसे रखे। इस अध्ययन की मूल समस्या यह है कि युद्धोत्तर परिस्थितियों में भारत–रूस सम्बन्धों की प्रकृति में क्या परिवर्तन आए है तथा भारत की विदेश नीति ने इस जटिल भू–राजनीतिक परिस्थिति में किस प्रकार संतुलन स्थापित किया है।

शोध के उद्देश्य–

(i) भारत–रूस रक्षा, ऊर्जा तथा आर्थिक सहयोग के प्रमुख आयामों का मूल्यांकन करना।

(ii) भविष्य में भारत–रूस सम्बन्धों की चुनौतियों एवं संभावनाओं का अध्ययन करना।

(iii) रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करना।

(iv) बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत–रूस सम्बन्धों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

(v) भारत की विदेश नीति पर युद्ध के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न–

(i) रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों की प्रकृति में क्या परिवर्तन हुए हैं?

(ii) युद्ध का भारत–रूस रक्षा, ऊर्जा, एवं आर्थिक सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा?

(iii) भारत–रूस सम्बन्धों के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ एवं अवसर कौन–कौन से हैं?

(iv) बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत–रूस सम्बन्धों का भविष्य क्या हो सकता है?

(v) भारत की विदेश नीति ने युद्धोत्तर परिस्थितियों में किस प्रकार रणनीतिक स्वायत्तता का प्रदर्शन किया?

शोध पद्धति–

प्रस्तुत शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा पूर्णतः द्वितीयक आँकडों पर आधारित है। इस अध्ययन का उद्देश्य रूस–यूक्रेन युद्ध के पश्चात भारत–रूस सम्बन्धों में आए सामरिक, कूटनीतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना तथा भारत की विदेश नीति पर पड़ने वाले उनके प्रभावों का मूल्यांकन

करना है।

इस शोध के लिए आवश्यक सामग्री विभिन्न प्राथमिक रूप से प्रकाशित द्वितीयक स्त्रोतों से संकलित की गई है। इस शोध में भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय एवं विदेश मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टें, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, शंघाई सहयोग संगठन से सम्बन्धित अधिकारिक प्रकाशन, विश्व बैंक, ब्रिक्स, संयुक्त राष्ट्र के अधिकारिक दस्तावेज, प्रतिष्ठित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शोध–पत्र, सहकर्मी–समीक्षित जर्नलों में प्रकाशित शोध लेख, संदर्भ पुस्तकें तथा स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट की रिपोर्टें इत्यादि सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में संकलित तथ्यों एवं आँकडों का तार्किक, निष्पक्ष एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है, जिससे शोध के निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठ बन सके।

शोध में 2022 से 2024 के मध्य रूस–यूक्रेन युद्ध के दौरान और उसके पश्चात् भारत–रूस सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों का क्रमबद्ध विश्लेषण किया गया है। संकलित सामग्री का विषय–वस्तु विश्लेषण, तुलनात्मकविश्लेषण तथा वर्णात्मक विश्लेषण के माध्यम से अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के दौरान भारत की विदेश नीति, ऊर्जा सुरक्षा, द्विपक्षीय व्यापार, बहुपक्षीय मंचों (BRICS, SCO एवं G20), रणनीतिक स्वायत्तता तथा रक्षा सहयोग में भारत–रूस के सहयोग का मूल्यांकन समग्र रूप से किया गया है।

साहित्य समीक्षा –

भारत–रूस सम्बन्धों पर उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि दोनों देशों के सम्बन्धों का आधार केवल रक्षा सहयोग नहीं, बल्कि ऐतिहासिक विश्वास, सामरिक साझेदारी, ऊर्जा सहयोग तथा बहुपक्षीय मंचों पर परस्पर सहयोग भी रहा है। तथापि, रूस–यूक्रेन युद्ध (2022) के बाद भारत–रूस सम्बन्धों पर केंद्रित शोध अभी भी अपेक्षाकृत सीमित है, विशेषकर भारत की विदेश नीति के संदर्भ में। यही इस अध्ययन की प्रमुख शोध–अन्तराल है।

- **Harsh V. Pant (2019)** के अनुसार– भारत की विदेश नीति अब पारंपरिक गुटनिरपेक्षता से आगे बढ़कर ''रणनीतिक स्वायत्तता'' पर आधारित हो गई है। उनके अनुसार भारत रूस के साथ अपने पारम्परिक सम्बन्धों को बनाए रखते हुए अमेरिका, जापान फ्रांस तथा अन्य देशों के साथ भी बहुआयामी सहयोग विकसित कर रहा है।

- **Strobe Talbott (2004)** ने भारत–रूस सम्बन्धों को दीर्घकालिक विश्वास पर आधारित साझेदारी बताया है। उनके अनुसार बदलती वैश्विक परिस्थितियों के बावजूद दोनों देशों के बीच राजनीतिक विश्वास बना रहेगा, क्योंकि यह सम्बन्ध केवल सामरिक हितों तक सीमित नहीं है।

- **Nandan Unnikrishnam (2023)** ने रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस आर्थिक सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए कहा कि ऊर्जा सहयोग ने दोनों देशों के सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि पश्चिमी प्रतिबंधों के बावजूद भारत और रूस ने वैकल्पिक व्यापारिक एवं वित्तीय तंत्र विकसित करने का प्रयास किया।

- **SIPRI (2024)** की रिर्पोट बताती है कि भारत ने रक्षा आयात में विविधीकरण अवश्य किया है, परन्तु रूस अभी भी भारत का प्रमुख रक्षा साझेदार बना हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों देशों के रक्षा सम्बन्धों का सामरिक महत्व अभी भी बना हुआ है।

- **Jaishankar (2020)** के अनुसार– भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना है। बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत किसी भी शक्ति–गुट का अनुसरण करने के बजाय स्वतंत्र निर्णय लेने की नीति पर बल देता है।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शोध रक्षा, ऊर्जा अथवा व्यापार के किसी एक पक्ष पर केन्द्रित है। बहुत कम अध्ययन ऐसे है जो रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों का भारत की विदेश नीति, रणनीतिक स्वायत्तता तथा बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के संदर्भ में समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करते हो। प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध–अन्तराल को भरने का प्रयास करता है।

रूस–यूक्रेन युद्ध की पृष्ठभूमि –

रूस–यूक्रेन के सम्बन्ध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त जटिल रहे है। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद यूक्रेन एक स्वतंत्र राष्ट्र बना। प्रारम्भिक वर्षों में दोनों देशों के सम्बन्ध सामान्य थे, किन्तु समय के साथ यूक्रेन की पश्चिमी देशों, विशेषकर

यूरोपीय संघ तथा नाटो के साथ बढ़ती नजदीकियों ने रूस की सुरक्षा संबंधी चिताओं को बढ़ा दिया।

वर्ष 2014 में रूस द्वारा क्रीमिया के अधिग्रहण तथा पूर्वी यूक्रेन में संघर्ष ने दोनों देशों के संबंधों को गंभीर रूप से प्रभावित किया। मिन्स्क समझौतों के बावजूद तनाव समाप्त नहीं हुआ। अन्ततः 24 फरवरी, 2022 को रूस ने यूक्रेन में व्यापक सैन्य अभियान प्रारम्भ किया, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के सबसे बड़े सैन्य संघर्ष का रूप ले लिया।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप अमेरिका, यूरोपीय संघ, ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी देशों ने रूस पर व्यापक आर्थिक एवं वित्तीय प्रतिबंध लगाए।अनेक रूसी बैंकों को SWIFT भुगतान प्रणाली से बाहर कर दिया गया तथा ऊर्जा, व्यापार और निवेश पर भी प्रतिबन्ध लगाए गए। इन घटनाओं ने वैश्विक ऊर्जा बाजार, खाद्यान्न आपूर्ति श्रृंखला तथा विश्व अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डाला।

भारत जैसे विकासशील देशों के लिए यह स्थिति विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण थी क्योंकि उन्हें ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा तथा आर्थिक स्थिरता को बनाए रखना था। इस परिस्थिति में भारत ने किसी पक्ष का समर्थन करने के बजाय संवाद, कूटनीति और शांतिपूर्ण समाधान पर बल दिया।

रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन –

रूस–यूक्रेन युद्ध के पश्चात् यह अनुमान लगाया गया था कि भारत और रूस के सम्बन्धों में कमी आएगी, किन्तु उपलब्ध तथ्य उस धारणा की पुष्टि नहीं करते। इसके विपरीत दोनों देशों के बीच सहयोग अनेक क्षेत्रों में जारी रहा।

सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन ऊर्जा सहयोग में देखा गया। युद्ध से पूर्व भारत रूस से सीमित मात्रा में कच्चा तेल आयात करता था, किन्तु युद्ध के बाद रियायती दरों पर उपलब्ध रूसी तेल के कारण भारत ने अपने आयात में तेजी से उल्लेखनीय वृद्धि की। इससे भारत की ऊर्जा सुरक्षा मजबूत हुई तथा वैश्विक महंगाई के प्रभाव को कम करने मे सहायता मिली।

दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र रक्षा सहयोग रहा। भारतीय सशस्त्र बलों के अनेक प्रमुख हथियार, विमान, पनडुब्बियाँ तथा मिसाइल प्रणालियाँ रूसी तकनीक पर आधारित है। S-400 वायु रक्षा प्रणाली की आपूर्ति, ब्रह्मोस मिसाइल परियोजना तथा तकनीकी सहयोग यह दर्शाते है कि युद्ध के बावजूद रक्षा सम्बन्धों की निरन्तरता बनी रही। यद्यपिपश्चिमी प्रतिबन्धों और भुगतान सम्बन्धी चुनौतियों के कारण कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई, फिर भी दोनों देशों ने वैकल्पिक भुगतान तंत्र विकसित करने की दिशा में प्रयास किए।

राजनीतिक स्तर पर भी भारत और रूस के बीच नियमित उच्चस्तरीय संवाद जारी रहे। दोनों देशों ने BRICS, G20, संयुक्त राष्ट्र तथा शंघाई सहयोग संगठन (SCO), जैसे बहुपक्षीय मंचों पर सहयोग बनाए रखा। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत–रूस सम्बन्ध केवल द्विपक्षीय हितों तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक शासन व्यवस्था में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

युद्धोत्तर भारत की विदेश नीति : एक राजनीतिक विश्लेषण –

रूस–यूक्रेन युद्ध ने भारत की विदेश नीति की परिपक्वता और व्यावहारिकता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्पष्ट किया। भारत ने युद्ध के दौरान न तो रूस का पूर्ण समर्थन किया और न ही पश्चिमी देशों के दबाव में रूस के विरुद्ध कठोर राजनीतिक रुख अपनाया। इसके बजाय भारत ने प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंसा समाप्त करने, वार्ता प्रारम्भ करने तथा अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के सम्मान की आवश्यकता पर बल दिया। भारत की यह नीति रणनीतिक स्वायत्तता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में भारत किसी एक शक्ति–गुट पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न देशों के साथ अपने संबंधों को संतुलित रूप से विकसित कर रहा है। रूस के साथ रक्षा एवं ऊर्जा सहयोग बनाए रखते हुए भारत ने आस्ट्रेलिया, अमेरिका, जापान, फ्रांस तथा यूरोपीय देशों के साथ भी रणनीतिक सहयोग को निरन्तर विस्तार दिया है। यही संतुलित दृष्टिकोण भारत की विदेश नीति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बनकर उभरा है।

भारत–रूस रक्षा, ऊर्जा तथा आर्थिक सहयोग का समकालीन विश्लेषण –

रूस–यूक्रेन युद्ध के बाद भारत–रूस सम्बन्धों में सबसे अधिक परिवर्तन ऊर्जा सहयोग के क्षेत्र में दिखाई दिया। पश्चिमी देशों द्वारा रूस पर लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों के कारण रूस ने एशियाई देशों, विशेषकर भारत और चीन की ओर अपने ऊर्जा निर्यात का विस्तार किया। भारत ने अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं तथा आर्थिक हितों

को ध्यान में रखते हुए रियायती मूल्य पर रूसी कच्चे तेल का आयात बढ़ाया। इससे भारत की ऊर्जा सुरक्षा को मजबूती मिली तथा घरेलू ईंधन कीमतों पर वैश्विक अस्थिरता का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की विदेश नीति का संचालन वैचारिक आग्रहों की अपेक्षा व्यावहारिक राष्ट्रीय हितों के आधार पर किया गया।

रक्षा सहयोग भारत–रूस के सम्बन्धों का सबसे महत्वपूर्ण आधार रहा है। स्वंतत्रता के बाद से ही भारत की सैन्य क्षमताओं के विकास में रूस का योगदान महत्पूर्ण रहा है। वर्तमान समय में भारतीय नौसेना, वायुसेना और थलसेना के अनेक प्रमुख रक्षा प्लेटफॉर्म रूसी तकनीक पर आधारित है। टी–90 टैंक, ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल, सुखोई–30 एमकेआई लडाकू विमान तथा एस–400 वायु रक्षा प्रणाली जैसी परियोजनाएँ दोनों देशों के बीच सामरिक विश्वास का प्रमाण रही है। युद्ध के दौरान भुगतान व्यवस्था, आपूर्ति श्रृंखला तथा लॉजिस्टिक चुनौतियाँ अवश्य सामने आई, परंतु दोनों देशों ने वैकल्पिक भुगतान व्यवस्था तथा स्थानीय मुद्राओं में व्यापार जैसे उपायों पर भी कार्य किया है।

ऊर्जा क्षेत्र के अतिरिक्त उर्वरक, कोयला, धातु, हीरा तथा औद्योगिक कच्चे माल के व्यापार में भी विस्तार हुआ। हालांकि, व्यापार संतुलन अभी भी रूस के पक्ष में ही अधिक है। इसलिए भारत के लिए आवश्यक है कि वह औषधि, कृषि–उत्पाद, सेवा क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी तथाइंजीनियरिंग वस्तुओं में अपने निर्यात को बढ़ाए, जिससे द्विपक्षीय व्यापार अधिक संतुलित हो सके। आर्थिक संबंधों की दृष्टि से युद्ध के बाद द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्धों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

भारत–रूस सम्बन्धों के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ–

भारत–रूस सम्बन्ध वर्तमान समय में अनेक नई चुनौतियों का सामना कर रहे है।

प्रथम, रूस और चीन के बीच बढ़ती सामरिक निकटता भारत के लिए दीर्घकालिक रणनीतिक चुनौती बन रही है। भारत–चीन सीमा विवाद तथा हिन्द–प्रशान्त क्षेत्र की बदलती भू–राजनीति के कारण भारत को अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप संतुलित नीति अपनानी पड़ रही है।

द्वितीय, भारत की रक्षा खरीद में विविधीकरण की नीति ने भी भारत–रूस सम्बन्धों की प्रकृति को प्रभावित किया है। भारत अब अमेरिका, इजराइल, फ्रांस तथा अन्य देशों से भी आधुनिक रक्षा उपकरण खरीद रहा है। इसका उद्देश्य रूस से दूरी बनाना नहीं, बल्कि रक्षा स्त्रोतों का संतुलित विस्तार करना रहा है।

तृतीय, युद्ध के कारण वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला, खाद्य सुरक्षा तथा ऊर्जा बाज़ार में उत्पन्न अस्थिरता ने भारत–रूस आर्थिक सम्बन्धों के समक्ष नई व्यावहारिक चुनौतियाँ प्रस्तुत की है।

चतुर्थ, पश्चिमी देशों द्वारा रूस पर लगाए गए आर्थिक एवं वित्तीय प्रतिबंधों ने बैंकिंग सहयोग, भुगतान प्रणाली तथा निवेश को प्रभावित किया। डॉलर–आधारित वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में प्रतिबन्धों के कारण वैकल्पिक भुगतान तंत्र विकसित करना दोनों देशों की आवश्यकता बन गया।

पंचम, अमेरिका का Countering (America's Adversaries Through Sanctions Act (CAATSA) भारत के लिए एक महत्वपूर्ण कूटनीतिक चुनौती रहा। यद्यपि भारत ने अपने राष्ट्रीय हितों के आधार पर रूस सेरक्षा खरीद जारी रखी गयी, फिर भी यह विषय भारत–अमेरिका सम्बन्धों में समय–समय पर चर्चा का विषय बना रहा।

भविष्य की संभावनाएँ–

वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में भारत–रूस संबंधों की उपयोगिता केवल रक्षा सहयोग तक ही सीमित नहीं रही है। भविष्य में साइबर सुरक्षा, परमाणु ऊर्जा, हरित ऊर्जा, अंतरिक्ष अनुसंधान, डिजिटल प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, फार्मास्यूटिकल्स तथा आर्कटिक क्षेत्र जैसे क्षेत्रों में सहयोग की अधिक संभावनाएँ है। शंघाई सहयोग संगठन (SCO), संयुक्त राष्ट्र, BRICS तथा G20 जैसे बहुपक्षीय मंचों पर भारत और रूस का सहयोग भविष्य में वैश्विक शासन व्यवस्था को अधिक संतुलित और समावेशी बनाने में सहायक हो सकता है। यदि दोनों देश व्यापार असंतुलन कम करने, निवेश बढ़ाने तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में संयुक्त अनुसंधान को प्रोत्साहित करते रहेंगे, तो यह साझेदारी और अधिक मजबूत बन सकती है।

निष्कर्ष–

रूस–यूक्रेन युद्ध ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में गहरे परिवर्तन उत्पन्न किए है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि युद्ध के बावजूद भारत–रूस सम्बन्धों की मूल संरचना और रणनीतिक महत्व बरकरार रहे। दोनों देशों ने

परिस्थितियों के अनुसार अपने सहयोग के स्वरूप में आवश्यक परिवर्तन किए, किन्तु पारस्परिक विश्वास और दीर्घकालिक साझेदारी को बनाए रखा है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारत ने अपनी विदेश नीति में रणनीतिक स्वायत्तता के सिद्धान्त को सफलतापूर्वक अपनाये हुऐ है। भारत ने न तो किसी शक्ति–गुट का अनुसरण किया और न ही बाहरी दबावों के आधार पर अपने निर्णय लिए है। संयुक्त राष्ट्र में भारत का संतुलित दृष्टिकोण, रूस से ऊर्जा आयात जारी रखना तथा पश्चिमी देशों के साथ भी रणनीतिक सहयोग बनाए रखना इस नीति की सफलता को दर्शाता है। इस संघर्ष ने वैश्विक शक्ति संतुलन, ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक सहयोग तथा कूटनीतिक सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की।

इस शोध के माध्यम से यह इंगित होता है कि भारत–रूस संबंध आज केवल रक्षा सहयोग तक सीमित नहीं है। ऊर्जा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बहुपक्षीय कूटनीति, व्यापार, परमाणु ऊर्जा तथा अंतरिक्ष जैसे अनेक क्षेत्र इस साझेदारी के नए आयाम बनकर उभरे है। साथ ही, दोनों देशों के सामने रूस–चीन निकटता, रक्षा सहयोग के विविधीकरण, पश्चिमी प्रतिबन्ध तथा भुगतान व्यवस्था जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान है। इन चुनौतियों का समाधान संवाद, संस्थागत समन्वय तथा सहयोग के माध्यम से किया जा सकता है।

बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के निर्माण में भारत और रूस की भूमिका भविष्य में भी महत्वपूर्ण बनी रहेगी। अतः यह कहा जा सकता है कि रूस–यूक्रेन युद्ध ने भारत–रूस संबंधों को कमजोर नहीं किया, बल्कि उन्हें नए संदर्भों में पुनर्परिभाषित करने का अवसर प्रदान किया है। अतः भविष्य में भारत–रूस सम्बन्ध इस सफलता पर निर्भर करेंगे कि दोनों देश बदलती वैश्विक भू–राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी साझेदारी को कितना आधुनिक, बहुआयामी और परस्पर लाभकारी बना पाते हैं।

नीतिगत सुझाव–

(I) ऊर्जा सहयोग को पारम्परिक तेल एवं गैस से आगे बढ़ाकर हरित ऊर्जा एवं परमाणु ऊर्जा तक विस्तारित किया जाना चाहिए।

(ii) भारत और रूस को रक्षा सहयोग के साथ–साथ संयुक्त अनुसंधान एवं रक्षा उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए।

(iii) भारत को अपने निर्यात में वृद्धि कर द्विपक्षीय व्यापार संतुलन सुधारने के लिए ठोस नीतियाँ अपनानी चाहिए।

(iv) द्विपक्षीय व्यापार में स्थानीय मुद्रा आधारित भुगतान प्रणाली को और अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

(v) BRICS, SCO तथा G20 जैसे मंचों के माध्यम से बहुपक्षीय सहयोग को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

(vi) साइबर सुरक्षा, अंतरिक्ष, डिजिटल प्रौद्योगिकी एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में दीर्घकालिक सहयोग विकसित किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ministry of Defence, Government of India (2024). Annual Report 2023-24. https://mod.gov.in
2. Lo, B. (2015). Russia and the New World Disorder. Brookings Institution Press.
3. Reserve Bank of India. (2024). Handbook of Statistics on the Indian Economy. Reserve Bank of India-https://rbi.org.in
4. Institute for Defence Studies and Analyses (2023). India-Russia Relations in the Changing Global Order. Manohar Parrikar Institute for Defence Studies and Analyses (MP-IDSA). https://www.idsa.in
5. Stent, A.E. (2014). The Limits of Partnership: U.S.-Russian Relations in the Twenty-First Century. Princeton University Press.
6. SIPRI(2024). Trends in International Arms Transfers 2023. Stockholm International Peace Research Institute.
7. Pant, H.V.(2019). Indian Foreign Policy: An Overview. Manchester University Press.
8. World Bank. (2024). World Development Indicators.
9. United Nations. (2022-2024). United Nations General Assembly Resolutions on Ukraine.
10. Talbott, S. (2004). Engaging India: Diplomacy, Democracy and the Bomb. Brookings. Institution Press.
11. Observer Research Foundation. (2023). India-Russia Relations after the Ukraine Crisis.
12. Acharya, A. (2014). The End of American World Order. Polity Press.
13. Appadorai, A. & Rajan, M.S. (2017). India's Foreign Policy and Relations. Oxford University Press.
14. Jaishankar, S. (2020). The India Way: Strategies for an Uncertain World. HarperCollins.
15. Bajpai, K., Basit, S. & Krishnappa, V. (Eds.). (2014). India's Grand Strategy: History. Theory, Cases. Routledge.
16. Mohan, C. Raja. (2023). India's Foreign Policy in a Changing World. HarperCollins India.
17. Government of India, Ministry of External Affairs. (2024). India-Russia Bilateral Relations.

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 23 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

मन एवं मानसिक स्वास्थ्य

— डॉ. राजीव प्रताप सिंह
मानव चेतना एवं
योग विज्ञान विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार—249404 (उत्तराखण्ड)

ई—मेल :
rajeevpsingh143@gmail.com

सारांश

महात्मा जी के शब्दों में— वह किसी के प्रति ईर्ष्या भाव नहीं रखता, वह करुणा से ओत—प्रोत है, वह अहंकार एवं स्वार्थ से रहित है, वह सर्दी—गर्मी एवं सुख — दुख को एक समान मानता है, इसके संकल्प अडिग होते हैं व तन तथा आत्मा परमात्मा के प्रति समर्पित होते हैं, उससे कोई भय नहीं खाता और न ही वह किसी से भयभीत होता है, वह शोक, हर्ष और भय से मुक्त होता है, वह हर कार्य में कुशल होता है किन्तु इनसे अप्रभावित रहता है। वह इसे अच्छे तथा बुरे दोनों तरह के फलों को त्याग देता है, मित्र एवं शत्रुओं से एक समान व्यवहार करता है, वह मान, अपमान, निन्दा, स्तुति आदि से विचलित नहीं होता, उसे शान्त एवं एकान्तता प्रिय होती है तथा उसकी विचारणा अनुशासित होती है।

मानसिक स्वास्थ्य का मूल आधार मन है। 'शरीर की तुलना में मन का मूल्य हजारों गुना अधिक है।' शरीर का स्वरूप स्थूल होने के कारण इसके रोग एवं विक्रतियाँ सरलता से समझ में आते हैं और तद्नुरूप उपचार भी बन पड़ते हैं, किन्तु मन की प्रकृति सूक्ष्म है, इस कारण मनोरोग दिखाई नहीं पड़ते, सामान्यतः उनकी जानकारी न होने के कारण उपेक्षा की स्थिति बनी रहती है। फिर भी यह एक तथ्य है कि मानसिक व्याधियों से मनुष्य एवं समाज का जो अहित होताा है, वह शारीरिक बीमारियों से होने वाली हानि की तुलना में किसी भी प्रकार कम भयंकर नहीं है, बल्कि यह अधिक घातक एवं विनाशकारी ही है। मानसिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में मन की सूक्ष्म प्रकृति एवं इसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान बहुत उपयोगी है। अतः इस परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम प्रस्तुत है, मन के स्वरूप एवं गुण धर्म को अनावृत्त करते विविध दार्शनिक विचार, जो मानव सभ्यता के विभिन्न कालखण्ड में उर्वर मस्तिष्क से उपजे।

1. मन की दार्शनिक अवधारणा —

मन का विषय प्रारम्भ से ही जिज्ञासु मानव को सोचने के लिए उद्वेलित करता रहा है। इस विषय में पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही क्षितिज पर अपने—अपने ढंग से प्रयास हुए हैं, किन्तु इस संदर्भ में सर्वप्रथम प्रयास भारतवर्ष में ही हुए हैं। इनका आदि संकलन वेदग्रन्थों में हुआ और इनमें ऋग्वेद ग्रन्थ विश्व का मान्य सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इस तरह वैदिक ऋषियों के चिन्तन में हमें सर्वप्रथम मन के स्वरूप एवं इसके रहस्यों का ज्ञान मिलता है।

2. भारतीय दर्शन में मन का मनन —

1. वैदिक ऋषियों के चिन्तन में मन का स्वरूप — पूर्वी दर्शन का अस्तित्व बीज वेदों की उर्वर भूमि में पला, बढ़ा और विकसित हुआ, इसके मंत्रदृष्टा ऋषि मानव मन के ममज्ञ थे। मन के सूक्ष्म स्वरूप पर प्रकाश डालते,

उनके विचार गहन अर्न्तदृष्टि से सम्पन्न हैं। इनमें मन के स्वरूप एवं गुण–धर्मों पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

ऋग्वेद में मन को दो गुणों से युक्त बताया गया है– दक्ष अर्थात् ज्ञानयुक्त और क्रतु अर्थात् क्रियाशील अर्थात् मन, ज्ञान और कर्म का साधन है। वाजसनेयी संहिता में मन को शरीर और आत्मा से पृथक बताया गया है। यह बुद्धि, भाव और तर्क से युक्त है। यजुर्वेद में मन पर व्यापक विवेचन मिलता है, इसमें मन को मानव हृदय में रहने वाला आदरणीय तत्व माना गया है। मन ही प्रेरणास्रोत है। इसी प्रेरणा से सारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कार्य होते हैं। एक मंत्र से इसे चेतना का आधार बताया गया है। इसके तीन महत्वपूर्ण गुण हैं– प्रज्ञान, चेतस और धृति।

मन वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में व्याप्त है। मन एक योग्य सारथी है, जो इन्द्रिय रूपी घोड़ों को ठीक ढंग से नियंत्रित करता है मन को वायु के तुल्य तीव्र गति वाला माना गया है। मन की गति न केवल पृथ्वी तक ही है, अपितु यह अन्तरिक्ष और द्युलोक तक जाता है। मन चंचल है, अतः विशिष्ट कार्य के लिए उसको रोक कर नियंत्रित करना आवश्यक है। एक मंत्र में चिन्तन, संकल्प–विकल्प एवं कल्पनाएँ मन के विषय बताये गये हैं। काम और आकृति इसके गुण हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार – भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन की चंचलता के कारण ध्यान में स्थिर स्थिति रहना मुझे बड़ा कठिन दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि जब तक मन की चंचलता का नाश नहीं होगा, तब तक ध्यान योग सिद्ध नहीं होगा और ध्यान योग सिद्ध हुए बिना समता की प्राप्ति नहीं होगी।

मन बड़ा ही चंचल है। चंचलता के साथ–साथ यह – 'प्रमर्थि' भी है अर्थात् यह साधक को अपनी स्थिति से विचलित कर देता है। यह बड़ा जिद्दी और बलवान भी है। भगवान ने 'कामवासना' के रहने के पाँच स्थान बताये हैं– इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, विषय और स्वयं। वास्तव में काम स्वयं में अर्थात् चिज्जड़–ग्रन्थि में रहता है और इंद्रियाँ, मन, बुद्धि तथा विषयों में इसकी प्रतीति होती है। काम जब स्वयं से निवृत्त नहीं होता, तब तक यह काम समय–समय पर इंद्रियों आदि में प्रतीत होता रहता है। पर जब यह स्वयं से निवृत्त हो जाता है, तब इंद्रियों आदि में भी यह नहीं रहता, इससे यह सिद्ध होता है कि जब तक स्वयं में काम रहता है, तब तक मन साधक को व्यथित करता रहता है। अतः यहाँ मन को 'प्रमथि' बताया गया है। उस काम के स्वयं में रहने के कारण मन का पदार्थों के प्रति गाढ़ा खिंचाव रहता है। शास्त्रों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि मन ही मनुष्य के मोक्ष और बन्धन में कारण है ....

'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।'

मन की चंचलता भी तभी तक बाधक होती है, जब तक स्वयं में कुछ भी काम का अंश रहता है। काम का अंश सर्वथा निवृत्त होने पर मन की चंचलता किंचित मात्र भी बाधक नहीं होता। शास्त्रकारों ने कहा है–

'देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र–यत्र मनो यति तत्र–तत्र परामृतम्।।'

इस चंचल, प्रमाथि, दृढ़ और बलवान मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है। जैसे में विचरण करते हुए वायु को कोई मुट्ठी में नहीं पकड़ सकता, ऐसे ही इस मन को कोई पकड़ नहीं सकता। अतः इसका निग्रह करने को मैं महान दुष्कर मानता हूँ।

3. पाश्चात्य दर्शन में मन की विवेचना –

पाश्चात्य दर्शन में मन के स्वरूप पर पर्याप्त विचार हुआ है, परन्तु यह भारतीय दर्शन की परम्परा से सर्वथा हटकर हुआ है। वास्तव में यहाँ की मन सम्बन्धी विवेचना मौलिक त्रुटियों से ग्रस्त रही है। मनीषाी जी. रॉयल के शब्दों में– 'इस मूल समस्या का उद्गम यह है कि यह सभी विचारक एक ओर मन और शरीर को अलग–अलग मानते हैं, दूसरी ओर मन को आत्मा के समतुल्य मान बैठते हैं।' प्राचीन यूनानी युग से लेकर 20वीं सदी के तीसरे दशक तक यहाँ मन और आत्मा को एक माना जाता रहा है। फिर भी इसके मन सम्बन्धी विचारों को नकारा नहीं जा सकता। विचारों के इतिहास में इनका अपना महत्व सर्वोपरि है, क्योंकि इसे पाश्चात्य दर्शन का जनक माना गया है।

4. मन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विचार –

दर्शन की तरह वैज्ञानिक क्षेत्र में भी मन, अध्ययन एवं अन्वेषण का अहम् विषय रहा है। पाश्चात्य विज्ञान की पृष्ठभूमि में इस विषयक सुव्यवस्थित प्रयासों को पिछले दो–तीन शतकों से सक्रिय देख सकते हैं। जब कि भारतीय पृष्ठभूमि में इस तरह के गंभीर प्रयासों को आयुर्विज्ञान की पुरातन परम्परा के खोज सकते हैं। आयुर्विज्ञान के प्रवर्तक शरीर और मन के सम्बन्धों पर विस्तृत प्रकाश डालने वाले सम्भवतः प्रथम वैज्ञानिक थे। इस पारम्परिक उपचार की पुरानता को हम वैदिक युग में विकसित, जीवन के विज्ञान के रूप में 5000 वर्ष पूर्व तक देख सकते हैं।

5. आधुनिक विज्ञान में मन का स्वरूप –

अपने भौतिक एवं स्थूल दृष्टिकोण के कारण आधुनिक विज्ञान में मन की अवधारणा एकांगी है और अपनी सीमाओं में बंधी हुई है। इसकी मन की परिभाषा अमेरिकी मनीषी पुटनम के शब्दों में– 'मस्तिष्क रूपी मशीनी यंत्र के प्रकार्य से अधिक कुछ भी नहीं है।' इस तरह विज्ञान शरीर, मस्तिष्क व मन के द्वैत से सहमत नहीं है और इसके मस्तिष्क से स्वतंत्र कोई अस्तित्व को नहीं मानता।

प्रकृतिविद् जार्ज जॉन रोमेन के शब्दों में– 'जो परिवर्तन मन में घटित होता है, वैसा ही कुछ मस्तिष्क में घटित होता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।'

अमेरिकी मनीषी विलियम जेम्स की भी धारणा रही है कि मन की मानसिक संरचनाएँ मस्तिष्क को नियंत्रित करती हैं। मस्तिष्क पर मन के चिन्तन, ज्ञान और व्यवहार का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। इस तरह आधुनिक विज्ञान की प्रचलित धारणा मन का मस्तिष्क के जैविकीय स्वरूप से अलग स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं मानती और इसे मस्तिष्क की क्रिया के रूप में देखती है। साथ ही विज्ञान अपने विकास की प्रौढ़ता के साथ इस धारणा की सीमाओं से भी परिचित हो रहा है और मस्तिष्क के अलग मन के स्वतंत्र अस्तित्व एवं कार्य क्षमता को भी मानने लगा है।

6. मानसिक स्वास्थ्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टि –

आधुनिक मनोविज्ञान प्रमुखतया मानवीय व्यवहार को ही अपने अध्ययन की विषय–वस्तु मानता है। अतः यहाँ मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा को मूल रूप से समायोजनशीलता (Adaptability) की क्षमता के इर्द–गिर्द परिभाषित किया गया है। इसी संदर्भ में मनोविद् स्ट्रेन्ज का मत – 'मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य उस सीखे हुए व्यवहार से अधिक कुछ भी नहीं है, जो व्यक्ति को जीवन का पर्याप्त रूप से सामना करने की क्षमता देता है।' इसी तरह कार्ल मेनिंगर के अनुसार – 'मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम प्रभावशीलता एवं सहर्षता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ मानव समायोजन है, यह सन्तुलित मनोदशा, सजग बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार और प्रसन्नचित बनाये रखने की क्षमता है।' हारबीज और स्कीड इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं कि – 'इसमें कई आयाम जुड़े हुए हैं– आत्म सम्मान, अपनी अन्तःशक्तियों का अनुभव, सार्थक एवं उत्तम सम्बन्ध बनाये रखने की क्षमता एवं मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठता।' इसकी व्यवहारिक परिभाषा देते हुए पी. बी. ल्यूकन लिखते हैं कि – 'मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति वही है जो स्वयं सुखी है, अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहता है, अपने बच्चों को स्वस्थ नागरिक बनाता है और इन आधारभूत कर्तव्यों को करने के बाद भी जिसमें इसकी शक्ति बच जाती है कि वह समाज के हित में कुछ कर सके।' इस तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य की मुख्य कसौटी अर्जित व्यवहार है। जिसका स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इससे व्यक्ति को सभी तरह के समायोजन करने में मदद मिलती है। यह एक सन्तुलित मानसिक स्थिति को व्यक्त करता है, जिससे व्यक्ति की विभिन्न परिस्थितियों में सामाजिक रूप से और सांवेगिक रूप से एक मान्य व्यवहार करता है।

व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य एवं रुग्णता के अनुरूप हम मानव व्यवहार को सामान्य तथा असामान्य भागों में बांट सकते हैं–

सामान्यता (Normality) का अर्थ एवं परिभाषा – मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में सामान्यता का अर्थ क्या है? और असामान्यता का क्या है? इस विषय पर मनोवैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों के बीच आज भी कोई आम सहमति नहीं है। कुछ लोग एक व्यवहार को सामान्य मानते हैं तो उसी व्यवहार को दूसरे समाज या संस्कृति में असामान्य माना जाता है। वास्तव में सामान्यता एवं असामान्यता मूल्य आधारित संप्रत्यय है। ऑफर और सबरीन ने मनोविज्ञान, मनोरोग विज्ञाग, समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में सामान्यता के प्रचलित कई अर्थों में समीक्षा की है। उनके विश्लेषण को आधार मानकर कोरचिन ने सामान्यता क निर्धारण इन पाँच कसौटियों पर किया है–

(1) स्वास्थ्य, (2) आदर्श, (3) औसत, (4) सामाजिक एवं (5) एक प्रक्रिया 'इसके रूप में इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(क) स्वास्थ्य के रूप में सामान्यता (Normaly as Health) – यह सामान्यता का सबसे प्रचलित विचार है, जिसका अर्थ है बीमार न होना या रोग का अभाव। यदि कोई गंभीर विकृति या अनियमितता नहीं है तो व्यवहार को सामान्य माना जाता है। ऑफर व सबमरीन के शब्दों में– 'श्रेष्ठ या आदर्शों की स्थिति में नहीं बल्कि केवल पर्याप्त की स्थिति को इंगित करना है।'

(ख) आदर्श के रूप में सामान्यता (Normaly as Ideal) – यहाँ सामान्यता पर्याप्त की स्थिति से नहीं बल्कि श्रेष्ठ एवं आदर्श स्थिति के अनुरूप परिभाषित होती

है। इस संदर्भ में भी विविध मत प्रचलित हैं। जहोदा के सकारात्मक मानसिक विचार मैसले एवं गौल्डस्टीन का आत्म सिद्ध का लक्ष्य, कार्ल रोजर्स का पूर्णतया क्रियाशील व्यक्ति एवं आलपोर्ट क परिपक्व व्यक्तित्व आदि इस आदर्श के विविध रूप हैं।

(ग) औसत के रूप में सामान्यता (Normality as Average) – सामान्यता का यह विचार सांख्यिकी से आया है और औसत से अत्यधिक कम या अधिक को असामान्य कहा जाता है।

(घ) सामाजिक स्वीकार्यता के रूप में सामान्यता (Normality as Social Acceptance)– यदि कोई व्यवहार समाज के आदर्शों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप होता है तो उसे सामान्य माना जाता है और यदि ऐसा नहीं होता है तो उसे असामान्य समझा जाता है। लिनटन के अनुसार – 'सामान्य व्यवहार वही है जो सामाजिक प्रत्याशाओं के साथ मेल खाता हो।'

(ङ) एक प्रक्रिया के रूप में सामान्ता (Normality as a Process) – इसमें जीवन के विभिन्न कालखण्डों में जैविक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों से होने वाले परिवर्तनों के आधार पर सामान्यतया का मानदण्ड तय किया जाता है। एरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त इसी पर आधारित है, इसके अनुसार शिशु अवस्था की सामान्य क्रियाओं को प्रौढ़ावस्था में असामान्य माना जायेगा तथा युवावस्था की सामान्य क्रियाओं को वृद्धावस्था में असामान्य माना जायेगा।

इस प्रकार मनोविज्ञान की दृष्टि में मानसिक सामान्यता को कई कसौटियों पर परखा जाता है। यहाँ सामान्य वह है जो रोगी नहीं है, औसत है, सामाजिक मानक मानता है और आदर्श परिवक्व एवं पूर्ण क्रियाशील व्यक्तित्व है। इस प्रकार कुछ कसौटियों के आधार पर सामान्यता का एक निरन्तर क्रम बनता है, जिसे गम्भीर रूप से विकृति एक छोर पर, फिर मान्य रूप से पर्याप्त और रचनात्मक परिपक्व व्यक्ति आते हैं। इन सभी अर्थों में सामान्यता का ज्ञान, सामान्य व्यवहार को असामान्य व्यवहार से भिन्न करके व्यक्तित्व के अध्ययन में महत्वपूर्ण उपयोगी हैं।

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की विषेशताएँ– सामान्यता के विविध मापदण्डों के अनुरूप मानसिक स्वस्थ्य की अनेकों अवधारणाएँ हैं, जो सभी एकांगी तथा अपूर्ण प्रतीत होती हैं। वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की रचनात्मक एवं प्रगतिशील एक ऐसी दशा है, जिसकी पहचान उसके लक्षणों से करना अधिक उचित होगा। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति के लक्षण कुछ इस तरह से हैं– जो सभी एकांगी तथा अपूर्ण प्रतीत होती हैं। वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति की रचनात्मक एवं प्रगतिशील एक ऐसी दशा है, जिसक पहचान उसके लक्षणों से करना अधिक उचित होगा। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति के लक्षण कुछ इस तरह से हैं–

(क) आत्म मूल्यांकन (Self Evaluation)- मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति अपना सही मूल्यांकन करने की क्षमता रखता है। वह आसानी से अपने गुण–दोष की परख कर लेता है। वह तटस्थ होकर अपने व्यवहार का अध्ययन करता है और अपनी सीमाओं का समुचित ज्ञान रखता है।

(ख) सही व गलत का ज्ञान या सामाजिक विवेक – उसे इस बात का ज्ञान रहता है कि क्या सही है, क्या गलत है, क्या करणीय है, क्या अकरणीय, जो उसे सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों की सीमाओं में बांधे रखता है। वह सामाजिक कल्याण की भावना रखता है तथा समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समायोजन स्थापित करने की चेष्टा करता है।

(ग) समायोजन षक्ति – नई परिस्थितियों में अनुकूलन कर लेना मानसिक स्वास्थ्य की महत्वपूर्ण पहचान है। वे अपने दैनिक कार्य, व्यवहार, पड़ोस व अन्य व्यक्तियों के साथ समायोजन स्थापित करने की क्षमता रखते हैं।

(घ) जीवन के प्रति यथार्थवादी दृश्टिकोण – मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति जीवन के प्रति व्यावहारिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण रखता है। वह जीवन से अपने जीवन के साथ अन्य व्यक्ति, समाज एवं संसार का उचित ज्ञान रखता है, अतः वह जीवन से वास्तविक एवं व्यावहारिक प्रत्याशाएँ रखता है, सपनों में नहीं, यथार्थ के कठोर धरातल पर चलता है। व्यावहारिक लक्ष्यों के अनुरूप योजनाएँ बनाता है और उसका सफल क्रियान्वयन करता है।

(ङ) अतिवाद से मुक्ति संतुलित जीवन – इसमें किसी भी गुण या व्यवहार सम्बन्धी अति नहीं होती है, क्योंकि कोई भी गुण, इच्छा या लालसा, बढ़ जाने पर मन में असन्तुलन उत्पन्न करती है और अन्ततः मानसिक

स्वास्थ्य के लिए खतरा बनती है। अति चाहे महत्वाकांक्षा की हो या धन, वैभव एवं भोग–विलास की, वह हर दृष्टि से घातक ही सिद्ध होती है। स्वस्थ्य व्यक्ति इन अतियों से मुक्त, एक सन्तुलित जीवन जीता है।

(च) आत्म नियंत्रण की क्षमता – इसमें इतनी शक्ति होती है कि वह अपने संवेगों एवं व्यवहार पर आवश्यक मात्रा में नियंत्रण रख सकें। इस तरह न वह आवेगी होता है और न ही विरक्त एवं रूखा। उसके संवेगों की स्थिति प्रायः सम रहती है, वह न बहुत हर्ष में बह जाता है और न बहुत विषाद से ग्रस्त रहता है और उसे समाज के अनुरूप ढाल लेता है।

(छ) सुरक्षा की पर्याप्त भावना – उसमें सुरक्षा की पर्याप्त भावना रहती है। वह किसी व्यक्ति, विचार या घटना से अनावश्यक रूप से भयभीत नहीं रहता। वह दूसरों के साथ निर्भय होकर अन्तक्रिया करता है और स्वाभाविक रूप से सहज एवं सहृदय व्यवहार करता है।

(ज) उत्पादी एवं खुश रहने की क्षमता – मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति अपनी क्षमता को उत्पादी कार्यों में लगाते हैं। अतः इससे वे काफी खुश रहते हैं। वास्तव में ये अपनी सीमाओं और योग्यताओं के अनुसार कार्य एवं व्यवसाय चुनते हैं और उसे पूरी लगन के साथ क्रियान्वित करते हैं।

(झ) समन्वित व्यक्तित्व – व्यक्तित्व के विविध व्यायाम 'शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक आदि' समुचित रूप से विकसित होते हैं, जिसके कारण ये भीतरी मानसिक संघर्ष से बहुत कुछ मुक्त रहते हैं। इनके सभी बुद्धि, संवेग, क्रिया आदि पक्ष अपनी पूरी क्षमता के साथ कार्य करते हैं, अतः भीतरी संघर्ष में शक्ति का अपव्यय नहीं होता है।

(ढ) उपयुक्त संवेदनषीलता – इनमें उपयुक्त मात्रा में संवेदनशीलता पाई जाती है। वह न तो अति संवेदनशील होते है और न ही शुष्क निष्ठुर। ऐसे व्यक्ति दूसरों द्वारा की गयी प्रशंसा या आलोचना का प्रभाव अपने ऊपर अधिक नहीं पड़ने देते हैं। वे उतने ही उत्तेजित होते हैं, जितना उन्हें होना चाहिए।

(त) अंतग्रन्थियों एवं अंतर्द्वन्द्वों से मुक्त – फॉयड के शब्दों में – मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति के अहम, परमाहम् तथा इदम् में समन्वय होता है। परमाहम् इतना शक्तिशाली होता है कि वह अहम् पर आवश्यक नियंत्रण लागू कर सकता है। वह तनाव, अन्तर्द्वन्द्व, नैराश्य तथा कुंठाओं के दलदल में न उलझकर,उनसे निकलने का प्रयास करता है और वह हीनता, दम्भ, लज्जा, ग्लानि आदि विकारों से मुक्त होता है। वह विश्राम, व्यामोह तथा दुभ्रान्तियों आदि से मुक्त रहता है। स्वस्थ व्यक्ति के ऊपर वर्णित लक्षण किसी एक व्यक्ति में एक साथ नहीं पाये जा सकते। ये स्वस्थ व्यक्ति की एक आदर्श मानसिक स्थिति है, जिसके आधार पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य पर विचार किया जाता है। वस्तुतः पूर्ण मानसिक स्वास्थ्य एक आदर्श है, जिस व्यक्ति में ये गुण जितने अधिक होंगे, वह उस आदर्श के उतना ही निकट होगा।

मानसिक असामान्यता की अवधारणा – जब व्यक्ति मानसिक सामान्यता एवं स्वास्थ्य के उपरोक्त आदर्श के विपरीत जब व्यक्ति अनपेक्षित व्यवहार एवं आचरण करेगा तो उसे असामान्य कहा जायेगा। डैविड मैकानिक के शब्दों में– 'मानसिक असामान्यता एक तरह का विचलित व्यवहार है। इसकी उत्पत्ति तब होती है, जब व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रियाएं, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं या अनुभवों से विचलित होते हैं, जब व्यक्ति की चिन्तन प्रक्रियाएँ, भाव एवं व्यवहार सामान्य प्रत्याशाओं या अनुभवों से विचलित होते हैं तथा प्रभावित व्यक्ति या समाज के अन्य लोग उसे एक ऐसी समस्या के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है।' इसी तरह अमेरिका के मान्य मानक डी. एस. एम. के अनुसार – 'मानसिक असमानता व्यक्ति के व्यवहारपरक, मनोवैज्ञानिक तथा जैविक दुष्प्रक्रिया से उत्पन्न स्थिति है।'

इस तरह मानसिक असामान्यता 'रुग्णता' व्यक्ति में किसी न किसी दुष्क्रिया से उत्पन्न स्थिति है अर्थात् मन या शरीर का कोई न कोई अंग–अवयव उस ढंग से काम नहीं कर रहा होता, जैसे कि उसे करना चाहिए और उस स्थिति में उत्पन्न चिन्तन भाव एवं व्यवहार सामान्य मानदण्डों से विचलित होता है।

मानसिक असामान्यता के प्रतिमान – रीगर के अनुसार – 'असामान्य व्यवहार एक ऐसा व्यवहार होता है, जो सामाजिक रूप से अमान्य, दुखदायी एवं विकृत संज्ञान के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है'

मानसिक असामान्यता का निर्धारण करने के लिए विविध कसौटियाँ निर्धारित की गयी हैं–

1. सांख्यिकीय दृष्टिकोण – इस कसौटी के अनुसार वे सभी व्यवहार असामान्य माने जाते हैं जो सांख्यिकीय औसत से विचलित होते हैं। जो व्यवहार उस

औसत से आते हैं, वे सामान्य कहलाते हैं और जो उससे भिन्न होते हैं, उन्हें असामान्य कहा जाता है।

2. समाजषास्त्रीय दृष्टिकोण – इस कसौटी के अनुसार किसी समाज या संस्कृति के सामान्य व्यवहार के प्रतिकूल जो भी व्यवहार होगा वह असामान्य है। यह भी एकांगी दृष्टिकोण है, क्योंकि सांस्कृति मान्यताओं एवं परम्पराओं में एकरूपता नहीं होती। अतः यह असामान्यता की सार्वभौम कसौटी नहीं हो सकती।

3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण – इस मत के अनुसार असामान्य व्यक्ति वे हैं जो किसी न किसी प्रकार की मानसिक व्याधि से पीड़ित हैं। साधारण रूप से सभी मानसिक रोगी असामान्य कहे जाते हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी असामान्य व्यक्ति मानसिक रोगी होते हैं।

4. व्यक्तिगत व्यथा की कसौटी – इसके अनुसार यदि व्यक्ति का व्यवहार ऐसा होता है कि जिसमें अधिक कष्ट तथा पीड़ा उत्पन्न होती है जो उसे असामान्य कहा जायेगा। चिन्ता एवं विषाद से ग्रस्त व्यक्तियों के व्यवहार को इस कसौटी के अनुरूप असामान्य कहा जायेगा। कम गंभीर मानसिक विकृतियों की पहचान में यह कसौटी सर्वथा उपयुक्त है, किन्तु इसे हर जगह लागू नहीं किया जा सकता है।

5. अयोग्यता या दुष्क्रिया की कसौटी – इसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अयोग्यता के कारण असमर्थ रहता है, तो उसके व्यवहार को असामान्य कहा जायेगा।

6. अप्रत्याशा की कसौटी – डेविडसन और नील के अनुसार यह असामान्य व्यवहार की एक महत्वपूर्ण कसौटी है, इसके अन्तर्गत एक सामान्य उद्दीपन के प्रति अप्रत्याशित प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है।

इस तरह मनोविज्ञान के क्षेत्र में असामान्य व्यवहार को परिभाषित करने के लिए कई कसौटियों तथा दृष्टिकोणों को अपनाया गया है, परन्तु कोई भी इसे पूरी तरह स्पष्ट करने में सफल नहीं है। इस सन्दर्भ में ओल्टमान्नस और इमरी की सटीक टिप्पणी 'असामान्य व्यवहार को परिभाषित करने के बहुत सारे प्रयास किये गये हैं, परन्तु इनमें से कोई भी संतोषजनक नहीं है। किसी ने भी ऐसी तर्कसंगत परिभाषा नहीं की है, जो सभी परिस्थितियों में इनकी व्याख्या कर सके।'

इन सबके बावजूद यह सर्वमान्य तथ्य है कि मानसिक रूप से असामान्य व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक रूप से मान्य तौर–तरीकों से भिन्न एवं असाधारण होता है।

श्री गीता की दृष्टि में मानसिक स्वास्थ्य – योग की परम्परा में मनोविज्ञान की तरह मानसिक स्वास्थ्य का विषय अलग से स्वतंत्र रूप से कहीं भी विवेचित या प्रतिपादित नहीं हुआ है क्योंकि यहाँ व्यक्ति को सदैव समग्र रूप से लिया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान के विपरीत भारतीय विचारधारा में व्यक्ति का अस्तित्व आत्मा पर आधारित है, न कि मन पर। यहाँ मन का अस्तित्व आत्मा के उपकरण से अधिक कुछ भी नहीं है। जीवन का परम लक्ष्य यहाँ अपने वास्तविक स्वरूप आत्म तत्व की उपलब्धि है, इसी को मोक्ष, मुक्ति,निर्वाण, आत्मसाक्षात्कार, भगवद् प्राप्ति जैसे विविध नामों से विवेचित किया गया है। यौगिक दृष्टि से यही स्थिति व्यक्ति के अस्तित्व की पूर्णावस्था है, इसी अवस्था में व्यक्ति को मानसिक रूप से पूरी तरह से स्वस्थ्य कहा जा सकता है–

'योगस्थः कुरु कर्माणि संङ, त्यक्तवा धनंजय।
सिद्धय सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।'
– गीता – 2/48

किसी भी कार्य में, किसी भी कार्य के फल से, किसी भी देश, काल, घटना, परिस्थिति, अन्तःकरण, बहिःकरण आदि प्राकृत वस्तुओं में तेरी आसक्ति न हो, तभी तू निर्लिप्ततापूर्वक कर्म कर सकता है। कर्म का पूरा होना अथवा न होना सांसारिक दृष्टि से उसका फल अनुकूल होना अथवा न होना अथवा प्रतिकूल होना, उस कार्य को करने से आदर–निरादर, प्रशंसा–निन्दा होना, अन्तःकरण की शुद्धि होना आदि–आदि जो सिद्धि और असिद्धि हैं, उसमें सम रहना चाहिए। समता ही योग है अर्थात् समता परमात्मा का स्वरूप है। वह समता अन्तःकरण में निरन्तर बनी रहनी चाहिए।

बुद्धि दो तरह की होती है– अव्यवसात्मिका और व्यवसात्मिका। जिसमें सांसारिक सुख, भोग, आराम, मान, बड़ाई आदि प्राप्त करने का ध्येय होता है, वह बुद्धि 'अव्यवसायात्मिका' होती है। जिसमें समता को प्राप्त करने का, अपना कल्याण करने का ही उद्देश्य रहता है, वह बुद्धि 'व्यवसायात्मिका' होती है।

समता भी दो तरह की होती हैं– साधन रूप समता और साध्य रूप समता। साधन रूप समता अन्तःकरण की होती है और साध्य रूप समता परमात्म स्वरूप की होती है। सिद्ध–सिद्धि, अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि में सम रहना

अर्थात् अन्तःकरण में राग–द्वेष का न होना साधन रूप समता है।

अर्थात् समता ही योग है– इक्विलिब्रियम, संतुलन, संगीत। दो बीच चुनाव नहीं, दो के बीच समभाव, विरोधों के बीच चुनाव नहीं, अविरोध, दो अतियों के बीच, दो ध्रुवों के बीच पसन्द–नापसन्द नहीं, राग–द्वेष नहीं, साक्षी भाव।

इसीलिए कृष्ण कहते हैं– अर्जुन तू समत्व को उपलब्ध हो। छोड़ फिक्र सिद्धि की, असिद्धि की, सफलता – असफलता की, हिंसा–अहिंसा की, धर्म की – अधर्म की, क्या होगा – क्या नहीं होगा, तू अपने में खड़ा हो, तू जाग, तू जानकर द्वन्द्व को देख। तू समता में प्रवेश कर, क्योंकि समता ही योग है–

'बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सृकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगःकर्मसु कौशलम्।।'

– गीता – 2:50

समता एक ऐसी विद्या है, जिससे मनुष्य में रहता हुआ भी संसार से सर्वथा निर्लिप्त रह सकता है। जैसे कमल का पत्ता जल से ही उत्पन्न होता है और जल में ही रहता है, पर वह जल से लिप्त नहीं होता है, ऐसे ही समता युक्त पुरुष संसार में रहते हुए भी संसार से निर्लिप्त रहता है। पाप–पुण्य उसका स्पर्श नहीं करते अर्थात् वह पुण्य पाप से असंङ हो जाता है।

कर्मों में योग ही कुशलता है अर्थात् कर्मों की सिद्धि–असिद्धि में और उन कर्मों के फल की प्राप्ति–अप्राप्ति में सम रहना ही कर्मों की कुशलता है। उत्पत्ति विनासशील कर्मों में योग के सिवाय दूसरी कोई महत्व की चीज नहीं है।

कृष्ण कहते हैं– धनंजय अगर तू इस परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो योग सध गया समझ, फिर कुछ और साधने को नहीं बचता। सब सध गया, जिसने स्वयं को जाना। सब मिल गया, जिसने स्वयं को पाया। सब खुल गया, जिसने स्वयं को खोला। तो अर्जुन से वे कहते हैं– सब मिल जाता है, सब योग सांख्य बुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति को उपलब्ध है और योग कर्म की कुशलता बन जाती है। क्योंकि जो व्यक्ति भीतर से शान्त है और उसके भीतर मृत्यु न रही और जिसके भीतर अहंकार न रहा और जिसके भीतर असन्तुलन न रहा। जिसके भीतर समता हो गई और जिसके भीतर सब ठहर गया, मौन सब शान्त हो गया – उस व्यक्ति के कर्म में कुशलता न होगी, तो किसकी होगी?

भीतर जब शान्त है, सब मौन है तो अकुशलता आयेगी कहाँ से? अकुशलता आती है– भीतर की अशान्ति, भीतर के तनाव, भीतर की चिन्ता, भीतर के विषाद, भीतर गड़े हैं जो कांटे दुख के, चिन्ता के वे सब कंपा डालते हैं। उनमें से जो आह उठती है, वह बाह सब अकुशल कर जाती है।

जीवन के युद्ध में नहीं है प्रश्न। युद्ध भीतर है, वह है कष्ट। द्वन्द्व भीतर है वह है कष्ट। वहाँ निर्द्वन्द्वता, वहाँ मौन, वहाँ शान्ति, तो बाहर सब कुशल हो जाता है।

गीता को उपनिषदों का भी उपनिषद कहा गया है, क्योंकि इसमें श्रीकृष्ण समस्त उपनिषदों को दुहकर 'गीता' रूपी दूध अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति के लिए प्रस्तुत करते हैं। गीता मे समग्र व्यक्तित्व को गुणतीत, द्वन्द्वातीत, ज्ञानी, कर्मयोगी भक्त आदि विविध नामों से सम्बोधित किया गया है, जिसका सर्वांग सुन्दर विवेचन स्थितप्रज्ञ के रूप में मिलता है। महात्मा जी के शब्दों में इसका सार संक्षिप्त विवरण इस तरह से है– वह किसी के प्रति ईर्ष्या भाव नहीं रखता, वह करुणा से ओत–प्रोत है, वह अहंकार एवं स्वार्थ से रहित है, वह सर्दी–गर्मी एवं सुख – दुख को एक समान मानता है, इसके संकल्प अडिग होते हैं व तन तथा आत्मा परमात्मा के प्रति समर्पित होते हैं, उससे कोई भय नहीं खाता और न ही वह किसी से भयभीत होता है, वह शोक, हर्ष और भय से मुक्त होता है, वह हर कार्य में कुशल होता है किन्तु इनसे अप्रभावित रहता है। वह इसे अच्छे तथा बुरे दोनों तरह के फलों को त्याग देता है, मित्र एवं शत्रुओं से एक समान व्यवहार करता है, वह मान, अपमान, निन्दा, स्तुति आदि से विचलित नहीं होता, उसे शान्त एवं एकान्तता प्रिय होती है तथा उसकी विचारणा अनुशासित होती है।

भगवद्गीता में समग्र मनोव्यक्तित्व सम्बन्धी चा गुणों का अन्यत्र वर्णित उल्लेख इस तरह से है–

1. वह अपने आपमें सुख–संतोष व आनन्द को अनुभव करता है। 2. दुःख से प्रभावित नहीं होता और सुख की चाह नहीं करता। 3. इच्छा, भय और क्रोध से मुक्त होता है। 4. कर्म के फल की इच्छा नहीं रखता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता – 2 – 48।
2. श्रीमद्भगवद्गीता – 2 – 50।
3. योग वशिष्ठ – 6–1–1–16 ।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – 2 – 50।

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 23 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

बैंकिंग व वित्तीय सेवाओं में इन्टरनेट के प्रयोग से बदलता ग्रामीण परिवेश

– डॉ. राकेश कुमार
अभि. प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग,
रामसहाय राजकीय महाविद्यालय,
शिवराजपुर, कानपुर नगर – 209502
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
drrakeshkumarrawal77@gmail.com

सारांश

विश्व आर्थिक मंच मानता है कि फिजिटल एवं डिजिटल तरीकों के बीच संतुलन बिठाने वाली फिजिटल रणनीति नए दौरे में एकदम जरूरी बन रही है। इस लिहाज से नए उत्पाद तैयार करना और उत्पादों एवं सेवाओं की सरलीकृत आपूर्ति के लिए नियम आसान करना इस समय की जरूरत है। बैंक और निजी कम्पनियाँ भरोसा बढ़ाने तथा डिजिटल साक्षरता की समस्याए खत्म करने के लिए बैंकिंग करेस्पॉन्डेंटों और उपयोगकर्ताओं हेतु जागरूकता एवं प्रशिक्षण में निवेश कर सकते हैं। ऑफलाइन बैंकिंग के जरूरी पहलुओं को बरकरार रखते हुए ऑफलाइन से ऑनलाइन की दिशा में ले जाने वाले एकजुट प्रयास की जरूरत है। फिजिटल और डिजिटल को एक दूसरे का पूरक बनाने वाला मॉडल ही डिजिटल तथा वित्तीय रूप से सशक्त 'भारत' का रास्ता है।

प्रस्तावना–

इन्टरनेट और मोबाइल की बढ़ती पैठ के कारण ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय लेन देन में डिजिटल उपयोग लगातार बढ़ रहा है।

यह भारत नेट की चरणबद्ध सफलता से जड़ा है, जो दुनियाँ का सबसे बड़ा ग्रामीण ब्रॉडबैंक कनेक्टिविटी कार्यक्रम है। ग्रामीण भारत अब शहरी भारत के उलट अलग–थलग नहीं रह गया है और तेजी से इन्टरनेट की रफ्तार पकड़ रहा है। डिजिटल सेवाओं में वृद्धि ग्रामीण डिजिटल नागरिक के ऐतिहासिक उभार का प्रमाण है।

ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था मोटे तौर पर नकद से चलती है। ग्रामीण भारत में रोजगार तथा आय में विविधता बढ़ रही है, जिसमें मुख्य रूप से खेती पर आधारित होने की इसकी छवि बदल रही है। कृषि आय में अब दो–तिहाई योगदान गैर कृषि, क्षेत्र का है। पिछले कुछ वर्षो में बैंकिंग करेस्पॉन्डेंटो ने ग्रामीण क्षेत्रों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने में केन्द्रीय भूमिका निभाई है। वर्ष 2017 से डिजिटल एम्पावरमेट फाउण्डेशन (DEF) जमीनी स्तर पर डिजिटल वित्तीय साक्षरता एवं भागीदारी बढ़ाने के लिए बैकिंग करेस्पॉडेंटो के साथ काम कर रहा है। डिजिटल एम्पावरमेंट फाउंडेशन ने पूरे भारत में 2000 से अधिक डिजिटल संसाधन केन्द्र बनाए हैं।

डिजिटल सेवाओं के लाभ–

बैकिंग करेस्पॉन्डेंट के अनुसार– ''डिजिटल सेवाओं के फायदे के बगैर हमारी जिन्दगी अधूरी ही रहती है।''

आम ग्रामीण नागरिकों के लिए डिजिटल बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं के बहुत फायदे हैं। डिजिटल बैंकिंग सेवाओं की उपलब्धता ने ग्रामीण नागरिकों के बीच डिजिटल वित्तीय और बैंकिंग सेवाओं के व्यापक उपयोग को बढ़ावा दिया है। महामारी और लॉकडाउन के दौरान तो इसमें और भी इजाफा हुआ क्योंकि उस समय दूर जाना लगभग असंभव था।

डिजिटल भुगतान और बैंकिंग सेवाओं से सुविधा और लेन–देन से ग्रामीणों का जीवन अत्यधिक सुगम और सरल हो गया है क्योंकि किसी जिले में कई गाँवों के लिए बैंक की एक ही शाखा होती है और ज्यादातर गाँवों से दूर होती है। जिस अर्थव्यवस्था में एक–एक पाई मायने रखती हो, वहाँ बैंक से रकम लेने के लिए भी रकम खर्च करनी पड़ती थी।

ग्रामीण क्षेत्र में एटीएम तक दूर–दूर है। विश्व बैंक के अनुसार भारत के ग्रामीण इलाकों में देश के केवल 20 प्रतिशत एटीएम है। ए.ई.पी.एस. (AEPS) यानी आधार से चलने वाली भुगतान प्रणाली ने उन जैसे लोगो के लिए अपने सभी वित्तीय लेन–देन आसान बना दिया है। जिनके घरों से बैंक व ए.टी.एम. दूर थे।

लूटने और चोरी का डर नहीं–

ग्रामीण इलाकों में चोरी और लूटने का बहुत डर होता है। घर में नकद रखा है तो हमेशा होने का डर सताता रहता है या फिर बैंक से नकद निकाल कर लाने पर रास्ते मूं लुटने का भी डर रहता है।

जब से बैंकिंग व्यवस्था को इन्टरनेट से जोड़ दिया गया है, तब से चोरी और लुटने का भय मन मस्तिष्क से निकल गया है। अब तो प्रत्येक बैंक का अपना एप होता है साथ ही साथ इन्टरनेट बैंकिंग सुविधा जिससे धन का स्थानान्तरण बहुत आसान तथा सुरक्षित हो चुका है, आजकल डिजिटल युग का समय है अब गाँव–गाँव लोग इण्टरनेट सुविधा के माध्यम से बैंकिंग तथा वित्तीय लेन देन आसानी से करने लगे तथा उनके अन्दर एक अब पिछड़ेपन की भावना भी खत्म हो चुकी है क्योंकि आधुनिक समय में इन्टरनेट का प्रयोग हर व्यक्ति कर रहा है।

चौबीस घण्टे धन की उपलब्धता–

पहले जब बैंक की छुट्टी होती थी तब लोगों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता था। जैसे किसी के परिवार में किसी की अचानक तबीयत खराब हो गई तो घर पर नकद न होने के कारण बैंक की छुट्टी होने पर इलाज कराना अत्यन्त कठिन हो जाता था। किन्तु अब डिजिटल युग में यदि आपका खाता किसी भी बैंक में है और आपके पास आधार कार्ड या ए.टी.एम. कार्ड है तो भुगतान करने में या नकद धन निकालने में ग्रामीणों को कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है।

अब यदि कोई पैसा लाना भूल जाए या अचानक खरीदारी करनी पड़े तो बाजार में आराम से सामान खरीदा जा सकता है।

धन की आसान उपलब्धता–

बढ़ती जागरुकता और डिजिटल वित्तीय साक्षरता शिविरों ने डिजिटल वित्तीय प्रणालियों की सुगमता बढ़ा दी है गांव में पुरुश–महिलाएं बुजुर्ग और नौजवान अब सभी आसानी से फिंगर प्रिंट मशीन के माध्यम से धन की निकासी कर सकते है। कम पढ़े लिखे लोगों के लिए भी अब धन प्राप्त करना या निकालना आसान कर दिया है जिन लोगों के खाते आधार से जुड़े है वे अब अपने घर पर ही फिंगर प्रिंट मशीन के द्वारा अपने खाते से धन निकाल सकते हैं।

ग्रामीण को बैंक नहीं जाना पड़ता है और न ही अब बैंकों में भारी भीड़ होती है। डिजिटल युग में समय और आने–जाने पर होने वाले खर्च की भी बचत हुई है।

कारोबार और उद्यमियों को लाभ–

कोविड महामारी में लॉकडाउन के समय से ही लगभग सभी दुकानदारों ने क्यू.आर. कोड रख लिए है। डिजिटल भुगतान खरीदारी की, सुविधा को बढ़ावा देता है और उद्यमी को भी डिफाल्ट (जानबूझकर पैसा नहीं देना) के बगैर आसानी से भुगतान मिल जाता है।

ज्यादातर कारोबारी अपने लेनदारों (केडिटर्स) को बड़ी रकम का भुगतान करने में कठिनाई तथा असुरक्षा का भाव महसूस करते थे किन्तु अब वे इस भय से मुक्त होकर डिजिटल भुगतान करते हैं किराने की दुकान चलाने वाले, डेयरी या दर्जी की दुकान चलाने वाली कई महिला उद्यमी अपना धंधा बढ़ाने के लिए डिजिटल सेवाओं का इस्तेमाल करती हैं।

डिजिटल भारत शुरू करते समय इन्टरनेट और सर्वर कनेक्टिविटी नीति निर्माताओं के लिए सबसे बड़ी चिन्ता थी। शहरों के साथ–साथ गाँवो को इन्टरनेट और मोबाइल की पैठ सुनिश्चित करने के प्रयास किए गए।

कभी–कभार नेटवर्क और सर्वर की दिक्कत होती है। डिजिटल सफर की शुरुआत की तुलना में अब नेटवर्क कनेक्टिविटी सुधरी है।

ग्रामीण उपभोक्ताओं का डिजिटल लेन–देन से भरोसा उस समय खत्म हो जाता है, जब नेटवर्क या सर्वर की दिक्कतों के कारण ऑनलाइन लेन–देन के दौरान उनका पैसा बीच में ही अटक जाता है। उपभोक्ताओं के मन मे धोखाधड़ी का डर, डिजिटल प्रणाली के प्रति अविश्वास और इन्टरनेट को समझ कम होने से स्थिति पर प्रभाव पड़ता है।

ऑनलाइन शिकायतों का निवारण व्यवस्था–

जब इन्टरनेट की सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं थी उस समय बैकिंग ग्राहक अपनी समस्याओं के समाधान के लिए बैंक अधिकारियों से अपनी शिकायत करता था लेकिन कभी–कभी बैंक अधिकारी/ कर्मचारी शिकायतों का निवारण समय पर न ही करते थे जिस कारण बैंकिंग उपभोक्ताओं को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, किन्तु अब इन्टरनेट के युग में ऑनलाइन शिकायत कर अपनी समस्याओं से ग्राहक जल्द से जल्द समाधान पाता है।

धोखाधड़ी के शिकार–

डिजिटल भुगतान का प्रयोग बढ़ने के साथ ऑनलाइन धोखाधड़ी के मामले भी बढ़े हैं।

ठग स्वयं को बैंक अधिकारी बताकर भोले–भाले लोगों, आम तौर पर निरक्षण उपयोगकर्ताओं से गोपनीय जानकारी हासिल कर लेते हैं। अपने शिकार के खाते से वे बड़ी रकम निकाल लेते हैं या खाता खाली कर देते हैं। अधिकतर लोग प्रौद्योगिकी पर संदेह करते हैं और ऐसी घटनाएं उनका भरोसा और भी कम कर देती हैं।

महिलाओं द्वारा डिजिटल सुविधाओं का कम प्रयोग–

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा डिजिटल वित्तीय सेवाओं का कम प्रयोग किया जाता है। प्रथम तो यह कि ग्रामीण महिलायें अधिकांश कीपेड फोन का इस्तेमाल करती है और एण्ड्रायड फोन का प्रयोग पुरुष करते हैं।

डिजिटल सेवाओं का इस्तेमाल करने वालों में अधिकतर शिक्षित युवा स्नातक और कामकाजी महिलाएं ही थीं, जिसमें पता चलता है कि लड़कियों में शिक्षा की दर बढ़ रही है।

पुरुषों को वित्तीय तथा घर के अधिकार देने वाले पितृसत्तात्मक नियम डिजिटल बुनियादी ढाँचे और सेवाओं तक महिलाओं की पहुंच में बाधा बनते हैं।

'डिजिटल' बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं में नवाचार–

समय–समय पर बैंक, सरकारों और निजी संस्थानों में वित्तीय समावेशन के दो स्तम्भों की उपलब्धता एवं आपूर्ति पर काम करने का प्रयास किया हाल ही में वित्त मंत्री ने इंडियन बैंक्स एसोसिएशन से ग्रामीण भारत में बैंकिंग सेवाओं की पैठ बढ़ाने के तय करना चाहिए कि कहां उनकी शाखाएं होनी चाहिए और कहाँ डिजिटल सेवाएं दी जा सकती हैं।

विश्व आर्थिक मंच मानता है कि फिजिटल एवं डिजिटल तरीकों के बीच संतुलन बिठाने वाली फिजिटल रणनीति नए दौरे में एकदम जरूरी बन रही है। इस लिहाज से नए उत्पाद तैयार करना और उत्पादों एवं सेवाओं की सरलीकृत आपूर्ति के लिए नियम आसान करना इस समय की जरूरत है। बैंक और निजी कम्पनियाँ भरोसा बढ़ाने तथा डिजिटल साक्षरता की समस्याए खत्म करने के लिए बैंकिंग करेस्पॉन्डेंटों और उपयोगकर्ताओं हेतु जागरूकता एवं प्रशिक्षण में निवेश कर सकते हैं।

ऑफलाइन बैकिंग के जरूरी पहलुओं को बरकरार रखते हुए ऑफलाइन से ऑनलाइन की दिशा में ले जाने वाले एकजुट प्रयास की जरूरत है।

फिजिटल और डिजिटल को एक दूसरे का पूरक बनाने वाला मॉडल ही डिजिटल तथा वित्तीय रूप से सशक्त 'भारत' का रास्ता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. योजना अप्रैल, 2022।
2. इकोनोमिक टाइम्स डॉट इंडिया टाइम्स डॉट कॉम।
3. बिजिनेस–स्टैन्डर्ड डॉट कॉम।
4. हेल्प इंडिया–सरल–पॉपुलेशन–गो–डिजिटल।
5. https:drive.google.com/file/d/jn3-f44wo-z5kl4 - dlemotwzjsserne5d/view.

◈◈

ISSN : 2394-4366

Received: 24 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

21वीं सदी में भारत–अमेरिका रक्षा एवं सामरिक सम्बन्ध

– डॉ. अनिल कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर – रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग,
डी. ए. वी. कालेज, कानुपर – 208001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
anilsingh7.kanpur@gmail.com

सारांश

शीत युद्ध के दौरान भारत–अमेरिका के बीच अति खराब रहे रक्षा सम्बन्ध अब धीरे–धीरे सुधर रहे हैं। यह दोनों देशों की सामरिक साझेदारी का अति महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। हालांकि दोनों देशों के बीच पहले भी रक्षा सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया लेकिन शीत युद्ध के अन्त के बाद बदली हुई परिस्थितियों ने इस दिशा में काम किया। इस समय पाकिस्तानी कारक व सोवियत संघ कारक समाप्त हो चुके थे तथा सामरिक व सैन्य समीकरण बदले नजर आ रहे थे। इस कारण से भारत व अमेरिका सैन्य सहयोग के क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से पास आए परन्तु पूर्व में विद्यमान आपसी शंका व विरोधाभास को दूर करना आवश्यक था। दोनों देशों के मध्य ऐसे कुछ समझौते हुए जो महत्वपूर्ण थे। इस दिशा में 1991 का Kicklighter Proposal महत्वपूर्ण रहा। इसमें निम्न चीजें सम्मिलित थीं–

☛भारत व अमेरिका के सैन्य प्रमुख एक दूसरे के यहाँ का दौरा करेंगे।

☛भारत व अमेरिकी सामरिक सिम्पोजियम में दोनों देशों की सेनाओं की भागीदारी जारी रखना। जो भारत–अमेरिका के सुरक्षा सम्बन्ध की वर्तमान स्थिति तथा भविश्य की संभावनाओं पर वार्ता का मंच उपलब्ध करती है।

☛भारतीय व अमेरिकी सेना के लिए 'एक्सक्यूटिव स्टियरिंग काउंसिल' की स्थापना हो जो लक्ष्य व उद्देश्यों की समीक्षा व उसे पुनः परिभाषित करें, जिससे भविष्य में सामरिक योजना में दोनों सेनाओं में अधिक सहयोग व विचार–विमर्श हो सके।

☛वरिष्ठ अधिकारियों व स्टाफ की एक दूसरे के यहाँ यात्रा, जिसमें समान उद्देश्य के लिए सूचनाओं व दृष्टिकोणों का आदान–प्रदान हो सके।

☛कमाण्डर्स, लीडर्स व स्टाफ आफिशियल की व्यक्तिगत ट्रेनिंग की व्यवस्था हो।

☛एक दूसरे के साथ कार्य करने की क्षमता को बढ़ाने के लिए रीजनल कान्फ्रेंस में पारस्परिक सहभागिता पर जोर दिया गया।

भारत व अमेरिका ने इस दिशा में आगे बढ़ते हुए धीरे–धीरे कदम उठाए, जो 1990 के दशक व नई शताब्दी में भारत अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जनवरी, 1992 में एक आर्मी ''एक्सक्यूटिव स्टिरिंग ग्रुप'' (ESG) की स्थापना की गई और मार्च, 1992 में अगस्त, 1993 में क्रमशः नौसेना व वायुसेना को इसमें शामिल किया गया। इसकी वजह से दोनों देशों की सेनाओं के मध्य अभ्यास का एक नियमित क्रम शुरू हुआ। फरवरी, 1992 में पहली बार भारत, अमेरिका थल सेना व वायु सेना ने संयुक्त अभ्यास किया। 2002 में भी दोनों देशों की सेनाओं ने गर्मी में आगरा में तथा अक्टूबर में पहली बार अमेरिका की धरती पर अलास्का में सैन्य अभ्यास किया। अमेरिकी धरती पर किए गए अभ्यास का नाम 'जेरोनिमों थ्रस्ट'

दिया गया।[1] इसी प्रकार दोनों देशों की नौसेना ने भी सितम्बर, 2002 में भारत के कोच्ची में अब तक का अपना सबसे बड़ा अभ्यास किया।

भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग की एक महत्वपूर्ण घटना तब हुई, जब जनवरी 1995 में– 'एग्रीड मिनट्स ऑन डिफेंस रिलेशन बिटविन दी यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड इण्डिया' पर हस्ताक्षर किया गया। इस सैन्य सहयोग के तहत एक दूसरे की सेवाओं व असैनिक स्तर पर सहयोग के साथ–साथ सैन्य उत्पादन व अनुसंधान में सहयोग की बात की।

आपसी सहयोग व वार्ता को और गति प्रदान करने के लिए तीन विभिन्न ग्रुपों की भी स्थापना की गई ''डिफेंस पॉलिसी ग्रुप'' (DPG), ''ज्वाइन्ट टेकिनकल ग्रुप'' (JTG) और ''ज्वान्इट स्टियरिंग कमेटी'' (JSC)। डी.पी.जी. ने सैन्य सहयोग के मुद्दों के साथ–साथ संवेदनशील मुद्दों सी. टी. बी. टी. व कश्मीर को भी देखा। जे.एस.सी. ने संयुक्त अभ्यास के साथ–साथ व्यक्तिगत् वार्ता और सूचनाओं के आदान–प्रदान से अपने को सम्बद्ध रखा। दूसरी तरफ जे. टी. जी. में डिफेंस टेनोक्रेटस और सैन्य अनुसंधान से सम्बद्धित मुद्दों पर वार्ता होती है।

भारत व अमेरिकी डिफेंस पालिसी ग्रुप की बैठक 1998 में भारत द्वारा परमाणु विस्फोट के बाद बन्द हो गयी थी जो दिसम्बर 2001 से पुनः शुरू हो गयी है। शीत युद्ध के अन्त के उपरान्त तथा अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद अमेरिका की सामरिक जरूरतें बदली है। इस परिप्रेक्ष्य में एशिया में एक दूसरे के सामरिक हितों को देखते हुए तथा इस समय तेजी से उभरे आतंकवाद से निपटने के लिए भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सम्बन्धों को और प्रगाढ़ करने की जरूरत है तथा विभिन्न स्तरों पर चल रही वार्ताओं से इस दिशा में आगे बढ़ने के संकेत मिल रहे हैं किन्तु अभी भी अमेरिका, पाकिस्तान व चीन के प्रति कोई निश्चित नीति नहीं अपना पा रहा है, जिससे एशिया में अपने सामरिक हितों को देखते हुए भारत के साथ सैन्य सहयोग व सम्बन्धों को अपेक्षित गति नहीं मिल रही है।

यद्यपि भारत व अमेरिका ने विभिन्न स्तरों पर पारस्परिक सम्पर्क को बनाए रखने की शुरुआत कर दी है। जिससे एक दूसरे को समझने का अच्छा अवसर मिला तथा सहयोग के नए क्षेत्रों को चुनने व उनके विकास के लिए मदद मिल रही हैं। भारत–अमेरिकी ''डिफेंस टेक्नोलाजी कोआपरेशन'' ने तीन मिशन एरिया की पहचान की है, जो इस प्रकार है– वायुयान तकनीक, तीसरी पीढ़ी का एंटी टैंक सिस्टम तथा परीक्षण स्थल का मशीनीकरण व मानव शक्ति का प्रशिक्षण। भारत व अमेरिका ने अब सेनाओं के तीनों अंगों में सहयोग की नीति अपनाई है।

भारत पर परमाणु विस्फोट के बाद लगे प्रतिबन्धों के समाप्त होने से दोनों देशों बीच फिर सैन्य सहयोग शुरू हुआ है। रक्षा प्रतिबन्धों के तीन साल बाद अमेरिका ने कहा कि उसने भारत के रडार, हल्के लड़ाकू विमानों के उपकरण और अन्य सैनिक साजो समान खरीदने के सात प्रस्तावों की मंजूरी दे दी तथा भारत व अमेरिका ने रक्षा आपूर्ति सम्बन्धों को बरकरार रखने के लिए 'रक्षा सहयोग समूह' गठित करने पर सहमति जतायी।[2] इसके साथ ही साथ भारत ने 2001 में जनरल सिक्योरिटी ऑफ मिलेट्री इन्फॉरमेशन एग्रीमेन्ट (GSOMIA) पर हस्ताक्षर कर मतभेद कम किया ।

इन सम्बन्धों को आगे बढ़ाते हुए बुष प्रशासन ने भारत को 146 मिलियन डालर मूल्य के आठ AN/TPQ.37 फायर फाइटर वेपन लोकेटिंग रडार सिस्टम बेचने का निर्णय किया था। इसके साथ ही साथ अमेरिका ने 2002 के बजट में 75 मिलियन डालर करने का निश्चय किया।[3] तथा अब अमेरिका को भारत द्वारा इजराइल से सैन्य उपकरणों की खरीद पर की जा रही आपत्ति में कमी आई है।

अमेरिका ने अब भारत के साथ तकनीक हस्तान्तरण व सैन्य उपकरणों के बिक्री की दिशा में सकारात्मक कदम उठाया है परन्तु अमेरिका कुछ क्षेत्रों में भारत को परिसीमित करने की अघोषित नीति चलाता रहा है और नए बुष प्रषासन द्वारा अपनाई जा रही आक्रामक विदेष नीति के अन्तर्गत भी कुछ मुद्दों पर असहयोग के स्वर उभरे हैं। यद्यपि अब भारत की सामरिक स्थिति का आकलन करते हुए अमेरिका इसे अपने हित में उतने आक्रामक ढंग से नहीं उठाएगा जिस प्रकार वह पूर्व में उठाता रहा है।

1974 के परमाणु परीक्षण व 1980 के दशक में मिसाइल विकास कार्यक्रम के कारण भारत इंटरनेशनल कंट्रोल रिजीम का एक लक्षित देश रहा है। इसके तहत एन.पी.टी., सी.टी.बी.टी., जैगर कमेटी, लंदन क्लब या न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप (NSG), एम.टी.सी.आर और आस्ट्रेलिया ग्रुप आते हैं। इनके तहत भारत पर समय–समय पर दबाव डाला जाता रहा है तथा इनका

इस्तेमाल भविष्य में भी किया जा सकता है लेकिन हाल में ही 2016 में अमेरिका द्वारा NSG तथा एम. टी. सी. आर. ग्रुप में भारत की सदस्यता का समर्थन किया जाना यह दर्शाता है कि अमेरिका के साथ भारत का रक्षा सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में नाभिकीय मुद्दे पर थोडी शिथिलता है। अमेरिकी सीनेट ने स्वयं सी.टी.बी.टी. का अनुमोदन नहीं किया है। वह स्वयं एन.एम.डी. के मुद्दे पर गंभीर है तथा उसे अपनाने के प्रति प्रतिबद्ध है। एन.एम.डी. के कारण तत्कालीन राष्ट्रपति बुश ने कहा कि हम अपनी नाभिकीय शक्ति के चरित्र अर्थात् उसके आकार को बदल सकते है और बदलेंगे, जिससे यह लगे कि शीत युद्ध का अन्त हो चुका है। उनका कहना है कि हम निश्चय ही शस्त्र नियंत्रण को एक तरफ नहीं रख रहे है। हमारा विश्वास है कि अप्रसार नीति एक महत्वपूर्ण सफलता है और उस सफलता को हमे संरक्षित रखना चाहिए तथा उसे शक्ति प्रदान करनी चाहिए।[4] भारत के प्रधानमंत्री का कहना है कि हम यह विश्वास करते हैं कि एक विश्वसनीय न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध क्षमता हमारी प्राथमिक सुरक्षा छतरी है, जो हमें अपने लोगो को देकर उन्हें अनुग्रहीत करना है। इसके साथ ही साथ इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है कि एक सार्वभौम एवं भेद–भाव विहीन नाभिकीय निरस्त्रीकरण होना चाहिए।[5]

भारत ने अमेरिका के राश्ट्रीय मिसाइल विकास कार्यक्रम (NMD) पर सकारात्मक प्रतिक्रिया देते हुए अपने न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध क्षमता बनाए रखने की बात की। 1998 के परमाणु परीक्षण के उपरान्त भारत नाभिकीय शस्त्र युक्त राज्य (State with Nuclear Weapons) के रूप में उभरा जो नाभिकीय शस्त्र वाले राज्य व गैर नाभिकीय शस्त्र वाले राज्य (NON-NWS) से अलग तृतीय श्रेणी के है। भारत व अमेरिका के बीच वार्ताओं के विभिन्न दौरों के बाद अमेरिका भारत की वर्तमान नाभिकीय क्षमता पर सहमत होता दिख रहा है। भारत का अप्रसार के सम्बन्ध में भी अच्छा रिकार्ड है, उसने दूसरे किसी देश को नाभिकीय शस्त्र के सम्बन्ध में सहायता नहीं उपलब्ध करायी है। अतः भारत द्वारा नाभिकीय षक्ति की आवश्यकता मुख्य रूप से चीन के कारण अपरिहार्य है। भारत की इस सामरिक आवश्यकता को समझने की आवश्यकता है।

अतः अमेरिका द्वारा नाभिकीय मुद्दों को राजनीतिक रूप से प्रयोग करने की पूर्व नीति में बदलाव की संभावना है। यह मुद्दा सैन्य सहयोग व तकनीक हस्तांतरण में भी मुख्य बाधा बनता रहा है। नए परिवेश में भारत व अमेरिका के बीच अप्रसार के मुद्दे पर वार्ताओं का दौर अभी चलने की सम्भावना है, परन्तु द्विपक्षीय सम्बन्धों में बाधा के रूप में इसके पूर्व की तरह आने की आशंका कम है।

भारत के 1974 के परमाणु परीक्षण का प्रभाव जैसे यू. एस. एक्सपोर्ट कंट्रोल पॉलिसी पर पड़ा। उसी प्रकार भारत के अंतरिक्ष व मिसाइल कार्यक्रम ने अमेरिका के अंतरिक्ष और मिसाइल तकनीक नियंत्रण पर प्रभाव डाला तथा उसे क्रियाशील करने में प्रेरक का काम किया। इन सब का परिणाम एम.टी.सी.आर. के रूप में सामने आया। एम.टी.सी.आर. की उत्पत्ति सात प्रमुख औद्योगिक राज्यों (G-7) की चार वर्षों की गुप्त वार्ता का प्रतिफल थी।[6] इसकी औपचारिक घोषणा 1987 में हुई और इसने भारत अमेरिका के सैन्य सम्बन्ध व तकनीक हस्तान्तरण में बाधा उत्पन्न की।

एम. टी. सी. आर. अमेरिका के प्रक्षेपास्त्र अप्रसार व्यवस्था का मुख्य स्तम्भ है जो इस शंका पर आधारित है कि तीसरे विश्व के देशों को अंतरिक्ष व मिसाइल तकनीक के मिलने से यह अमेरिका के आर्थिक व सैन्य हितों को नुकसान पहुँचा सकते हैं। अतः इस प्रकार तकनीक के प्रसार को रोका जाए तथा उस पर नियंत्रण स्थापित किए जाए। एम. टी. सी. आर. नियंत्रण के तहत दो प्रकार की श्रेणी निर्धारित की गई, जिसके अन्तर्गत आने पर अमेरिका व पश्चिमी देश प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। एम. टी. सी. आर. के तहत पहला सार्वजनिक कार्य कोन्डारे–II वैलिस्टिक मिसाइल कार्यक्रम को स्थगित करना था। अर्जेन्टीना के इस कार्यक्रम के स्थगन के बाद भारत के मिसाइल कार्यक्रम पर दबाव बढ़ गया। इसके विपरीत इजराइल इस दबाव से मुक्त था क्योंकि उसका अमेरिका से महत्वपूर्ण सामरिक गठजोड़ था। अतः उसने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष ढंग से अमेरिका, फ्रांस व पश्चिमी देशों से नाभिकीय व मिसाइल तकनीक प्राप्त की थी।[7] अमेरिका ने चीन व पाकिस्तान के सन्दर्भ में भी एम. टी. सी. आर. के तहत कार्यवाही नहीं थी, जब कि भारत के असैनिक अंतरिक्ष कार्यक्रम व वैलेस्टिक मिसाइल कार्यक्रम पर इसका असर पड़ा।

एम. टी. सी. आर. के कारण अमेरिका ने भारत को उच्च तकनीक में निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया तथा दूसरे

देशों पर भी इसके लिए दबाव डाला। इससे भारत के विभिन्न सुरक्षा व अन्तरिक्ष कार्यक्रमों के पूर्ण होने में देरी हुई परन्तु इसका एक लाभ यह रहा कि भारत ने उन तकनीकों का स्वदेश में ही निर्माण शुरू किया। इस प्रकार के प्रतिबन्ध से अमेरिका अपने सामरिक व आर्थिक हितों की पूर्ति करता है।

भारत ने अपने सुरक्षा वातावरण को देखते हुए ही मिसाइल विकास कार्यक्रम बनाया। चीन द्वारा मिसाइलों के सतत् विकास व तिब्बत में भारत को ध्यान में रखकर की गई उनकी तैनाती व इसके रेंज में सम्पूर्ण भारत का आना उसकी सुरक्षा के लिए खतरा है। अतः भारत द्वारा अपने अन्तरिक्ष व मिसाइल कार्यक्रमों का विकास उसकी आवष्यकता है। एम. टी. सी. आर. पर कोई अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक बाध्यता नहीं है। इसके पीछे कोई अन्तर्राष्ट्रीय संधि या संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई प्रस्ताव नहीं है। अतः चीन के सन्दर्भ में अमेरिका व भारत के सामरिक हित में जुड़ाव के कारण इस पर अमेरिका के जोर न देने की आषा की जाती रही है इसके साथ ही साथ भारत द्वारा अन्तरिक्ष क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने व अपनी इस क्षमता का व्यावसायिक प्रयोग करने पर अमेरिका अपने आर्थिक हितों को नुकसान होने की आषंका में एम. टी. सी. आर. पर जोर देता रहा।

उपर्युक्त प्रयासों के तहत द्विपक्षीय सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने की दिषा में महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए रक्षामंत्री श्री प्रणव मुखर्जी और अमेरिकी समकक्ष श्री डोनाल्ड रम्सफील्ड ने 28 जून, 2005 को वाशिंगटन स्थिति अमेरिकी रक्षा मंत्रालय 'पेटांगन' के कार्यालय अर्लिगटन (वर्जीनिया) में दस वर्षीय रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किये। समझौते में दोनों देशों की सुरक्षा मजबूत करने, सामरिक साझेदारी प्रगाढ़ बनाने तथा रक्षा प्रतिष्ठानों के बीच अधिक समय विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके अन्तर्गत ''प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण'' सैन्य महत्व की समाग्रियों के संयुक्त उत्पादन, प्रक्षेपात्र निर्माण, रक्षा के क्षेत्र में शोध और विकास आदि मुद्दों को प्राथमिकता दी गई। अधिकारिक वक्तव्य में दोनों पक्षों ने सहमति जताई कि भारत और अमेरिका के रक्षा सम्बन्ध उनके रूपान्तरित होते द्विपक्षीय सम्बन्धों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। साथ ही यह भी कहा गया कि हमारे साझा सिद्धान्तों और साझा राष्ट्रीय हितों को प्रतिबिम्बित करने के लिए हमारे सम्बन्धों का रूपान्तरण करते हुए भारत और अमेरिका दोनों एक नये युग में प्रवेश कर रहे है। इसमें कहा गया कि रक्षा सम्बन्ध भारत और अमेरिका की व्यापक साझेदारी (Brooder U.S. India Stratagic Partnership) का अंग होगा और इसको समर्थन देगा।[8] साथ ही समझौते में यह भी कहा गया है कि भारत–अमेरिका रक्षा सम्बन्ध जिन साझा हितों से प्रेरित है वे हैं –सुरक्षा एवं स्थायित्व आतंकवाद एवं उग्र धार्मिक अतिवाद का मुकाबला, सामूहिक जनसंहार के अस्त्रों पर रोक और भूमि, समुद्र एवं वायु मार्ग से व्यापार के मुक्त प्रवाह की सुरक्षा।

रक्षा सम्बन्धों के इस प्रारूप में कहा गया है कि भारत–अमेरिका राजनीतिक रक्षा सम्बन्धों को निर्देशित करने में रक्षा नीति समूह (Defence Policy Group) प्रमुख मशीनरी होगा। डी. पी. जी. के कामकाज की मध्यावधि समीक्षा के लिए एक संयुक्त कार्यदल (JWG) का गठन किया जायेगा। दोनों देशों के रणनीतिक रक्षा सम्बन्धों की गहराई एवं विस्तार के दृष्टिगत दोनों देशों के बीच रक्षा खरीद एवं उत्पादन समूह (डिफेंस प्रोक्योरमेन्ट एवं प्रोडक्ट्स ग्रुप) के गठन की बात भी इस प्रारूप में कही गयी है। संयुक्त सामरिक कार्यदल (DJWG) रक्षा नीति समूह के अधीन होगा और वर्ष में एक बार इसकी बैठक होगी, जिसमें रक्षानीति समूह एवं इसके उप समूहों (रक्षा खरीद एवं उत्पादन समूह, संयुक्त तकनीक समूह, सैन्य सहयोग समूह, वरिष्ठ तकनीकी सुरक्षा समूह) के कार्यो की समीक्षा की जायेगी और रक्षानीति समूह की वार्षिक बैठक के विषयों सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों पर मार्ग दर्शन के लिए डी. पी. जी. एवं इसके उपसमूह इस रक्षा प्रारूप पर निर्भर रहेंगे और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करेंगे।[9]

2002 में अमेरिका ने भारत को 12 रेथन निर्मित हथियार बेंचे जिसकी कीमत 200 मिलियन अमेरिकी डालर थी तथा 2005 में भारत और अमेरिका ने एक ऐतिहासिक सैन्य समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके मुताबिक पहली बार संयुक्त रूप से शस्त्र उत्पादन शुरू हुआ। इस समय भारत का प्रतिरक्षा बजट 16.47 अरब पहुँच गया। इसी तरह 2007 में भारतीय नौसेना ने 48 मिलियन अमेरिकी डालर की लागत से यू. एस. ट्रेटंन की खरीद की थी। ट्रेटंन एक लैंटिन जलयान है जो अमेरिका के पास है, अमेरिका निर्मित इस जलयान अब भारतीय नौसेना के भी पास है।[10]

वर्ष 2008 में भारत को 48.23 मिलियन अमेरिकी डालर मूल्य के एम्फीबियन यातायात जलयान यू. एस.

ट्रेटंन के साथ 39 मिलियन डालर मूल्य के 6 लाक हीड सी 130 जे सुपरहर कलिस सैन्य परिवहन विमान बेचने की मंजूरी मिली। इससे पहले भारत ने अमेरिका के उस प्रस्ताव को खारिज कर दिया था, जिसमें उसने 133 मिलियन डॉलर की लीज पर भारत को पी–3 सी ओरियन रिकानेसेंस एयरक्राफ्ट बेचने का निर्णय किया। वर्ष 2009 में अमेरिका के विदेश मंत्री श्रीमती हिलेरी क्लिंटन की भारत यात्रा के दौरान विदेश मंत्री एस. एम. कृष्णा के साथ एक संवर्धित सामरिकी भागीदारी का निर्माण करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की जिससे हमारे समय की निर्णायक चुनौतियों का समाधान प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। वर्ष 2005 के रक्षा सहयोग करार की रूपरेखा के तहत रक्षा क्षेत्र में संवर्धित सहयोग पर गौर करते हुए दोनों विदेश मंत्रियों ने रक्षा उपकरणों के लिए अन्तिम प्रयोग प्रबन्धन करार पर सहमति हुए। इसका यह नतीजा रहा कि मार्च, 2009 में भारत ने अपनी नौसैनिक क्षमताओं को बढ़ाने के वास्ते अमेरिका के साथ 2.1 बिलयन कीमत की आठ बोइंग पी–81 विमानों को भारतीय जलसेना को बेचने की अनुमति मिली है। इस तरह पी–81 लांग रेंज मारीटाइम रिकानेसेंस (एल. आर.एम. आर.) एयरक्राफ्ट खरीदे जाने हैं। इसकी पहली खेप औपचारिक समझौता होने के 4 वर्षों के बाद मिलेगी और शेष वर्ष 2015 तक प्राप्त हो सकेंगे। सामरिक महत्व को देखते हुए भारत रूस के 8 वर्ष पुराने अत्यधिक ईधन खपत पोल टोपोलोव–142 एम. एस. के स्थान पर एल. आर. एम. आर. को अपनी नौसेना में शामिल करना चाहता है। एल. आर. एम. आर. पी–81 एयरक्राफ्ट के रूप में भारत के लिए अधिक महत्वपूर्ण होगें। ये बोइंग 737 व्यवसायिक एयरलाइन पर आधारित एयरक्राफ्ट है जिन पर रडार लगे हुए है। इसके प्राप्त होने से भारतीय नौसेना की समुद्री निगरानी की क्षमता 600 नाटिकल मील तक बढ़ जायेगी। अभी तक नौसेना के लिए इस प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय नौसेना 1600 करोड़ रुपये मूल्य के 6 नये मध्यम दूरी मारीटाइम रिकानेसेंस भी प्राप्त करना चाहती है। इनका उद्देश्य सम्पूर्ण हिन्द महासागरीय क्षेत्र में ''थ्री सर्वेलियंस ग्रिड'' स्थापित करना है। 2008 में एल. आर. एम. आर. समझौते के अलावा हाल के वर्षों में अमेरिका ने भारत के साथ कई बड़े समझौते किये हैं।[12]

अमेरिका अभी तक सैन्य हथियार एंव उससे जुड़े उपकरणों की भारत को दी जाने वाली आपूर्ति में काफी पीछे है जब कि रूस प्रतिवर्ष 1.5 अरब डालर मूल्य तथा इजराइल 1 अरब डालर मूल्य के हथियार भारत को बेचते है। मुम्बई में हुए आतंकी हमलों ने अमेरिका के साथ भारत के सम्बन्धों को बढ़ाने की आवश्यकता बढ़ा दी है।

अमेरिका के पूर्व राजनयिक और विद्वान टेरेसिटा और हावर्ड शेफर कहते हैं वर्ष 2013 में अमेरिका भारत के बीच राजनीतिक वार्ता में कुछ ऐसे नीतिगत परामर्श को भी शामिल किया गया जो दक्षिण एषिया से बाहर के लिए भी राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण था। इस बात का कोई शक नहीं कि आज दोनों देश एक दूसरे की चिंताओं के भागीदार बन रहे हैं, मसलन, ईरान से तेल आयत बन्द करने के मामले में अमेरिका भारत के प्रति अपने रुख में नरमी ला रहा है। अमेरिका ने पाकिस्तानी सैन्य अधिकारियों से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अफगानिस्तान में भारत के राजनीतिक हित की अनदेखी नहीं की जा सकती।

मौजूदा परिदृश्य खासतौर से भारत के सन्दर्भ में दिखे तो चीन और पाकिस्तान के बीच घनिष्ठ सुरक्षा सहयोग विशेषकर अमेरिका पाकिस्तान के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धों के बाद और पाकिस्तान, चीन द्वारा एक राष्ट्रीय आर्थिक कारीडोर की घोषणा के बाद आने वाले कुछ दशकों के लिए पूरे क्षेत्र में शक्ति सन्तुलन और भू–राजनीति का पूरा परिदृश्य बदलता दिखाई दे रहा है। मई 2013 में चीन कशगर से लेकर अरब सागर में ग्वादर पोर्ट को जोड़ने के लिए 18 बिलियन डालर खर्च करने की घोषणा की। भारत की सीमा में अप्रैल, 2013 में चीन की पी. एल. ए. की घुसपैठ रोकने की आशंका को बढ़ावा दे रही है, पी. एल. ए. की घुसपैठ की जवाबी कार्रवाई के बाद भारत सरकार ने पूर्वोत्तर में चीन का मुकाबला करने के लिए एक नई कोर तैयार करने के लिए 64 हजार करोड़ रुपये (लगभग 10 बिलियन अमेरिकी डालर) खर्च करने की घोषणा की। इस नई पहल के तहत भारत ने फ्रेंच से 10 बिलयन डालर की कीमत का 126 राफेल बहु उपयोगी लड़ाकू विमान खरीदने का फैसला किया है इस क्रम में उसने अमेरिका की पेशकश को यह कहते हुए ठुकरा दिया कि उसकी शस्त्र नीति राजनीति के बजाय अपने मुख्य उद्देश्यों से प्रभावित होती है। हालांकि अमेरिका को यह उम्मीद नहीं थी कि भारत उसकी कम्पनियों की पेशकश को ठुकरा देगा। लेकिन इससे भारत–अमेरिका सैन्य समझौते पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। भारत ने अमेरिका से

हाल ही में 2 बिलियन अमेरिकी–डालर का भी पी–81 सबमैरिन हंटर और 5.8 बिलयन डॉलर का सी–17 ग्लोबल मास्टर 3 प्राप्त किया।

इस सबके बीच सारे घटनाक्रम अमेरिकी कम्पनियों के इर्द–गिर्द ही घूम रहे थे, इनका फायदा उठाने के लिए भारत सरकार ने सैन्य क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा बढ़ाकर 49 फीसदी कर दी, ताकि अमेरिकी कम्पनियाँ भारत में सैन्य क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा निवेश को और भारत के सैन्य क्षेत्र के आधुनिकीकरण मे सहायता मिले, जो कि इससे पहले काफी धीमी गति से चल रहा था। यदि सब कुछ अपने निर्धारित अनुमान के मुताबिक चलता रहा है तो अमेरिका जल्द ही सैन्य उपकरण के मामले में रूस की जगह ले लेगा तथा भारत–अमेरिका के बीच राजनीतिक साझेदारी को एक नई ऊँचाई प्राप्त होगी। इसका सकारात्मक पहलू तब देखने को मिला जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपनी तीसरी अमेरिकी और यू. एन. यात्रा 23–28 सितम्बर, 2015 से ठीक पहले अमेरिका के साथ 18 सितम्बर, 2015 को 3 बिलियन डालर की कीमत वाली चौपर सौदे पर मुहर लगाई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अमेरिका रूस और इजराइल दोनों को पीछे छोड़ दिया है जो पिछले कई सालों से भारत के सबसे बड़े रक्षा सामानों के सप्लायर थे। आज तक अमेरिका के साथ तकरीबन 13.6 बिलियन डालर की कीमत का रक्षा सौदा हो चुका है अगर यही सिलसिला जारी रहा तो आने वाले सालों में इसके कई गुना और बढ़ जाने की सम्भावना है।

भारत–अमेरिका रक्षा सहयोग–

संयुक्त राज्य अमेरिका वैष्विक महाशक्ति है, जो रक्षा पर लगभग एक तिहाई वैश्विक व्यय खर्च करता है ये दोनों बातें इसके प्रौद्योगिकी उत्कर्ष के साथ मिलकर रक्षा क्षेत्र में सहयोग के लिए अमेरिका को सबसे महत्वपूर्ण देश बना देती हैं। इस एक साल के दौरान, भारत और अमेरिका ने रक्षा के क्षेत्र में मजबूत सहयोग के लिए एक नई रूपरेखा वाले समझौते पर हस्ताक्षर किया ''रक्षा रूपरेखा समझौता'' भारत की रक्षा क्षमता बढ़ाने के लिए उचित उपायों पर केन्द्रित है। जनवरी, 2015 में अमेरिकी राश्ट्रपति की यात्रा के दौरान 10 वर्षीय रक्षा रूपरेखा समझौते का नवीनीकरण किया गया तथा जून 2015 में अमेरिकी रक्षा सचिव ऐश कार्टर भारत के दौरे के दौरान इस समझौते पर औपचारिक तौर पर हस्ताक्षर किये। इस यात्रा ने संयुक्त रूप से जैविक और रासायनिक युद्ध के खिलाफ सैनिकों के लिए सुरक्षात्मक तैयारी करने के लिए एक सौदे पर तथा ऊर्जा उत्पादन के लिए एक अन्य सहमति पर भी मुहर लगी।[13]

दोनों देशों के बीच रक्षा संधियों के विस्तार के लिए आयोजित भारतीय नेताओं के साथ वार्ता को लेकर भी परियोजनाओं की मंजूरी दी गई। अमेरिका ने सैन्य प्रौद्योगिकी के संयुक्त विकास का उत्पादन की पेशकश की है। दोनों परियोजनाएं सैनिकों के लिए सुरक्षात्मक आवरण के साथ–साथ युद्ध क्षेत्र के लिए उन्नत ऊर्जा स्रोत को विकसित करने पर केन्द्रित है। दोनों देशों द्वारा समान रूप के 10 लाख डालर का वित्तीय साझेदारी की जाऐगी। दो अन्य परियोजनाएं रक्षा प्रौद्योगिकी तथा व्यापार पहल के अन्तर्गत हैं, जिन्हें कार्टर ने स्वयं रक्षा मंत्री बनने से पहले ही शुरू की थीं और ये दोनों परियोजनाएं सी–130 जे सैन्य परिवहन विमान के रेवेन मिनी यू.ए.वी. और निगरानी मॉड्यूल से सम्बन्धित हैं। लगभग तीन दशक पहले ब्रिटेन से हासिल किये गये तथा पुराने होते मालवाहक विमान की जगह नई तकनीक से बनाए जा रहे मालवाहक विमान के लिए भारत अमेरिकी विमान लांच प्रौद्योगिकी पर नजर गड़ाए हुए हैं।[14]

इसी बीच मंत्री पारिंकर और कार्टर जरे के बीच जेट इंजनों हवाई जहाजों वाहकों की डिजाइन और निर्माण और दूसरे क्षेत्रों में सहयोग को आगे ले जाने के लिए बातचीत को तेज करने पर सहमति हुई। दोनों सह विकास और सह उत्पादन प्रोजेक्टों पर काम करने पर सहमति जो अमेरिकी रक्षा उघोगों को ''मेक इन इंडिया'' के तहत बनने समेत भारतीय उद्योगों के साथ रक्षा साझेदारी का बेहतर मौका मिलेगा। दोनों रक्षा मंत्रियों के बीच रक्षा के क्षेत्र में ज्ञान की साझेदारी और समुद्री सुरक्षा जैसे पारस्परिक हितों के क्षेत्रों में द्विपक्षीय सहयोग को बढ़ाने के प्रयासों को जारी रखने पर सहमति बनी।

वाशिंगटन का नये हथियारों को बेचने की इच्छा उसकी व्यापक सामरिक नीति का अभिन्न हिस्सा है जो दुनिया के मामलों में भारत के लिए भविष्य में एक बड़ी भूमिका देखता है, शायद ज्यादा ध्यान देने वाली बात क्षेत्रीय सुरक्षा प्रतिबद्धताओं की जिम्मेदारी सबसे प्रमुख है। बहुत सारे विद्वान इसे चीन की तरफ से भारत और अमेरिका और एशिया पैसिफिक इलाकों के लिए उभरते रवतरें के नतीजे के तौर पर देख रहे हैं।

अमेरिका और भारत के विशेषज्ञ बहुत सालों से इस विचारों में थे कि भारत को रक्षा के क्षेत्र में विदेशी

निवेश की सीमा को बढ़ाकर 50 फीसदी कर देनी चाहिए। 26 फीसदी की मौजूदा अमेरिकी कम्पनियों को भारत के रक्षा क्षेत्र में निवेश की दिशा में पहल के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं देती हैं। 50 फीसदी सीमा करने से अमेरिका की रक्षा क्षेत्र से जुड़ी कम्पनियाँ भारत में निवेश के लिए प्रेरित होंगी क्योंकि उन्हें लगेगा कि उनका हित उससे जुड़ा हुआ है। हालांकि इस तरह की कोई व्यवस्था जिसके रक्षा क्षेत्र में ज्यादा निवेश ही भारतीय संवेदनशीलता को चोट पहुँच सकती है। इस तरह की कोई व्यवस्था रक्षा उद्योग अभ्यासों और तकनीकी ट्रांसफर के नाम कमाने के जरिए भारत को अपने प्रयासों से खुद का अपना रक्षा उद्योग विकसित करने के लिए वरदान साबित हो सकती है। भारत सरकार ने पहले ही इस दिशा में कदम उठा लिया है और रक्षा क्षेत्र को कुछ भारतीय कम्पनियों के साथ एक साझा वेंचर के हिस्से के तौर पर एफ.डी.आई. सहयोग के लिए खोल दिया गया है। जिसमें दोनों कम्पनियों के बीच तकनीकी हस्तानांतरण किया जा सके।

भारत और अमेरिका के प्रयास द्वारा यह सम्भव हो सका जैसा कि अमेरिकी रक्षामंत्री इस जिम्मेदारी को इस तरह से पेश किया जैसे अमेरिका अन्त में भारत को सहयोग करने के लिए तैयार हो गया अमेरिका इस रिषे्त के बारे में पहले से ही इस लाइन पर सोच रहा था जैसा कि पूर्व रक्षा मंत्री पैनटो ने कहा । कुछ समय पहले नई दिल्ली में कहा था– लम्बे समय से मैं निश्चिन्त था कि हम निश्चित तौर पर अपने रक्षा व्यापार को खरीद और बिक्री के रिश्ते से बदलकर बडे सहउत्पादन और उसी के साथ उच्च तकनीकी जनित संयुक्त शोध और विकास की तरफ ले जायेंगे।

रक्षा उपकरणों को उठाने के पीछे तकनीकी तबादला और सह–उत्पादन और सहविकास व्यवस्थाएं भारतीय नीति निर्णायकों का मुख्य उद्देष्य था भारत खरीदार और बिक्री के कुचक्र से बाहर निकलकर अपने खुद के उत्पादन केन्द्रित करने में प्रतिबद्ध हो । वाशिंगटन और दिल्ली के बीच सहयोग का बढ़ता एक और उदाहरण अमेरिकी रक्षा सुरक्षा सहयोग एजेंसी ने भारत द्वारा 86 मिलियन डालर कीमत वाली 32 अमेरिका निर्मित एम के–54 कम भार वाले हारपीड़ों को खरीदने की इच्छा जाहिर की। यह सहमति इस बात की तरफ इशारा करती है कि दोनों देशों के बीच सामरिक हितों का संगम विकसित हो रहा है। हाल के दिनों में दोनों देशों के रक्षा सम्बन्ध और अच्छे हुए है। सितम्बर, 2015 में भारत सरकार ने 22 और अपाचे हेलीकाप्टरों की खरीद और 15 सीएच–47 चिनूक भारी तैनाती हेलीकाप्टरों के लिए 3.1 बिलियन डालर अमेरिकी रक्षा के मेजर बोइंग को देने का आर्डर दिया है जो तीन साल की देरी और 13 किस्तों के विस्तार के बाद हासिल किया जा सकता है। ये सभी तथ्य इस तरफ इशारा करते हैं कि रक्षा सप्लाई के मामले में रूस को अमेरिका ने विस्थापित कर दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. द टाईम्स ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली, 10 अक्टूबर, 2002।
2. दैनिक जागरण, 5 दिसम्बर, 2001।
3. द टाइम्स ऑफ इंण्डिया, 27 फरवरी, 2002।
4. सी. उदय भास्कर, ''बुश आऊटलाईन्स न्यू यू. एस. न्यूकिल्यर पॉलिसी'', स्ट्रेटजिक एकनालिसिस, वाल्यूम एक्स एक्स वी, न. 3 जून, 2001, पृष्ठ – 337।
5. वही।
6. ऊजी रूबीन, ''हाऊ मच डज मिसाईल प्रोलिफीरेशन मैटर?'' औरशीश, वीन्टर 1991, पृष्ठ – 31।
7. जोईल ब्रींकले,''यू. एस. स्टूड बाई ऐज इजराईल इनलार्जड न्यूटर अरसेनल'', बुक सेज, इन्टरनेशनल होराल्ड ट्रीब्यून, 21 अक्टूबर, 1991।
8. कम्पीटिशन रिव्यू, अगस्त 2005, पृष्ठ – 22।
9. समसमायिक घटनाक्रम, जुलाई 2005, पृष्ठ – 48 ।
10. डॉ. राजेश कुमार, ''उच्च पथ पर भारत – अमेरिकी सामरिकी साझेदारी'', वर्ल्ड फोकस अंक, मार्च, 2015, पृष्ठ – 106।
11. भारत–अमेरिका सम्बन्ध, सिविल सर्विसेज टाइम्स, सितम्बर, 2009, पृष्ठ – 58 ।
12. आलोक वंसल, ''रक्षा समझौते : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के वाहक'', योजना, जुलाई 2015, पृष्ठ – 28।
13. वही।
14. डॉ. राजेश कुमार, ''21वीं सदी में भारत–अमेरिका रक्षा और अन्तरिक्ष सुरक्षा सहयोग'', वर्ल्ड फोकस अंक, 45, दिसम्बर, 2015 पृष्ठ – 89।

◈◈

ISSN : 2394-4366
Received: 16 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

भारत विजयनाटकम् का समीक्षात्मक विश्लेषण

– सुनीत
रिसर्च स्कॉलर–संस्कृत विभाग,
रजि. पी. एच.–डी. 202200000594
तिलक महाविद्यालय औरैया–206122
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
sunit101086@gmail.com

– शोध निर्देशक
– डॉ. अंशुल दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष–
संस्कृत विभाग,
तिलक महाविद्यालय औरैया–206122
(उत्तर प्रदेश)
सम्बद्ध – छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

ई–मेलः
tmvanshul@gmail.com

शोध सारांश

मूर्धन्य शिरोमणि श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित नवीन युग मे संस्कृत को सर्वोच्च्य शिखर तक ले जाने वाले महान दिव्य दृष्टा एवं रचनाकार हैं। एक प्रसिद्ध कहावत है– 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' यह इनके विषय में भी अक्षरशः सिद्ध होती है। महामहोपाध्याय शैशवात् ही बहुमुखी प्रतिभा से मुखरित हो रहे थे। देश की स्वतंत्रता से पहले हीसन् 1937 में जब भारतदुर्दशा की चरम सीमा को झेल रहा था भारत के विजय का नाटक लिखकर महान दिव्य दृष्टा होने का संकेत दिया है। उस समय शिरोमणि श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित ने भारतमाता के स्वंत्रता की कल्पना अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही प्राप्त होने की भूमिका गढ़ दी थी। यह महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित से प्रभावित होकर करुण रस प्रधान,वीर रस से पूरित सात अंकों वाला नाटक है। जिसे किसी भी नाट्यशाला के रंगमंच पर अभिनय से दर्शकों एवं श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया जा सकता है। इतिहास को नाटक के रूप में बड़े ही अद्भुत ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। भारतमाता को एक आदर्श माता की तरह सहनशील, धैर्यशाली जैसे अनेक गुणों से ओत–प्रोत प्रस्तुत किया है। 1857 का संग्राम और 1947 की अहिंसा के पथ पर चलकर प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता का नाटकीय ढ़ग से मार्मिक वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द– भारतमाता, रानी विक्टोरिया, मुहम्मद, यूरोपियन, राजगद्दी, उद्घोषणा, राजकुमारी, हेस्टिंग, दुर्लभराय, षड्यन्त्र, नेपाली सखी इत्यादि।

प्रस्तावना–

नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट् ' धातु से मानी जाती है। जिसका अर्थ होता है अभिनय करना या मंचन करना। नाटक की उत्पत्ति तो वेदों से शुरू होकर आधुनिक समय तक पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है। ऋग्वेद से पुरुरवा– उर्वसी, विश्वामित्र– नदी जैसे अनेक संवाद हैं। सामवेद से गायन आदि सभी से कुछ न कुछ लेकर नाटक की परम्परा का विकास ब्रह्मा के निर्देशानुसार आचार्य भरतमुनि ने किया। इनके द्वारा लिखा गया नाट्यशास्त्र इतना अद्वितीय है कि इसे पंचमवेद के नाम से जाना जाता है। जिसमें नाटक की हर छोटी बड़ी बातों का ध्यान रखा गया है। नाटक केवल अभिनय मात्र ही नहीं है। बल्कि सब प्रकार की विधाओं एवं क्रिया कलापों द्वारा उस पात्र के भीतर समाहित हो जाना ही नाटक है। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने नाटक के विषय में कहा है–

'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।।'

धनंजय द्वारा रूपक अर्थात् नाटक के दस भेद स्वीकार किए गए हैं। नाटक की इन्हीं परम्पराओं का निर्वाहन करते हुए हमारे महामहोपाध्याय पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित जी का विश्व प्रसिद्ध नाटक भारतविजयनाटकम् है। जिस समय देश को स्वतंत्र होने के लिए जनसमुदाय के सहयोग की आवश्यकता थी, उस समय दीक्षित जी ने अपनी लेखनी के बल पर सभी को एकजुट करके मातृभूमि हेतु तत्पर किया। बिना रक्तपात के स्वतंत्रता का स्वप्न जो उनके भीतर पल रहा था उसको कलम द्वारा लिखकर सभी देशवासियों को मार्गदर्शित किया उसी मार्ग पर चलकर ही भारतमाता को स्वतंत्रता का रसास्वादन करने को प्राप्त हुआ।

मंगलाचरण–

'भारतविजयनाटकम्' का नान्दी पाठ कुछ इस प्रकार है–

स्वाङ्के यत्प्रतिचस्करे कररुहैर्हैरण्यवक्षस्थलम्,
तस्मादेव विनिःसृताऽवनिमसृग्धारा वहन्ती ययौ।
जङ्घाजानुपदाब्जमध्यपतिता सान्द्राऽथ जन्मान्तरे,
सव राम! भवत्पदाम्बुजगता सैवेति संभाव्यते।।

इस नाटक में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण है, परन्तु अन्य अर्थ में कहा जाए तो वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण की प्रतीति भी होती है। भगवान विष्णु नृसिंह के वेश में अपने पुत्र प्रहलाद की रक्षा हेतु प्रकट होते हैं और अपनी जाँघों पर रखकर हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल बिना किसी हथियार के नखों से ही विदीर्ण कर देते हैं। जिससे बह चली रक्त की धारा से भगवान नृसिंह के चरण कमल के समान लाल हो गए इसी रक्त से रंजित चरण अगले जन्म रामावतार में कमलवत् चरणों की वंदना करते हुए सदैव इनके आशीर्वाद के बने रहने की कामना की गई है। जिससे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम हमारी सब ओर से रक्षा करते रहें। परन्तु इसमें वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के संकेत प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार भगवान विष्णु अपने धैर्य को छोड़कर भूलोक में पुत्र प्रहलाद की रक्षा के लिए बिना हथियार अवतरित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से भारतमाता भी अपने पुत्रों की रक्षा के लिए बिना हथियार के ही अपने धैर्य को छोड़कर यूरोपियन्स के खिलाफ उठ खड़ी होती हैं। अतः इस भाव से यह मंगलाचरण आशीर्वादात्मक होते हुए भी वस्तुनिर्देशात्मक होने की छाप भी छोड़ता है।

भारतविजयनाटकम् का सार– प्रथम अंक से अर्थात् नाटक के प्रारम्भ में ही कुछ मुगल शासकों द्वारा प्रताड़ित अपने प्रिय पुत्रों की दशा से दुखी भारतमाता का प्रवेश होता है, जिसकी सहायता के लिए कुछ विदेशी गोरे आते हैं। जो प्रारम्भ में तो भारतमाता को प्रसन्न करते हैं, और उसके सभी पुत्रों के सुनहरे भविष्य के दिवा स्वप्न दिखाते हैं। ऐसे धूर्त गोरों पर भारतमाता विश्वास करके उनकी बातों में आ जाती है। तो वहीं दूसरी ओर ये धूर्त गोरे भारत सम्राट की पुत्री अर्थात् राजकुमारी के अग्नि में जल जाने का उपचार करके बिना कर (टैक्स) दिए कपड़े का सम्पूर्ण व्यापार भारत सम्राट से एक फरमान द्वारा प्राप्त कर लेते हैं–

न विक्रयं नः परिहाय वाससः,
प्रजासु कश्चिच्चरितुंसमीहताम्।
न वास्मदीये क्रयविक्रये भवेत्,
करः क्वचित्कश्चिदपीति पालयेः।।

तदन्तर विदेशी गोरे बंगाल में खूब मनमाने ढंग से लूटपाट करते हैं। भारतीय व्यापारियों, सेठ एवं कारीगर जुलाहों के कपड़े के व्यापार को पूर्णतः बर्बाद कर देते हैं। इतना प्रताड़ित करते हैं कि भारतीय जुलाहे अपने हाथ के अगूँठे तक को काट देते हैं जिससे कि पुनः वस्त्र बनाने का काम न कर सकें। यूरोपवासी भारत पर अपना शासन करने के लिए शिराजुद्दौला के खिलाफ षड्यंत्र करके सेनापति मीर जाफर को अपनी ओर मिला लेते है और वहाँ की राजगद्दी पर ये विदेशी पूर्णतः अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं। ये धूर्त गोरे सेठ अमीचन्द के गृह की सम्पूर्ण बर्बादी कर देते हैं। मीर जाफर, दुर्लभराय एवं लतीफ की सहायता से शिराजुद्दैला को धोखा देते हैं और उसे बंदी बना लेते हैं। शिराजुद्दौला की मीरजाफर के पुत्र द्वारा हत्या भी करवा दी जाती है। तदन्तर मीर जाफर को शासक नियुक्त करते हैं। जब मीर जाफर भीतर ही भीतर ग्लानि का अनुभव करता है तो जाफर में दोषारोपण करके मीरकासिम को राजगद्दी पर बैठाने हेतु ये गोरे बंगाल में उद्घोषणा करवा देते हैं–

'सेनापते! एनं बंगाधिपतिं विधास्यामीत्यसौ बंगाधिपतित्वेन सेनायां बंगप्रजासु चोद्घुष्यताम्।'

कासिम से नमक, कपड़े, तम्बाकू आदि के व्यापार पर विदेशियों का सम्पूर्ण अधिकार एक राजपत्र के माध्यम से प्राप्त कर लिया जाता है। हेस्टिंग मीरकासिम से चालाकी भरी सहानुभूतिपूर्ण चर्चा करता है, जिससे

मीरकासिम विचलित हो जाए। परन्तु कासिम सारी धूर्तता को भाँपता हुआ धैर्य के साथ शासन संभालता है। प्रजा हित के छोटे–छोटे कार्यों के कारण कासिम यूरोपियों के आँखों की किरकिरी बना रहता है। इसीलिए कासिम को राजगद्दी से हटा दिया जाता है। राजगद्दी से हटाने के कारण कासिम अवध के नवाब शाह आलम जैसे शासकों से मिल जाता है और यहीं से बक्सर युद्ध का बीजारोपण हो जाता है। कासिम सहित सभी शासक बक्सर के युद्ध 1764 में पराजित हो जाते हैं। महाराजा नन्दकुमार को मृत्यु दण्ड देने के लिए सैकड़ों प्रपंच किये जाते हैं। फिर भी कम्पनी नन्दकुमार को बरी कर देती है। परन्तु हेस्टिंग कम्पनी के फैसले के खिलाफ जाकर नन्दकुमार को फांसी की सजा दिलवा देने में सफल हो जाता है।

कुछ समय पश्चात तो कम्पनी भारत में रह रहे गवर्नरों से तीस लाख रुपये की माँग रखती है। जिस कारण हेस्टिंग गंगासिंह नामक एक कपटी भारतीय व्यक्ति की सहायता लेता है, फिर उसी की सहायता से रूहेलखण्ड भी जीत लेता है, और हेस्टिंग रूहेलखण्ड को शुजाउद्दौला नामक मुसलमान को चालीस लाख रुपये में बेचता है। तदुपरान्त हेस्टिंग अवध पर एक राजकुमार की सहायता के बहाने से आक्रमण करता है और जीतकर सब कुछ लूट लेता है। इतनी निर्दयता दिखाता है कि राजमाता एवं अन्य माताओं को मार–मारकर लहूलुहान करता हुआ उनके सब गहने भी उतरवा लेता है।

नाटक के बीच में विश्कम्भक की रचना करके दो सैनिकों के माध्यम से 1857 के संग्राम की सम्पूर्ण भूमिका वर्णन इनकी बातचीत से ही हो जाता है। तदुपरान्त मंगल पाण्डे गोरे सैनिक की बन्दूक को लेकर हुई बहस के कारण उसकी हत्या कर देते हैं। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे आदि युद्ध का अन्ततः बिगुल फूँक ही देते हैं। परन्तु अथक प्रयासों के उपरान्त भी दिल्ली पर कम्पनी का राज हो जाता है। सम्राट बहादुरशाह जफर को बंदी बना लिया जाता है। उसके बेटे की निर्मय हत्या कर दी जाती है और लक्ष्मीबाई अपने स्वभिमान की रक्षा के लिए सशरीर अग्नि में स्वयं को जला देती है। परन्तु देशभक्ति की चिनगारी को विलुप्त नहीं होने देती हैं। इसके उपरान्त 1947 के युद्ध की भूमिका बननी शुरू हो जाती है।

महारानी विक्टोरिया की आज्ञा से ए. ओ. ह्यूम दादा भाई नौराजी की सहायता से कांग्रेस की स्थापना करते हैं। ये गोरे एक ओर बंगाल का विभाजन कर देते हैं। तो दूसरी ओर षड्यंत्रों का चक्रव्यूह तैयार करते हैं। खुदीराम बोस को फाँसी की सजा दिलवा देते हैं। आगे तो जज कालीचरण को त्यागपत्र देना पड़ता है। कन्हैय्या नरेन्द्र की हत्या करवा देता है और स्वयं का गुनाह स्वीकार करने से कन्हैय्या को फाँसी की सजा दे दी जाती है। यूरोपवासी अपने लक्ष्य को पूर्ण कर लेने के उपरान्त बंगाल को पुनः एक कर देते हैं। साथ ही साथ राजधानी को कोलकाता के स्थान पर दिल्ली भी स्थानातरित कर देते हैं। जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रॉस रूस, बेल्जियम के साथ प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो जाता है। भयभीत इंग्लैण्ड भारतमाता से मदद की माँग करता है। दयालु भारतमाता अपने गर्भ से उत्पन्न वीर पुत्रों को आदेश देती है कि इण्लैंड के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके उन्हें यमलोक पहुँचा दो–

'मम कुक्षिसमुद्भूता वीराः शौर्यानुगामिनः।
इंलैण्डशत्रुं संग्रामे प्रापयध्वं यमालयम्।।'

भारतमाता के वीर सपूतों ने आज्ञा को शिरोधार्य कर यूरोपवासियों को विजय दिलाने हेतु संग्राम में कूद पड़े। परन्तु ये धूर्त गोरे अपने वचन के विपरीत जाकर रोलेट एक्ट ले आते हैं। जिससे सब जगह त्राहिमाम की स्थिति हो जाती है। गाँधी जी यूरोपियन के साथ विवाद करते हैं और रोलेट एक्ट को वापस लेने हेतु अनेक प्रयास करते हैं। आवेश में आकर गाँधी जी भारत की प्राचीन शक्तियों को याद दिलाते हुए अहिंसा से यद्ध करने का चैलेंज दे देते हैं। ऐसे में गाँधी के सहयोग के लिए एक बड़ा जन समुदाय यूरोपवासियों द्वारा प्रदान की गईं अपनी – अपनी पदवियों एवं उपाधियों को उन्हें वापस लौटा देता हैं। अनेक लोगों ने त्यागपत्र दे दिए, अनेक लोगों ने तो पद पर रहते किसी भी उनके काम में सहयोग न करने का मार्ग अपना लिया। मालवीय, पंत एवं कलाम आदि ने भी गांधी जी के इस असहयोग आन्दोलन को सम्पूर्ण समर्थन प्रदान किया। परन्तु गोरों की कूटनीति को क्या ही कहा जाए, इन यूरोपियन्स ने मुहम्मद नामक मुसलमान व्यक्ति को हिन्दू मुस्लिम के नाम से भड़काया तथा फूट डालो और राज्य करो की नीति अपना लिया, जिसमें ये पूर्णतः सफल भी हो गए। भारत एवं पाकिस्तान नाम के दो बंटवारे हो गए। दुखी भारतमाता यूरोपियन्स को कटु वचन बोलती जाती हैं जिससे क्रोधित होकर यूरोपियन ऑडिनेंस नामक जाल माता को बंधक बनाने हेतु फेंक देता है। परन्तु आवेश से

भरी माता इस जाल को तोड़कर फेंक देते हुए–

'अपकारस्य कर्तारमुपकारविलेपकम्।
त्वां चपेटाप्रहारेण यमालयमहं नये।।'

अर्थात् अति क्रुद्ध होकर उस इंलैण्डवासी को मारना चाहती है, परन्तु सुभाष चन्द्र, नेहरू जी, सम्पूर्णानन्द एवं कलाम आदि सभी आकर माता को ऐसा कृत्य करने से रोक लेते हैं और माता के क्रोध को शान्त करवा देते हैं। तभी कुछ ऐसा होता है कि गाँधी जी आकर उन यूरोपियन को गले लगाकर अपना मित्र बना लेते हैं, जिस कार्य से यूरोपियन बहुत प्रभावित होते हैं और भारत की सत्ता कांग्रेस के हाथों में सौंपकर अपने देश मित्रवत् वापस चले जाते हैं।

करुण एवं वीर रस–एक प्रसिद्ध कथन है– 'रसौ वै रसाः' किसी भी नाटक का उद्देश्य तो यही है कि प्राणी रस के आनन्द में डूबकर इहलोक को ही भूल जाए। मानव नाटकीय पात्रों के अभिनय एवं संवादों द्वारा रस रूपी आनन्द की प्राप्ति करे और आनन्द की प्राप्ति तो हर जीवधारी का सर्वप्रथम उद्देश्य है। यह भारतविजय नाटक महाकवि भवभूति के उत्तररामचरितम् से प्रभावित होता प्रतीत होता है। जिस तरह उत्तररामचरितम् में 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् ' कहते हुए करुण को ही मूल रस माना है और अन्य सभी रस को करुण के ही भेद मात्र कहे हैं। भगवान राम एवं देवी सीता द्वारा तीसरे अंक में परम कारुणिक संवादों का चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है, जहाँ पर माता सीता एवं भगवान राम बार–बार मूर्च्छित तक हो जाते हैं फिर भी दर्शक अश्रु बहाते हुए रस का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर ही लेते हैं। इस भारतविजय नाटक में भी भारतमाता के करुण रस से भरे हुए अनेक संवाद हैं। जो इस रस की सर्वोत्कृष्टता को दिखाते हैं। जैसे–

'हा हा किं मम पुत्रकेशु विहितं हा प्रत्ययात्किं कृतम्,
हा देशस्य दशा, किमस्य भविता, हा सर्वनाशोऽभवत्।
हा दीनानपि वित्तलोलुपतया निघ्नन्त्यमी मत्सुतान्,
सर्वे हा प्रलयं गताः मम सुताः वीरर्विहीनास्म्यहम्।।'

करुण रस को प्रदर्शित करने वाला यह संवाद अश्रु की धारा बहाए बिना रह ही नहीं सकता है। अन्य क्या ही कहा जाए, इस नाटक का प्रारम्भ ही इस करुण रस से ही होता है। जब भारतमाता के पुत्र मुगल शासक की अनेक यातनाएँ झेल रहे थे। उस समय अपनी ममता के वशीभूत होकर विदेशी गोरों पर विश्वास कर लेती है और अपनी भूमि पर बस जाने का आश्वासन दे देती है। एक कारुणिक माता की तरह यह कार्य न करती तो शायद इन गोरों का यहाँ शासन न होता। भारतमाता से अपने पुत्र एवं पुत्रियों का बलिदान देखा नहीं जाता है, जब रानी लक्ष्मीबाई पराजित होने के उपरान्त आग में स्वयं को जला रही थी–

'पश्येयं घनसारवन्निजतनुं बालात्मजैकाकिनी,
शौर्येणाशु निपात्य वैरिनिचयं वह्नौ जुहोति स्वयम्।
एतेऽनार्यभवाः स्पृशन्तु मम न च्छायामपीत्यात्मनः,
सूनुं साधुपदे निधाय तपनं भित्त्वा प्रलीनात्मनि।।'

तब माता से देखा नहीं जा रहा था दहाड़े मार कर रोने के कारण बार–बार मूर्छित हो जाती है। और भी जब माता के ऊपर धारा 144 रूपी मुँह पर पट्टी बाँध दी जाती है तब भी वह चुप रहते हुए अपने पुत्रों की ही फिक्र करती रहती है। परन्तु इस सबके उपरान्त भारतमाता साहस से भरी हुई वीरता की प्रतिमूर्ति भी है। कहा भी जाता है कि वीर ही वीर को उत्पन्नकर सकता है, तभी तो नेपाली सखी माता को ढाढ़स बँधाते हुए कहती है–

'भवती वीरप्रसविनी, त्वयैव रघुनहुशसगर प्रभृतयः उत्पादिताः। उत्पादयिश्यन्ते च तिलकमालवीय–लाजपतिरायगाँधीजवाहरलालप्रभृतयः। इहैव दासखुदीरामसुभाषाजाद प्रभृतयो वीरास्तव सुपुत्रा भविश्यन्ति।'

माता को बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए उसके एक एक करके बहुत सारे पुत्र एवं पुत्रियों ने अपने प्राण उस पर अर्पण कर दिए तो अन्ततः उससे रहा न गया और यूरोपियन का प्रतिकार करने के लिए उठ खड़ी हो जाती है। यूरोपियन जब आर्डिनेंस के नियम रूपी जाल माता के ऊपर फेंकता है तो उसे तोड़कर फेंक देती है और कहती है–

'रे दुष्टाधम! अपकारस्य कर्तारमुपकारविलोपकम्।
त्वां चपेटाप्रहारेण यमालयमहं नये।।'

यूरोपियन को थप्पड़ मारने के लिए भारतमाता पर हाथ उठा देती है परन्तु सुभाषचन्द्र, जवाहरलाल आादि आकर माता को रोक देते हैं। जिससे माता के करुण रस से ओत–प्रोत होने के साथ–साथ वीर रस से भी परिपूर्ण हैं।

भरतवाक्य– भारतविजयनाटकम् के भरतवाक्य में तिलक के अगले जन्म का वर्णन किया गया है। जिसमें एक तपस्वी बालक जिसने मृगचर्म एवं कमण्डल धारण

किया हुआ है ऐसा तपस्वी बालक अपने एक शिष्य के साथ प्रवेश करता है। कहता है कि अब यहाँ प्रीति प्रदर्शित हो रही है, देवताओं का आदर हो रहा है, भूपति भगवत् भक्त हो रहे है, कीर्ति चहु ओर धवल चन्द्र के समान बिखर रही है, अब्दुल कलाम, सुभाषचन्द्र एवं जवाहरलाल आादि जैसे भारतमाता के प्रिय पुत्र कुशल कार्य करने वाले हो गए हैं अब तो सब प्रिय ही है। तपस्वी बालक कहता है–

> 'सर्वे सन्तु निरामयाः सुसुखिनः शश्यैः समृद्धा धरा,
> भूपालाश्च मितव्यया नयविदो दक्षाः प्रजारक्षणे।
> विद्वांसो धनपूजिता नवनवाः संपादयन्तः कृती,
> भूयासुः पतिपुत्रशौर्यसहिता वीरांगना भारते।।'

अर्थात् भारत की भूमि धन धान्य से भरी रहे, राजा नीति निपुण एवं मितव्ययी हों, विद्वान विविध कलाओं से परिपूर्ण एवं श्रेश्ठ रचनाओं के निर्माता हों, बहादुर वीरांगनाएँ श्रेष्ठ पति एवं पुत्रों से युक्त हों तथा सब ओर निरोग रहते हुए सभी जन सुखी रहें ऐसी कामना के साथ वह तपस्वी बालक भरतवाक्य पूर्ण करता है।

निष्कर्ष–

महामहोपाध्याय श्री दीक्षित जी द्वारा लिखा गया नाटक भारतविजयनाटकम् के विषय में क्या ही कहा जाए, हिमांचल प्रदेश में ए. टी. सभागार से राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. विनोद शर्मा जी ने इस नाटक का मंचन अपने निर्देशन में करवाया। जिसमें विशेष अतिथि के रूप में हिमांचल प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विश्वनाथ आर्लेकर मौजूद थे। तथा अन्य अतिथिगण के रूप में पद्म श्री के सम्मान से सम्मानित प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, हिमांचल के कालिदास कहे जाने वाले केशव शर्मा एवं उच्चतर शिक्षा निदेशक अमरजीत शर्मा जी उपस्थित थे। हिमांचल के संस्कृत के सचिव डॉ. केशवानन्द भोसले एवं प्रभारी डॉ. मुकेश शर्मा जी के मार्गदर्शन में संस्कृत महाविद्यालय भागली, शिमला के छात्रों ने इस वीर रस प्रधान नाटक का ओजपूर्ण मंचन किया। जिसने मन को गदगद करके हृदय को आह्लादित कर दिया। राष्ट्रप्रेम एवं देशभक्ति जैसे गुणों से परिपूर्ण कर देने वाला यह नाटक स्वतंत्रता से भी पहले स्वतंत्रता की रूपरेखा तैयार कर देने वाला होने के साध –साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी प्रदर्शित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, दसवाँ मण्डल, 95वें सूक्त एवं तीसरा मण्डल 33वें सूक्त।
2. दशरूपकम्, आचार्य धनंजय, कानपुर पब्लिशिंग होम पाण्डु नगर (2005)।
3. आधुनिक भारत, विपिन चन्द्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990 ।
4. आधुनिक भारत का इतिहास, श्री राजीव अहीर, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि. संस्करण 2022।
5. तैत्तरीयोपनिशद्, ब्रह्मानन्द वल्ली (द्वितीय वल्ली), कृष्णयजुर्वेद शाखा।
6. उत्तररामचरितम्, महाकवि भवभूति, विशाल प्रकाशन, दिल्ली), संस्करण 2011।
7. इन्टरनेशनल जनरल – डॉ. रीना, अनन्ता प्रकाशन।
8. भारतविजयनाटकम्, श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास (दिल्ली)संस्करण 2001।

◈◈

विशेष

प्रकाशन शोधकर्त्ताओं के लिए शोध प्रक्रिया का अन्तिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण होता है। शोध समाज की एक मूल्यवान उपलब्धि है, जिसके लिए इसे समाज के बीच आना ही चाहिए ताकि समस्त मानवता इसका लाभ उठा सके। वर्तमान में बेलगाम होती महंगाई, कम्प्यटूर टाइपिंग, कागज, मुद्रण सामग्री एवं प्रिंटिंग की दरों में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी शोधार्थियों केद्वारा प्रकाशित होने वाले शोध-पत्रों केअवसरों को सीमित एवं संकुचित करते हैं।

संगोष्ठियों में शोध प्रपत्र का वाचन शोधार्थियों एवं शोधविदों के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवसर होता है। अपने गुणवत्तापरक शोध कार्य को इन संगोष्ठियों के माध्यम से जनमत के बीच लाने का माध्यम बनता है। ऐसे अवसरों का लाभ उठाना ही हम सभी के लिए हितकर है, हम सभी आयें और समाज में आगे बढ़कर अधिक से अधिक सहयोग देकर इसे सफल बनाने के कार्य में हाथ बंटायें। **- प्रबन्धक सम्पादक**

ISSN : 2394-4366

Received: 01 Feb., 2026, **Accepted:** 20 Mar., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली : एक समीक्षात्मक अध्ययन

– सरोजिनी बघेल
शोधार्थी – संस्कृत विभाग,
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग – 491002
(छत्तीसगढ़)

ई–मेलः
sarojanibaghel24@gmail.com

– शोध निर्देशक
– डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर – संस्कृत विभाग,
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग – 491002
(छत्तीसगढ़)

ई–मेलः
mksingh11@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र 'बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली : एक समीक्षात्मक अध्ययन' संस्कृत गद्य साहित्य के दो महान आचार्यों महाकवि बाणभट्ट तथा महाकवि दण्डी की गद्य–शैली का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्य की परम्परा को समृद्ध बनाने में इन दोनों साहित्यकारों का अप्रतिम योगदान है। महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी तथा हर्षचरित के माध्यम से गद्य को काव्यमय सौन्दर्य, भावगाम्भीर्य तथा वर्णन–वैभव प्रदान किया, जब कि महाकवि दण्डी ने दशकुमारचरित एवं काव्यादर्श के माध्यम से गद्य में सरलता, प्रसादगुण, कथात्मक रोचकता तथा शैलीगत संतुलन का आदर्श स्थापित किया। इस शोधपत्र का उद्देश्य दोनों आचार्यों की गद्य–शैली का साहित्यिक, भाषिक एवं शैली वैज्ञानिक दृष्टि से तुलनात्मक मूल्यांकन करना है। अध्ययन में भाषा, समास–योजना, अलंकार–प्रयोग, वर्णन–कौशल, भावाभिव्यक्ति, कथानक–विन्यास तथा शैलीगत विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दोनों लेखकों की गद्य–शैली उनके युग, साहित्यिक उद्देश्य तथा कलात्मक दृष्टि से किस प्रकार प्रभावित हुई है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बाणभट्ट की शैली अलंकार–प्रधान, दीर्घ समासयुक्त, वर्णनात्मक एवं भाववैभव से परिपूर्ण है। उनके गद्य में शब्द–चयन, अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा दृश्यात्मकता का उत्कृष्ट समन्वय मिलता है। इसके विपरीत दण्डी की शैली अपेक्षाकृत सरल, प्रवाहपूर्ण, संतुलित तथा कथोपयोगी है। उन्होंने भाषा की सहजता के साथ साहित्यिक गरिमा को बनाए रखा है। उनकी रचनाओं में वैदर्भी रीति, प्रसादगुण तथा कथात्मक गति का विशेष महत्त्व है।यद्यपि दोनों आचार्यों की शैली में पर्याप्त भिन्नताएँ दिखाई देती हैं, तथापि संस्कृत गद्य के विकास में दोनों का योगदान समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। बाणभट्ट ने गद्य को कलात्मक ऊँचाई प्रदान की, जब कि दण्डी ने उसे व्यावहारिक, सुसंगठित एवं प्रभावी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इस प्रकार दोनों की गद्य–शैली संस्कृत साहित्य की दो विशिष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रस्तुत शोधपत्र से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि बाणभट्ट एवं दण्डी की साहित्यिक परम्परा ने संस्कृत गद्य को समृद्ध, परिष्कृत एवं कालजयी स्वरूप प्रदान किया तथा उत्तरवर्ती गद्य–साहित्य के लिए सुदृढ़ आधार निर्मित किया।

मुख्य शब्द – बाणभट्ट, दण्डी, गद्य–शैली, कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमारचरित, काव्यादर्श, संस्कृत गद्य, अलंकार, वैदर्भी रीति।

प्रस्तावना –

संस्कृत साहित्य विश्व की प्राचीनतम, समृद्धतम एवं वैज्ञानिक साहित्यिक परम्पराओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस साहित्य में पद्य और गद्य दोनों विधाओं का समान रूप से विकास हुआ है। जहाँ एक ओर वाल्मीकि, कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसे महाकवियों ने पद्य साहित्य को समृद्ध किया, वहीं दूसरी ओर महाकवि बाणभट्ट, महाकवि दण्डी, सुबन्धु तथा धनपाल आदि ने संस्कृत गद्य साहित्य को अभूतपूर्व ऊँचाई प्रदान की। संस्कृत गद्य केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहा, उसमें काव्यात्मक सौन्दर्य, भाषिक परिष्कार, अलंकारिक वैभव तथा सांस्कृतिक चेतना का भी अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इसी कारण संस्कृत गद्य साहित्य भारतीय साहित्यिक परम्परा का एक गौरवपूर्ण अध्याय माना जाता है।

संस्कृत गद्य का विकास वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों से प्रारम्भ होकर उत्तरवर्ती काल में कलात्मक रूप से परिपक्व हुआ। प्रारम्भिक गद्य मुख्यतः धार्मिक, दार्शनिक एवं व्याख्यात्मक स्वरूप का था, किन्तु कालान्तर में उसमें साहित्यिक सौन्दर्य तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का समावेश हुआ। गुप्तोत्तर काल तक आते–आते संस्कृत गद्य ने स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इसी काल में बाणभट्ट एवं दण्डी जैसे प्रतिभाशाली साहित्यकारों ने गद्य को ऐसी कलात्मक गरिमा प्रदान की कि उनकी कृतियाँ आज भी संस्कृत गद्य की सर्वोच्च उपलब्धियों में गिनी जाती हैं।

महाकवि बाणभट्ट सातवीं शताब्दी के महान गद्यकार थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ हर्षचरित एवं कादम्बरी संस्कृत गद्य साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। बाणभट्ट की गद्य–शैली अपनी दीर्घसमासयुक्त भाषा, अलंकारिकता, चित्रात्मक वर्णन, भावप्रवणता तथा शब्द–वैभव के लिए प्रसिद्ध है। उनके गद्य में प्रकृति–वर्णन, मानवीय संवेदनाएँ, सांस्कृतिक जीवन तथा राजवैभव का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण मिलता है। उन्होंने भाषा को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं माना, उसे कलात्मक सौन्दर्य का सशक्त उपकरण बनाया। यही कारण है कि उनकी शैली को संस्कृत गद्य का सर्वश्रेष्ठ आदर्श माना जाता है। महाकवि दण्डी भी संस्कृत गद्य साहित्य के प्रमुख स्तम्भों में परिगणित होते हैं। उनकी दशकुमारचरित तथा काव्यादर्श संस्कृत साहित्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। दण्डी की गद्य–शैली बाणभट्ट की अपेक्षा अधिक सरल, प्रवाहमयी एवं संतुलित है। उनके गद्य में कथानक की गति, भाषा की सहजता तथा प्रसादगुण का विशेष महत्त्व है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु वे भाषा पर आरोपित नहीं प्रतीत होते। उनकी शैली में वैदर्भी रीति की मधुरता, स्पष्टता तथा प्रभावोत्पादकता का सुन्दर समन्वय मिलता है। इस प्रकार दण्डी ने संस्कृत गद्य को एक व्यावहारिक, सुसंस्कृत तथा प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में बाणभट्ट एवं दण्डी का स्थान केवल श्रेष्ठ गद्यकारों के रूप में ही नहीं, गद्य–शैली के आदर्श निर्माताओं के रूप में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दोनों साहित्यकारों की शैली में अनेक समानताएँ एवं भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं। जहाँ बाणभट्ट की शैली वर्णन–प्रधान, अलंकार समृद्ध एवं भावात्मक है, वहीं दण्डी की शैली कथात्मक, संतुलित एवं सहज संप्रेषणीय है। दोनों ने अपनी–अपनी साहित्यिक दृष्टि एवं कलात्मक अभिरुचि के अनुसार संस्कृत गद्य को नवीन स्वरूप प्रदान किया। इसी कारण इन दोनों की गद्य–शैली का तुलनात्मक अध्ययन संस्कृत साहित्य के इतिहास, शैली विज्ञान तथा काव्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी की गद्य–शैली का साहित्यिक, भाषिक तथा शैलीवैज्ञानिक आधार पर समीक्षात्मक अध्ययन करना है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि दोनों आचार्यों की भाषा, शैली, अलंकार–योजना, कथन–कौशल तथा अभिव्यक्ति–पद्धति में कौन–कौन से विशिष्ट गुण विद्यमान हैं तथा संस्कृत गद्य साहित्य के विकास में उनका योगदान किस प्रकार महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। यह अध्ययन संस्कृत गद्य की विकास–परम्परा को समझने के साथ–साथ भारतीय साहित्यिक सौन्दर्यबोध एवं अभिव्यक्ति–कला के स्वरूप को भी स्पष्ट करने में सहायक होगा।

संस्कृत साहित्य के विकासक्रम में गद्य–साहित्य ने जिस उत्कृष्टता एवं परिष्कार को प्राप्त किया, उसमें महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन दोनों साहित्यकारों ने न केवल संस्कृत गद्य को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान

की,उसकी शैली, भाषा तथा अभिव्यक्ति को भी नवीन आयाम प्रदान किए। संस्कृत गद्य की पूर्ववर्ती परम्परा अपेक्षाकृत सरल एवं वर्णनात्मक थी, किन्तु बाणभट्ट और दण्डी ने उसमें कलात्मक सौन्दर्य, अलंकारिकता, भाव–गाम्भीर्य तथा शैलीगत विविधता का समावेश करके उसे काव्यात्मक गरिमा से विभूषित किया। परिणामस्वरूप उनकी रचनाएँ आज भी संस्कृत गद्य साहित्य की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों के रूप में स्वीकृत हैं।

महाकवि बाणभट्ट की साहित्यिक दृष्टि अत्यन्त व्यापक एवं कलात्मक थी। वे शब्दों के माध्यम से ऐसे दृश्य उपस्थित करते हैं, जो पाठक के मानस में सजीव चित्र का निर्माण कर देते हैं। उनकी शैली में दीर्घसमास, अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अन्य अलंकारों का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। कादम्बरी तथा हर्षचरित में प्रकृति, नगर, राजप्रासाद, वन, ऋतु, नारी–सौन्दर्य तथा सामाजिक जीवन का अत्यन्त विस्तृत एवं चित्रात्मक वर्णन प्राप्त होता है। बाणभट्ट की शैली का मूल आधार भावात्मकता, कलात्मकता एवं वर्णन–वैभव है। वे वस्तुओं का केवल परिचय नहीं देते, उनमें प्राण–संचार कर देते हैं। इसी कारण उनके गद्य को 'चित्रकाव्य' की संज्ञा भी प्रदान की गई है।

इसके विपरीत महाकवि दण्डी की गद्य–शैली अधिक संतुलित, प्रवाहपूर्ण तथा व्यावहारिक है। दशकुमारचरित में उन्होंने रोचक कथानक, स्वाभाविक संवाद तथा प्रभावशाली भाषा के माध्यम से गद्य को सहज एवं आकर्षक बनाया है। उनकी शैली में शब्दाडम्बर की अपेक्षा कथावस्तु की गति एवं अभिव्यक्ति की स्पष्टता को अधिक महत्त्व दिया गया है। काव्यादर्श में उन्होंने काव्य के सिद्धान्तों का जो विवेचन किया है, उससे उनकी साहित्यिक दृष्टि एवं शैलीबोध का भी परिचय मिलता है। दण्डी ने वैदर्भी रीति की सरलता, मधुरता एवं प्रसादगुण को विशेष महत्त्व दिया, जिससे उनकी भाषा विद्वानों के साथ–साथ सामान्य सहृदय पाठकों के लिए भी ग्राह्य बन जाती है।

यद्यपि दोनों साहित्यकारों की शैलीगत प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं, तथापि उनका उद्देश्य संस्कृत गद्य को कलात्मक एवं प्रभावशाली बनाना था। बाणभट्ट ने भाषा के वैभव, अलंकारों की सम्पन्नता तथा भावात्मक अभिव्यक्ति को प्राथमिकता दी, जब कि दण्डी ने कथानक की गति, भाषिक संतुलन तथा शैली की स्वाभाविकता को अधिक महत्त्व प्रदान किया। यही कारण है कि संस्कृत गद्य के अध्ययन में दोनों की शैलियाँ परस्पर पूरक मानी जाती हैं। एक ओर बाणभट्ट संस्कृत गद्य की कलात्मक एवं अलंकृत परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो दूसरी ओर दण्डी उसकी सरल, सुसंगठित एवं व्यावहारिक अभिव्यक्ति के आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक शैलीविज्ञान की दृष्टि से भी बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शैली किसी लेखक के व्यक्तित्व, चिंतन, साहित्यिक दृष्टि तथा अभिव्यक्ति–कौशल की पहचान होती है। दोनों आचार्यों की शैली उनके व्यक्तित्व तथा साहित्यिक उद्देश्य का प्रत्यक्ष परिचायक है। बाणभट्ट का व्यक्तित्व कल्पनाशील, भावुक एवं कलाप्रिय प्रतीत होता है, जबकि दण्डी का व्यक्तित्व संयत, विश्लेषणात्मक एवं व्यावहारिक दिखाई देता है। यही अंतर उनकी भाषा, वाक्य–विन्यास, शब्द–चयन तथा अलंकार–प्रयोग में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का तुलनात्मक अध्ययन केवल दो साहित्यकारों की शैली का विवेचन नहीं है, संस्कृत गद्य की दो महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी है। इससे संस्कृत गद्य साहित्य की विकास–यात्रा, शैलीगत विविधता तथा भारतीय काव्य–परम्परा की समृद्धि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। यही तथ्य प्रस्तुत शोधपत्र के आगामी अध्यायों में विस्तारपूर्वक विवेचित किया जाएगा।

संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी ऐसे दो यशस्वी गद्यकार हैं, जिन्होंने अपनी विशिष्ट साहित्यिक प्रतिभा एवं शैलीगत वैभव के माध्यम से गद्य साहित्य को नई दिशा प्रदान की। दोनों साहित्यकारों की रचनाएँ केवल साहित्यिक उत्कृष्टता की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं,वे तत्कालीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, शिक्षा तथा जीवन–मूल्यों का भी प्रामाणिक परिचय कराती हैं। उनकी गद्य–शैली में भाषा की परिपक्वता, कल्पना की ऊँचाई, अलंकारों का सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य के इतिहास में इन दोनों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण माना गया है।

संस्कृत गद्य की विशेषता यह है कि उसमें भाषा

का सौन्दर्य तथा विचारों की गम्भीरता समान रूप से विद्यमान रहती है। बाणभट्ट एवं दण्डी ने इस विशेषता को अपने–अपने ढंग से विकसित किया। बाणभट्ट ने अपनी रचनाओं में विस्तृत वर्णन, भावप्रधान अभिव्यक्ति तथा शब्द–वैभव को प्रधानता दी, जबकि दण्डी ने सरलता, प्रवाह, कथानक की गति तथा संप्रेषणीयता को अधिक महत्त्व दिया। इस प्रकार दोनों की गद्य–शैली संस्कृत साहित्य की दो भिन्न किन्तु समान रूप से महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति–परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी तुलना करने से संस्कृत गद्य की शैलीगत विविधता तथा उसके क्रमिक विकास का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।शैली किसी भी साहित्यकार की मौलिक पहचान होती है। भाषा, शब्द–चयन, वाक्य–विन्यास, समास–प्रयोग, अलंकार–योजना, वर्णन–पद्धति तथा भावाभिव्यक्ति ये सभी मिलकर किसी लेखक की शैली का निर्माण करते हैं। बाणभट्ट की शैली में दीर्घसमास, अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा वर्णनात्मक विस्तार की प्रधानता है।

इसके विपरीत दण्डी की शैली अपेक्षाकृत लघु–वाक्य, संतुलित समास, स्पष्ट अभिव्यक्ति तथा रोचक कथोपकथन से युक्त है। दोनों की शैली में निहित इन विशेषताओं का अध्ययन संस्कृत शैली विज्ञान के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान समय में संस्कृत साहित्य के पुनर्पाठ एवं पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता निरन्तर अनुभव की जा रही है। भारतीय ज्ञान–परम्परा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा भारतीय भाषाओं के संरक्षण के संदर्भ में संस्कृत साहित्य के मूल ग्रन्थों का शैली वैज्ञानिक अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का तुलनात्मक अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से उपयोगी है,यह भारतीय भाषिक परम्परा, अभिव्यक्ति–कौशल तथा काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझने में भी सहायक सिद्ध होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि संस्कृत गद्य केवल विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं, प्रभावपूर्ण संप्रेषण एवं कलात्मक अभिव्यक्ति का भी उत्कृष्ट माध्यम है।

प्रस्तुत शोधपत्र में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान–पद्धति का उपयोग करते हुए दोनों साहित्यकारों की प्रमुख रचनाओं बाणभट्ट की कादम्बरी एवं हर्षचरित तथा दण्डी की दशकुमारचरित एवं काव्यादर्श का अध्ययन किया जाएगा। इनके आधार पर भाषा, शैली, अलंकार, कथाविन्यास, वर्णन–कौशल तथा साहित्यिक अभिप्राय का सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि दोनों साहित्यकारों की शैली में विद्यमान समानताएँ एवं भिन्नताएँ संस्कृत गद्य साहित्य के विकास में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुई हैं। प्रस्तुत शोधपत्र बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनके साहित्यिक अवदान का सम्यक् मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन स्पष्ट करेगा कि बाणभट्ट ने संस्कृत गद्य को अलंकारिक वैभव, चित्रात्मकता एवं भावात्मक गहराई प्रदान की, जब कि दण्डी ने उसे संतुलन, प्रसादगुण, कथात्मक रोचकता एवं शैलीगत परिष्कार से समृद्ध किया। दोनों साहित्यकारों ने संस्कृत गद्य साहित्य को समृद्ध, परिपक्व एवं कालजयी स्वरूप प्रदान किया, जिसके कारण उनका साहित्य आज भी शोध एवं अध्ययन की दृष्टि से समान रूप से प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद बना हुआ है।

महाकवि बाणभट्ट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व–

संस्कृत गद्य–साहित्य के इतिहास में महाकवि बाणभट्ट का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं विशिष्ट है। वे सम्राट हर्षवर्धन के राजकवि थे तथा सातवीं शताब्दी ईस्वी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली गद्यकारों में उनकी गणना की जाती है। बाणभट्ट का जन्म एक विद्वान् ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम चित्रभानु था। बाल्यावस्था में ही मातृ–वियोग तथा युवावस्था में पितृ–वियोग के कारण उन्हें अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, किन्तु उनकी असाधारण प्रतिभा, अध्ययनशीलता तथा साहित्य–साधना ने उन्हें संस्कृत साहित्य के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया। सम्राट हर्षवर्धन के संरक्षण में उन्हें अपनी साहित्यिक प्रतिभा को विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत गद्य साहित्य को अमूल्य कृतियाँ प्राप्त हुईं। महाकवि बाणभट्ट की प्रमुख रचनाएँ हर्षचरित तथा कादम्बरी हैं। हर्षचरित संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक गद्यकाव्य माना जाता है, जिसमें सम्राट हर्षवर्धन के जीवन, उनके शासन तथा तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभावशाली वर्णन मिलता है। दूसरी ओर कादम्बरी संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ गद्य–उपन्यास मानी जाती है, जिसमें प्रेम, प्रकृति, संस्कृति, दर्शन तथा मानवीय संवेदनाओं का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कादम्बरी को बाणभट्ट के निधन के पश्चात् उनके पुत्र भूषणभट्ट ने पूर्ण किया।

बाणभट्ट की साहित्यिक प्रतिभा का सर्वाधिक प्रभाव उनकी गद्य–शैली में दिखाई देता है। उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, संस्कृतनिष्ठ, अलंकार–समृद्ध तथा दीर्घ समास युक्त है। उन्होंने अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा उपमा जैसे अलंकारों का अत्यन्त कलात्मक प्रयोग किया है। प्रकृति–वर्णन, ऋतु–वर्णन, नगर–वर्णन, नारी–सौन्दर्य तथा राजवैभव का उनका चित्रण इतना सजीव है कि पाठक के सामने सम्पूर्ण दृश्य साकार हो उठता है। इसी कारण उन्हें संस्कृत साहित्य का अनुपम शब्द–शिल्पी कहा जाता है।

बाणभट्ट का कृतित्व केवल साहित्यिक सौन्दर्य तक सीमित नहीं है। उनकी रचनाएँ तत्कालीन भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, राजनीति तथा कला का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना,उसे समाज, संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। संस्कृत गद्य के विकास में उनका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः महाकवि बाणभट्ट ने अपनी अद्वितीय शैली, कल्पनाशक्ति तथा भाषिक कौशल के माध्यम से संस्कृत गद्य–साहित्य को अमरता प्रदान की और उत्तरवर्ती गद्यकारों के लिए एक उच्च आदर्श स्थापित किया।

महाकवि दण्डी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व–

संस्कृत साहित्य के महान आचार्यों में महाकवि दण्डी का नाम अत्यन्त सम्मान एवं आदर के साथ लिया जाता है। वे संस्कृत गद्य–साहित्य तथा काव्यशास्त्र के ऐसे विशिष्ट विद्वान् थे, जिन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा के माध्यम से साहित्य के दोनों क्षेत्रों में अमूल्य योगदान दिया। विद्वानों के अनुसार उनका समय सातवीं/आठवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है। उनके जीवन–वृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री सीमित है, तथापि उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि वे वेद, व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन तथा भारतीय संस्कृति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी विद्वत्ता, भाषिक क्षमता तथा साहित्यिक दृष्टि ने उन्हें संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ गद्यकारों एवं आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया।

महाकवि दण्डी की प्रमुख रचनाएँ दशकुमारचरित तथा काव्यादर्श हैं। दशकुमारचरित संस्कृत गद्य–साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय एवं कलात्मक रचना है। इसमें दस राजकुमारों के साहस, बुद्धिमत्ता, नीति, प्रेम तथा जीवन–संघर्ष से सम्बन्धित रोचक कथाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ केवल मनोरंजक आख्यान नहीं है, तत्कालीन समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, व्यापार, शिक्षा, धर्म तथा सांस्कृतिक जीवन का भी यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। दण्डी ने कथावस्तु को रोचक बनाए रखते हुए भाषा की सरलता, प्रवाह तथा शैलीगत संतुलन को बनाए रखा है। दण्डी का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ काव्यादर्श संस्कृत काव्यशास्त्र का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। इसमें उन्होंने काव्य के स्वरूप, गुण, दोष, रीति, अलंकार तथा काव्य–सौन्दर्य के विविध पक्षों का अत्यन्त व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक विवेचन किया है। विशेष रूप से वैदर्भी एवं गौड़ी रीतियों का उनका विश्लेषण संस्कृत काव्यशास्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह ग्रन्थ केवल सिद्धान्त–ग्रन्थ ही नहीं, दण्डी की साहित्यिक दृष्टि, शैलीबोध तथा सौन्दर्य–चिन्तन का भी परिचायक है।

दण्डी की गद्य–शैली का प्रमुख गुण उसकी सहजता, प्रवाहशीलता एवं प्रसादगुण है। उनकी भाषा परिष्कृत होते हुए भी अत्यधिक क्लिष्ट नहीं है। वे अलंकारों का प्रयोग संयमपूर्वक करते हैं, जिससे कथानक की स्वाभाविक गति बाधित नहीं होती। उनके गद्य में लघु एवं मध्यम समासों का प्रयोग, सुसंगठित वाक्य–विन्यास, प्रभावशाली संवाद तथा सजीव वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी शैली में कलात्मकता एवं संप्रेषणीयता का उत्कृष्ट समन्वय दिखाई देता है। महाकवि दण्डी का साहित्यिक अवदान संस्कृत गद्य एवं काव्यशास्त्र दोनों के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने साहित्य को केवल अलंकारिक प्रदर्शन का माध्यम न मानकर जीवन, समाज एवं संस्कृति की अभिव्यक्ति का प्रभावी साधन बनाया। उनकी रचनाओं में साहित्यिक गरिमा, व्यावहारिक दृष्टि तथा कलात्मक संतुलन का अद्भुत समन्वय मिलता है। इसी कारण दण्डी का स्थान संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ गद्यकारों एवं काव्यशास्त्रियों में अत्यन्त उच्च माना जाता है। उनकी शैली ने उत्तरवर्ती संस्कृत गद्य–साहित्य को गहराई से प्रभावित किया और भारतीय साहित्यिक परम्परा को स्थायी समृद्धि प्रदान की।

बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का स्वरूप–

संस्कृत साहित्य में गद्य–शैली का विकास अनेक चरणों से होकर गुजरा है, किन्तु उसे साहित्यिक उत्कृष्टता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाने का श्रेय महाकवि बाणभट्ट

एवं महाकवि दण्डी को प्राप्त है। दोनों साहित्यकारों ने अपनी–अपनी मौलिक प्रतिभा, भाषिक दक्षता तथा कलात्मक दृष्टि के माध्यम से संस्कृत गद्य को नवीन स्वरूप प्रदान किया। यद्यपि दोनों का साहित्यिक उद्देश्य, अभिव्यक्ति–पद्धति एवं शैलीगत प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं, तथापि दोनों की रचनाएँ संस्कृत गद्य साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। उनकी गद्य–शैली का स्वरूप भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा, भाषिक सौष्ठव तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

महाकवि बाणभट्ट की गद्य–शैली का प्रमुख आधार उसकी चित्रात्मकता, अलंकारिकता एवं वर्णन–वैभव है। उनके गद्य में दीर्घसमासों का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। वे किसी भी दृश्य, पात्र अथवा घटना का अत्यन्त सूक्ष्म, विस्तृत एवं कलात्मक वर्णन करते हैं। उनके शब्द–चयन में ऐसी कलात्मक शक्ति विद्यमान है कि पाठक के सामने सम्पूर्ण दृश्य सजीव रूप में उपस्थित हो जाता है। कादम्बरी तथा हर्षचरित में प्रकृति, ऋतु, नगर, राजसभा, वन, पर्वत, नदियाँ तथा मानवीय भावनाओं का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं काव्यमय रूप में मिलता है। उनकी शैली में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक तथा उपमा जैसे अलंकारों का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। इसलिए उनकी शैली को अलंकारिक गद्य का सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है।

बाणभट्ट की शैली में केवल भाषिक वैभव ही नहीं, बल्कि भावात्मक गहराई भी विद्यमान है। उनके वर्णनों में प्रकृति एवं मानव–जीवन का अत्यन्त सूक्ष्म सम्बन्ध स्थापित होता है। पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थिति, प्रेम, करुणा, आश्चर्य तथा विरह जैसे भावों का अत्यन्त प्रभावपूर्ण चित्रण मिलता है। यही कारण है कि उनका गद्य केवल वर्णनात्मक न होकर संवेदनात्मक एवं सौन्दर्यपरक बन जाता है। उनकी शैली में गौड़ी रीति की ओजस्विता तथा अलंकारिक सम्पन्नता का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसके विपरीत महाकवि दण्डी की गद्य–शैली प्रसादगुण, सरलता, संतुलन एवं कथात्मक प्रवाह के लिए प्रसिद्ध है। दशकुमारचरित में उनकी भाषा अत्यन्त स्वाभाविक, सुबोध एवं प्रभावशाली है। वे कथानक की गति को बनाए रखते हुए अलंकारों का संयमित प्रयोग करते हैं। उनके यहाँ शब्दाडम्बर की अपेक्षा कथ्य की स्पष्टता तथा अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता को अधिक महत्त्व दिया गया है। यही कारण है कि उनका गद्य सहज रूप से पाठक तक पहुँचता है और कथा की रोचकता निरन्तर बनी रहती है।दण्डी की शैली का एक अन्य महत्त्वपूर्ण गुण उसका संतुलित वाक्य–विन्यास है। वे अपेक्षाकृत छोटे एवं मध्यम समासों का प्रयोग करते हैं, जिससे भाषा में प्रवाह बना रहता है। संवाद, प्रसंग–विन्यास तथा घटनाओं का क्रम अत्यन्त स्वाभाविक है। उनके गद्य में विनोद, व्यंग्य, नीति तथा व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का सुन्दर समन्वय मिलता है। काव्यादर्श में प्रतिपादित उनके काव्य–सिद्धान्त उनकी साहित्यिक दृष्टि एवं शैलीगत परिपक्वता को भी स्पष्ट करते हैं। वैदर्भी रीति के गुण माधुर्य, प्रसाद एवं सरलता उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।यद्यपि बाणभट्ट एवं दण्डी की शैलीगत प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं, तथापि दोनों का उद्देश्य संस्कृत गद्य को प्रभावशाली, कलात्मक एवं साहित्यिक गरिमा से युक्त बनाना था। बाणभट्ट ने भाषा को सौन्दर्य एवं भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जब कि दण्डी ने उसे संप्रेषण, कथात्मक प्रभाव तथा साहित्यिक संतुलन का साधन बनाया। दोनों की शैली भारतीय काव्यशास्त्र की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है तथा संस्कृत गद्य की विकास–यात्रा को पूर्णता प्रदान करती है। बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का स्वरूप संस्कृत साहित्य की दो विशिष्ट अभिव्यक्ति–परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करता है। एक ओर बाणभट्ट की शैली अलंकारिक वैभव, चित्रात्मकता एवं भाव–समृद्धि की प्रतीक है, तो दूसरी ओर दण्डी की शैली सरलता, प्रसादगुण, कथात्मक प्रवाह एवं संतुलित अभिव्यक्ति की परिचायक है। इन दोनों शैलियों ने मिलकर संस्कृत गद्य साहित्य को समृद्ध, परिष्कृत एवं कालजयी स्वरूप प्रदान किया, जिसके कारण उनका साहित्य आज भी शैलीविज्ञान एवं संस्कृत साहित्य के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण आधार बना हुआ है।

बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली का तुलनात्मक अध्ययन–

महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी संस्कृत गद्य–साहित्य के दो ऐसे युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से संस्कृत गद्य को अभूतपूर्व ऊँचाई प्रदान की। दोनों की रचनाएँ साहित्यिक उत्कृष्टता की दृष्टि से समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति–पद्धति, भाषा, वर्णन–शैली, अलंकार–

योजना तथा कथात्मक संरचना में पर्याप्त भिन्नताएँ भी परिलक्षित होती हैं। यही कारण है कि इन दोनों की गद्य–शैली का तुलनात्मक अध्ययन संस्कृत शैलीविज्ञान एवं काव्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

सर्वप्रथम भाषा की दृष्टि से दोनों साहित्यकारों में उल्लेखनीय अन्तर दिखाई देता है। बाणभट्ट की भाषा अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ, दीर्घसमासयुक्त एवं अलंकार–प्रधान है। वे एक ही वाक्य में अनेक समासों एवं विशेषणों का प्रयोग करके दृश्य को अत्यन्त विस्तृत एवं प्रभावशाली बना देते हैं। उनके गद्य में शब्दों का चयन अत्यन्त कलात्मक एवं सौन्दर्यपरक है। इसके विपरीत दण्डी की भाषा अपेक्षाकृत सरल, संतुलित एवं सुबोध है। वे भाषा की गरिमा को बनाए रखते हुए कथानक की गति को बाधित नहीं होने देते। उनकी अभिव्यक्ति सहज एवं संप्रेषणीय होने के कारण पाठक पर तत्काल प्रभाव डालती है।वाक्य–विन्यास की दृष्टि से भी दोनों की शैली में स्पष्ट अन्तर विद्यमान है। बाणभट्ट के वाक्य अपेक्षाकृत दीर्घ, जटिल तथा बहुसमासयुक्त हैं, जिनमें अनेक उपवाक्य एवं विशेषणों का प्रयोग मिलता है। इससे उनका गद्य अत्यन्त प्रभावशाली तो बनता है, किन्तु कभी–कभी उसका अध्ययन विद्वानों के लिए भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत दण्डी छोटे एवं संतुलित वाक्यों का प्रयोग करते हैं। उनकी वाक्य–रचना स्वाभाविक, स्पष्ट तथा क्रमबद्ध है, जिससे कथानक का प्रवाह निरन्तर बना रहता है।वर्णन–कौशल की दृष्टि से बाणभट्ट का स्थान अद्वितीय है। कादंबरी एवं हर्षचरित में प्रकृति, ऋतु, वन, राजसभा, नगर, नारी–सौन्दर्य तथा सामाजिक जीवन का अत्यन्त विस्तृत एवं चित्रात्मक वर्णन मिलता है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म दृश्य को भी सौन्दर्यपूर्ण शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह पाठक के मानस में चित्र के समान अंकित हो जाता है। दूसरी ओर दण्डी वर्णन की अपेक्षा कथा की गति एवं घटनाओं के विकास पर अधिक ध्यान देते हैं। दशकुमारचरित में उनका उद्देश्य घटनाओं को रोचक, गतिशील एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना है। इसलिए उनके यहाँ वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।अलंकार–प्रयोग की दृष्टि से बाणभट्ट अधिक समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण दिखाई देते हैं। उनके गद्य में अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा तथा यमक जैसे अलंकारों का विपुल प्रयोग मिलता है। ये अलंकार केवल भाषा की शोभा नहीं बढ़ाते, भावों की तीव्रता एवं दृश्यात्मकता को भी सशक्त बनाते हैं। इसके विपरीत दण्डी अलंकारों का प्रयोग संयम एवं औचित्य के साथ करते हैं। उनकी दृष्टि में अलंकार का उद्देश्य कथ्य को प्रभावी बनाना है, न कि भाषा को अनावश्यक रूप से जटिल बनाना। यही कारण है कि उनकी शैली में अलंकार एवं कथावस्तु का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।

कथानक–विन्यास की दृष्टि से भी दोनों की प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं। बाणभट्ट का कथानक अनेक प्रसंगों, वर्णनों एवं भावात्मक विस्तारों से युक्त है। वे कथा के साथ–साथ सांस्कृतिक, प्राकृतिक एवं दार्शनिक प्रसंगों को भी पर्याप्त स्थान देते हैं। इसके विपरीत दण्डी का कथानक अधिक संगठित, गतिशील एवं घटनाप्रधान है। वे कथा को अनावश्यक विस्तार से बचाते हुए रोचकता एवं कौतूहल बनाए रखते हैं। इस प्रकार दण्डी की शैली कथा–कला की दृष्टि से अधिक व्यावहारिक प्रतीत होती है।दोनों साहित्यकारों की शैली में सांस्कृतिक चेतना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाणभट्ट ने तत्कालीन भारतीय समाज, राजवैभव, धर्म, शिक्षा, कला एवं प्रकृति का अत्यन्त समृद्ध चित्र प्रस्तुत किया है। वहीं दण्डी ने समाज, राजनीति, नीति, व्यापार, नगर–जीवन एवं मानवीय व्यवहार का यथार्थ एवं व्यावहारिक चित्रण किया है। इस प्रकार दोनों की रचनाएँ अपने–अपने समय की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की विश्वसनीय अभिव्यक्ति हैं। यद्यपि दोनों साहित्यकारों की शैली में पर्याप्त भिन्नताएँ हैं, तथापि कुछ महत्त्वपूर्ण समानताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं, दोनों ने गद्य को साहित्यिक गरिमा प्रदान की, दोनों की रचनाओं में भारतीय संस्कृति एवं जीवन–मूल्यों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है तथा दोनों ने भाषा को केवल संप्रेषण का माध्यम न मानकर कलात्मक अभिव्यक्ति का साधन बनाया। दोनों की शैली में मौलिकता, साहित्यिक परिपक्वता तथा सौन्दर्यबोध का उत्कृष्ट समन्वय विद्यमान है।अतएव तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बाणभट्ट एवं दण्डी संस्कृत गद्य–साहित्य की दो भिन्न किन्तु समान रूप से महत्त्वपूर्ण साहित्यिक धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। बाणभट्ट की शैली अलंकारिक वैभव, भावात्मक विस्तार एवं चित्रात्मक वर्णन की प्रतीक है, जब कि दण्डी की शैली

संतुलित भाषा, प्रसादगुण, कथात्मक गति एवं व्यावहारिक अभिव्यक्ति की परिचायक है। दोनों की साहित्यिक साधना ने संस्कृत गद्य को समृद्ध, परिष्कृत एवं कालजयी स्वरूप प्रदान किया तथा भारतीय साहित्यिक परम्परा को अमूल्य योगदान दिया। यही कारण है कि आज भी दोनों साहित्यकारों की गद्य–शैली शैलीविज्ञान, काव्यशास्त्र तथा संस्कृत साहित्य के शोध–अध्ययन का प्रमुख विषय बनी हुई है।

भाषा एवं अलंकार–योजना–

महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी की साहित्यिक प्रतिभा का सर्वाधिक प्रभाव उनकी भाषा एवं अलंकार–योजना में परिलक्षित होता है। संस्कृत गद्य–साहित्य में इन दोनों साहित्यकारों ने भाषा को केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम न मानकर उसे कलात्मक सौन्दर्य एवं साहित्यिक प्रभाव का सशक्त उपकरण बनाया है। यद्यपि दोनों की शैली में पर्याप्त भिन्नता है, तथापि भाषा की शुद्धता, व्याकरणिक परिपक्वता तथा साहित्यिक गरिमा दोनों की समान विशेषताएँ हैं।महाकवि बाणभट्ट की भाषा अत्यन्त परिष्कृत, संस्कृतनिष्ठ तथा अलंकार–प्रधान है। उनकी गद्य–शैली में दीर्घसमासों का व्यापक प्रयोग मिलता है, जिससे भाषा में ओज, गाम्भीर्य एवं कलात्मक वैभव का समावेश होता है। कादम्बरी एवं हर्षचरित में उन्होंने अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक तथा अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों का अत्यन्त प्रभावशाली एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है। उनके अलंकार केवल शब्द–चमत्कार उत्पन्न नहीं करते,भावों की अभिव्यक्ति को अधिक सशक्त एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। विशेष रूप से प्रकृति, ऋतु, नारी–सौन्दर्य एवं राजवैभव के वर्णनों में उनकी अलंकार–योजना अत्यन्त समृद्ध दिखाई देती है।

इसके विपरीत महाकवि दण्डी की भाषा अपेक्षाकृत सरल, संतुलित तथा प्रसादगुण से युक्त है। उनकी शैली में समासों का प्रयोग नियंत्रित एवं आवश्यकतानुसार किया गया है। दशकुमारचरित में प्रयुक्त भाषा कथानक के अनुरूप स्वाभाविक, स्पष्ट एवं प्रवाहपूर्ण है। दण्डी ने भी उपमा, रूपक, अनुप्रास तथा अर्थालंकारों का प्रभावशाली प्रयोग किया है, किन्तु उन्होंने अलंकारों को कथावस्तु पर हावी नहीं होने दिया। उनके लिए भाषा का प्रमुख उद्देश्य भाव एवं विचार का सहज संप्रेषण है। यही कारण है कि उनकी शैली में साहित्यिक गरिमा एवं सरलता का उत्कृष्ट संतुलन दिखाई देता है। अलंकार–योजना की दृष्टि से दोनों साहित्यकार भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। बाणभट्ट अलंकार–वैभव के माध्यम से पाठक को सौन्दर्यानुभूति प्रदान करते हैं, जब कि दण्डी औचित्यपूर्ण अलंकार–प्रयोग द्वारा भाषा की प्रभावशीलता को बढ़ाते हैं। दोनों की रचनाओं में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का समुचित प्रयोग मिलता है, किन्तु उनकी प्रवृत्ति एवं प्रयोजन में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। बाणभट्ट का उद्देश्य कलात्मक चमत्कार एवं भावात्मक विस्तार है, जब कि दण्डी का उद्देश्य संप्रेषणीयता एवं कथात्मक प्रभाव को सुदृढ़ करना है। भाषा एवं अलंकार–योजना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बाणभट्ट एवं दण्डी संस्कृत गद्य–साहित्य की दो भिन्न शैलीगत परम्पराओं के प्रतिनिधि हैं। बाणभट्ट की भाषा अलंकारिक वैभव एवं कल्पनाशीलता की प्रतीक है, जब कि दण्डी की भाषा सरलता, संतुलन एवं प्रसादगुण की परिचायक है। दोनों साहित्यकारों ने अपनी–अपनी शैली के माध्यम से संस्कृत गद्य को साहित्यिक उत्कृष्टता के उच्चतम स्तर तक पहुँचाया और भारतीय साहित्यिक परम्परा को स्थायी समृद्धि प्रदान की।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोधपत्र **'बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली : एक समीक्षात्मक अध्ययन'** के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि महाकवि बाणभट्ट एवं महाकवि दण्डी संस्कृत गद्य–साहित्य के दो ऐसे महान रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी विशिष्ट साहित्यिक प्रतिभा, भाषिक दक्षता एवं शैलीगत मौलिकता के माध्यम से संस्कृत गद्य को उत्कृष्टता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाया। दोनों साहित्यकारों की गद्य–शैली में यद्यपि पर्याप्त भिन्नताएँ दिखाई देती हैं, तथापि संस्कृत गद्य के विकास, परिष्कार एवं साहित्यिक प्रतिष्ठा में दोनों का योगदान समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि बाणभट्ट की गद्य–शैली अलंकारिक वैभव, दीर्घसमास, चित्रात्मक वर्णन, भावात्मक गहनता तथा शब्द–सौष्ठव से युक्त है। उनकी कादंबरी एवं हर्षचरित केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं हैं,तत्कालीन भारतीय समाज, संस्कृति, कला एवं राजकीय जीवन का सजीव दस्तावेज भी हैं। उन्होंने भाषा को सौन्दर्य–सृष्टि का माध्यम बनाकर संस्कृत गद्य को काव्यमय गरिमा प्रदान की। दूसरी ओर महाकवि दण्डी ने

दशकुमारचरित एवं काव्यादर्श के माध्यम से सरल, प्रवाहपूर्ण, संतुलित एवं प्रसादगुणयुक्त गद्य–शैली का आदर्श स्थापित किया। उनकी रचनाओं में कथात्मक कौशल, भाषिक स्पष्टता तथा साहित्यिक अनुशासन का अद्भुत समन्वय मिलता है। दोनों साहित्यकारों की शैली उनके साहित्यिक उद्देश्य एवं व्यक्तित्व के अनुरूप विकसित हुई है। बाणभट्ट का लक्ष्य सौन्दर्य, भाव एवं वर्णन की कलात्मक अभिव्यक्ति है, जब कि दण्डी का उद्देश्य कथानक की प्रभावशीलता, भाषा की संप्रेषणीयता एवं शैली का संतुलन है। दोनों ने भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का सफल निर्वाह करते हुए संस्कृत गद्य को समृद्ध एवं प्रभावशाली बनाया। उनकी रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि गद्य भी पद्य के समान कलात्मक, रसपूर्ण एवं सौन्दर्य सम्पन्न हो सकता है। बाणभट्ट एवं दण्डी की गद्य–शैली संस्कृत साहित्य की दो विशिष्ट एवं पूरक परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करती है। एक ओर बाणभट्ट की शैली कल्पना, अलंकार एवं वर्णन–कौशल की चरम अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर दण्डी की शैली सरलता, संतुलन एवं व्यावहारिक अभिव्यक्ति का आदर्श प्रस्तुत करती है। इन दोनों महान गद्यकारों का साहित्य भारतीय साहित्यिक परम्परा की अमूल्य धरोहर है तथा आज भी शैली विज्ञान, संस्कृत गद्य एवं काव्यशास्त्र के अध्ययन के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ है। प्रस्तुत शोध से यह स्थापित होता है कि संस्कृत गद्य के विकास में बाणभट्ट एवं दण्डी का योगदान अविस्मरणीय, अनुकरणीय एवं शाश्वत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कृष्णमूर्ति, के. बाणभट्ट, नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2017, बाण की शैली सम्बन्धी विवेचन : पृष्ठ – 74।
2. काणे, पाण्डुरंग वामन, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1971।
3. झा, गंगानाथ,संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2012।
4. शास्त्री, चन्द्रधर, संस्कृत गद्य साहित्य का इतिहास, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2016।
5. पाठक, सूर्यकान्त, संस्कृत गद्यकाव्य : स्वरूप और विकास, नई दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 2015।
6. पाण्डेय, रमाशंकर, संस्कृत साहित्य में गद्य परम्परा, प्रयागराज : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2018।
7. तिवारी, हरिदत्त, संस्कृत काव्यशास्त्र एवं शैली विज्ञान, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, 2019।
8. शर्मा, ब्रह्मानन्द, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स, 2017।
9. मिश्र, राधावल्लभ, भारतीय काव्यशास्त्र : सिद्धान्त और समीक्षा, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2020।
10. दीक्षित, कैलाशचन्द्र,संस्कृत गद्य का विकास, दिल्ली : भारतीय विद्या प्रकाशन, 2014।
11. चतुर्वेदी, सीताराम, संस्कृत साहित्य का अनुशीलन,वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन, 2013।

◈◈

विज्ञापन एवं निवेदन

रिसर्च जर्नल में विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रबन्ध सम्पादक के पते पर सम्पर्क करें। **'अभिनव गवेषणा'** (मल्टी डिस्प्लनरी क्वाटरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) आप सभी की एक? स्ववित्त पोषित पत्रिका है, अतः पत्रिकी के? लिए किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। ? कृपया अपनी सहयोग राशि चेक, ड्राप्ट अथवा आर टी जी एस के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें। - सम्पादक? - **'अभिनव गवेषणा'**
के-444, 'शिवराम कृ?पा' विश्व बैंक बर्रा,
कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत)

प्रबन्धन एवं सम्पादन

'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिस्प्लनरी क्वाटरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) में अपने शोध पत्रों की प्रकीशित करीने हेतु नियमित स्थान प्रदान करीने के लिए कृपिया फुलि स्केपि कीगज पर टाइप किया हुआ अथवा मेल किया हुआ शोध लेख अपनी स्वीकीरोक्ति? के? साथ भेजें। ? भेजने की पता - सेक्टर के - 444, 'शिवराम कृ?पा' विश्व बैंक बर्रा - कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश, भारत) मोबाइल नं0 8896244776, 9335597658 **E-mail super.prakashan@gamil.com** पर सम्पर्क करें। मिलने का समय- सप्ताह में 6 दिन 10.00 से 6.00 (रविवार अवकाश)।

ISSN : 2394-4366

Received: 18 Jan., 2026, **Accepted:** 28 Feb., 2026, **Published:** April-June, 2026, Issue

महाकवि कालिदास प्रणीत 'रघुवंशमहाकाव्यम्' में निहित मानवीय मूल्यों का समीक्षात्मक अध्ययन

– ज्योति
शोध छात्रा – संस्कृत विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फर्रुखाबाद–209621 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
jyotisrajawat@gmail.com

शोध निर्देशिका –
प्रो. (डॉ.) सुनन्दा त्रिवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
मेजर एस. डी. सिंह विश्वविद्यालय,
फर्रुखाबाद–209621 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
sunandatrivedi01@gmail.com

शोध सारांश (Abstract)

संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान सूर्य, कविकुलगुरु महाकवि कालिदास की रचनाएँ भारतीय संस्कृति, दर्शन और जीवन मूल्यों का विश्वकोष हैं। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंशम्' इक्ष्वाकु (सूर्य) वंश के प्रतापी राजाओं के चरित्र–चित्रण के माध्यम से मानव जीवन के सर्वोच्च आदर्शों की स्थापना करता है। प्रस्तुत शोध पत्र 'रघुवंश महाकाव्य' में निहित मानवीय मूल्यों– जैसे आदर्श राजधर्म, कर्तव्यनिष्ठा, गुरु–भक्ति, सर्वस्व त्याग, विनम्रता, पारिवारिक आदर्श, और पुरुषार्थ–चतुष्टय का श्लोकों के प्रमाण सहित समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में जहाँ भौतिकवाद, स्वार्थपरता और नैतिक पतन का बोलबाला है, वहाँ रघुवंश के राजाओं का जीवन सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक शाश्वत दिशा–निर्देशिका का कार्य करता है। यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि कालिदास का काव्य केवल कलात्मक सौंदर्य का परिचायक नहीं है, अपितु एक स्वस्थ, नैतिक और मूल्यनिष्ठ समाज के निर्माण का सशक्त माध्यम भी है।

मुख्य शब्द (Keywords)– महाकवि कालिदास, रघुवंश महाकाव्य, मानवीय मूल्य, राजधर्म, पुरुषार्थ चतुष्टय, श्लोक–प्रमाण, भारतीय संस्कृति, इक्ष्वाकु वंश, नैतिकता, समसामयिक प्रासंगिकता।

1. प्रस्तावना (Introduction) –

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, अपितु उसका मार्गदर्शक भी होता है। उत्कृष्ट साहित्य वह है जो युगीन सीमाओं को लांघकर शाश्वत मानवीय मूल्यों की स्थापना करे। श्मानवीय मूल्यश वे नैतिक और सामाजिक मानदंड हैं जो मनुष्य को पशुत्व से देवत्व की ओर ले जाते हैं– जैसे सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, परोपकार, कर्तव्यनिष्ठा और त्याग।

संस्कृत साहित्य के शिरोमणि महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'रघुवंशम्' उन्नीस सर्गों का एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें सूर्यवंशी राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक 31 राजाओं के चरित्र का विषद वर्णन है। महाकवि कालिदास ने महाकाव्य के प्रारम्भ में ही इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के चारित्रिक मूल्यों की पवित्रता को उद्घोषित करते हुए लिखा है–

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।

आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्? (रघुवंश, 1.5)

(अर्थात् मैं जन्म से ही पवित्र, कार्य के प्रारम्भ से लेकर फल प्राप्ति तक कर्म में लगे रहने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करने वाले और स्वर्ग तक रथों की गति वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन कर रहा हूँ।)

यहाँ 'आजन्मशुद्ध' होना और कर्म के प्रति प्रतिबद्धता मनुष्य के सबसे प्राथमिक मानवीय मूल्य हैं।

2. रघुवंश महाकाव्य में मानवीय मूल्यों का स्वरूप (Nature of Human Values)–

कालिदास ने राजाओं की वंशावली के माध्यम से यह दर्शाया है कि सत्ता, सम्पत्ति और शक्ति का उपयोग मानवीय कल्याण के लिए कैसे किया जाना चाहिए। रघुवंश में निहित प्रमुख मानवीय मूल्यों की समीक्षा अगरलिखित बिंदुओं के आलोक में की जा सकती है–

2.1. आदर्श राजधर्म एवं लोककल्याण (Ideal Kingship and Public Welfare)

रघुवंश के राजाओं का सर्वोपरि मूल्य उनका 'राजधर्म' है। कालिदास के अनुसार, राजा का पद भोग–विलास के लिए नहीं, अपितु प्रजा की सेवा के लिए है। राजा दिलीप के शासन का वर्णन करते हुए कालिदास बताते हैं कि शासक को प्रजा से कर (Ta*) केवल उनके ही कल्याण के लिए लेना चाहिए–

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। (रघुवंश, 1.18)

(अर्थात् राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिए ही उनसे कर लेते थे, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य पृथ्वी से जल ग्रहण करता है ताकि उसे सहस्र गुना करके वर्षा के रूप में लौटा सके।)

एक अन्य श्लोक में कालिदास ने शासक और प्रजा के मध्य पिता–पुत्र के सम्बन्ध रूपी मूल्य को स्थापित किया है। वास्तविक पिता वह नहीं जो केवल जन्म दे, बल्कि वह है जो भरण–पोषण और सुरक्षा करे–

प्रजानां विनयाद्धानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।(रघुवंश,1.24)

(अर्थात् प्रजा को सुसंस्कार (शिक्षा) देने, उनकी रक्षा करने और भरण–पोषण करने के कारण राजा दिलीप ही उनके सच्चे पिता थे, उनके सगे पिता तो केवल जन्म देने के कारण थे।)

यह लोककल्याणकारी राज्य (Welfare State) का सर्वोच्च मानवीय मूल्य है।

2.2. सद्गुणों का समन्वय और विनम्रता (Humility and Balance of Virtues)–

ज्ञानी होने पर भी अहंकार न करना एक महान मानवीय मूल्य है। कालिदास राजा दिलीप के चरित्र के माध्यम से ज्ञान, शक्ति और दान के साथ विनम्रता के समन्वय का अद्भुत श्लोक प्रस्तुत करते हैं–

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।(रघुवंश, 1.22)

(अर्थात् राजा दिलीप में ज्ञान होने पर भी मौन रहने का गुण था, शक्ति होने पर भी क्षमा करने का स्वभाव था और दान देने पर भी अपनी प्रशंसा स्वयं न करने का गुण था। इस प्रकार परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले गुण भी उनमें सगे भाइयों की तरह एक साथ रहते थे।)

आधुनिक युग में जहाँ तनिक भी शक्ति या धन आते ही मनुष्य में अहंकार आ जाता है, यह श्लोक एक महान नैतिक शिक्षा देता है।

2.3. सर्वस्व त्याग, दानशीलता और सत्यनिष्ठा (Sacrifice] Philanthropy and Truth)–

भारतीय संस्कृति में संचय को नहीं, अपितु त्याग को महत्त्व दिया गया है। रघुवंशी राजाओं के जीवन के चार मूल स्तम्भ थे– दान, सत्य, यश और परिवार। कालिदास लिखते हैं–

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।(रघुवंश,1.7)

(अर्थात् वे रघुवंशी राजा दान देने के लिए ही धन का संग्रह करते थे, सत्य बोलने के लिए ही कम बोलते थे (मितभाषी थे), केवल यश के लिए विजय की इच्छा करते थे और श्रेष्ठ संतान प्राप्ति के लिए ही गृहस्थ जीवन अपनाते थे।)

महाराज रघु का चरित्र दानशीलता का चरमोत्कर्ष है, जिन्होंने 'विश्वजित' यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर दिया था। धन का संचय समाज के कल्याण के लिए ही होना चाहिए, यह रघुवंश का केन्द्रीय मूल्य है।

2.4. गुरु–भक्ति एवं सेवा भाव (Devotion to Guru and Service)–

रघुवंश गुरु–भक्ति का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। चक्रवर्ती सम्राट दिलीप, संतान प्राप्ति की कामना से अपने गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। वहाँ वे एक साधारण सेवक की भांति गुरु की गाय 'नंदिनी' की सेवा करते हैं। उनका यह सेवा–भाव किसी विवशता के कारण नहीं, बल्कि पूर्ण श्रद्धा के साथ था–

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां,
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।

जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव,

तां भूपतिरन्वगच्छत्।। (रघुवंश, 2.6)

(अर्थात् जब नंदिनी गाय खड़ी होती, तो राजा दिलीप खड़े हो जाते, जब वह चलती तो वे भी चलने लगतेय जब वह बैठती तो वे बैठ जाते और जब वह जल पीती तो राजा भी जल पीते थे। इस प्रकार राजा दिलीप ने एक छाया के समान उस गाय का अनुसरण किया।)

एक चक्रवर्ती सम्राट द्वारा गुरु की सम्पत्ति (गाय) की इस प्रकार सेवा करना अहंकार–शून्यता और अटूट गुरु–भक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

2.5. क्षत्रिय धर्म एवं शरणागत की रक्षा (Duty to Protect the Weak)–

जब नंदिनी गाय पर सिंह आक्रमण करता है, तो दिलीप गाय के प्राण बचाने के लिए अपने स्वयं के प्राणों की आहुति देने को तत्पर हो जाते हैं। सिंह उन्हें समझाता है कि एक गाय के लिए अपना जीवन नष्ट करना मूर्खता है, तब राजा दिलीप जो उत्तर देते हैं, वह कर्तव्यनिष्ठा और रक्षण के मानवीय मूल्य का स्वर्ण–सूत्र है–

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः,

क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।

राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः,

प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा।।(रघुवंश, 2.53)

(अर्थात् 'क्षत' (नाश या पीड़ा) से जो रक्षा करे, वही 'क्षत्रिय' है– यह शब्द संसार में प्रसिद्ध है। यदि मैं इस गाय की रक्षा नहीं कर सकता, तो उस क्षत्रिय धर्म के विपरीत आचरण करने पर मुझे इस राज्य से क्या प्रयोजन? और अपयश से मलिन हुए इन प्राणों को धारण करने से भी क्या लाभ?)

कमजोर और शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर कर देना रघुवंश का एक अतुलनीय मानवीय आदर्श है।

2.6. पारिवारिक आदर्श एवं नारी–सम्मान (Family Values and Respect for Women)–

रघुवंश में पारिवारिक सम्बन्धों और दाम्पत्य जीवन की पवित्रता को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उकेरा गया है। अपनी पत्नी इन्दुमती की मृत्यु पर राजा अज का विलाप केवल एक राजा का दुख नहीं, बल्कि एक सच्चे प्रेमी और पतिकी पीड़ा है। कालिदास ने अज के मुख से पत्नी के बहुआयामी महत्त्व को इस श्लोक में व्यक्त किया है–

गृहिणी सचिवः सखी मिथः,

प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।

करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां,

वद किं न मे हृतम् ।। (रघुवंश, 8.67)

(अर्थात् हे इन्दुमती! तुम मेरी गृहिणी थीं, परामर्श देने वाली मंत्री थीं, एकान्त की सखी थीं और ललित कलाओं (गीत–संगीत आदि) में मेरी प्रिय शिष्या थीं। निर्दयी मृत्यु ने तुम्हें छीनकर मेरा क्या–क्या नहीं छीन लिया?)

यह श्लोक भारतीय समाज में नारी के प्रति असीम सम्मान और दाम्पत्य जीवन में उसकी मित्र, मार्गदर्शक और सहचरी की भूमिका रूपी मानवीय मूल्य को स्थापित करता है।

2.7. कर्त्तव्य के सम्मुख सुखों का त्याग और समभाव (Equanimity and Duty Over Crown)–

रघुवंश में श्रीराम का चरित्र 'समभाव' (Equanimity) का सर्वोत्तम उदाहरण है। राज्याभिषेक की सूचना मिलने पर राम जितने प्रसन्न थे, वनवास की आज्ञा मिलने पर भी उनके मुख पर कोई विषाद नहीं था। कालिदास ने इस महान मनोवैज्ञानिक और मानवीय मूल्य को इस श्लोक में पिरोया है–

दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले।

ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।।(रघुवंश,12.8)

(अर्थात् राज्याभिषेक के समय मांगलिक रेशमी वस्त्र धारण करते हुए, और फिर वनवास जाते समय वल्कल (पेड़ों की छाल के) वस्त्र पहनते हुए– दोनों ही स्थितियों में लोगों ने श्रीराम के मुखमण्डल की कांति को आश्चर्यजनक रूप से एक समान (निर्विकार) देखा।)

सुख और दुःख में समान रहना (स्थितप्रज्ञता), गीता के इस निष्काम कर्मयोग का साक्षात स्वरूप कालिदास ने रघुवंश में राम के चरित्र में गढ़ा है।

2.8. पुरुषार्थ चतुष्टय का समन्वय (Synthesis of Four Purusharthas)–

भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष –इन चार पुरुषार्थों को मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है। रघुवंशी राजाओं ने इन चारों का संतुलित और समयबद्ध पालन किया। कालिदास ने उनके जीवन–क्रम का वर्णन इस श्लोक में किया है–

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।

वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।(रघुवंश, 1.8)

(अर्थात् इक्ष्वाकु वंश के राजा बचपन में विद्या का अभ्यास करते थे (ब्रह्मचर्य), युवावस्था में सांसारिक सुखों का उपभोग करते थे (गृहस्थ), वृद्धावस्था में मुनियों के समान आचरण करते थे (वानप्रस्थ) और अन्त में योग के द्वारा शरीर का त्याग करते थे (संन्यास)।)

यह जीवन का एक अत्यन्त वैज्ञानिक, संयमित और मूल्य–आधारित विभाजन है, जो मनुष्य को भोग से योग की ओर ले जाता है।

3. नैतिक पतन के दुष्परिणाम (Consequences of Moral Decline)–

कालिदास जहाँ एक ओर दिलीप, रघु और राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राजाओं के माध्यम से सद्‌गुणों की स्थापना करते हैं, वहीं महाकाव्य के अंतिम सर्ग (19वें सर्ग) में राजा अग्निवर्ण के चरित्र के माध्यम से यह चेतावनी भी देते हैं कि मानवीय मूल्यों के त्याग का परिणाम क्या होता है। अग्निवर्ण कामुक, विलासी और राजकाज के प्रति घोर लापरवाह था। इस अत्यधिक भोग–विलास और नैतिक पतन के कारण उसे क्षय (टीबी) रोग हो जाता है और अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। कालिदास स्पष्ट संदेश देते हैं कि वंश चाहे कितना भी महान क्यों न हो, यदि वह चारित्रिक और मानवीय मूल्यों से विमुख हो जाता है, तो उसका पतन अवश्यम्भावी है।

4. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रघुवंश के मूल्यों की प्रासंगिकता (Contemporary Relevance)–

आज इक्कीसवीं सदी में, जब मनुष्य ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति कर ली है, तब भी वह मानसिक शांति और सामाजिक सामंजस्य के लिए तरस रहा है। भ्रष्टाचार, राजनीतिक स्वार्थ, पर्यावरण प्रदूषण, वृद्धों का तिरस्कार और नैतिक मूल्यों का पतन आज की ज्वलंत समस्याएँ हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए 'रघुवंश' के श्लोकों का अध्ययन अत्यन्त प्रासंगिक है–

1. राजनीतिक शुचिता (Political Purity) – आज के शासकों और राजनेताओं को राजा दिलीप ('प्रजानामेव भूत्यर्थं...') से यह सीखना चाहिए कि सत्ता स्वयं के संवर्धन के लिए नहीं, बल्कि जनकल्याण के लिए एक न्यास (Trust) है।

2. धन का सदुपयोग – पूंजीवादी व्यवस्था में केवल धन संचय को ही सफलता माना जाता है। रघुवंश ('त्यागाय सम्भृतार्थानां...') सिखाता है कि धन की सार्थकता परोपकार और दान में है।

3. पारिवारिक विघटन रोकना – संयुक्त परिवारों के टूटने और दाम्पत्य कलह के इस दौर में, अज–इन्दुमती का प्रेम ('गृहिणी सचिवः सखी...') और राम की पितृ–भक्ति युवा पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक प्रकाश–स्तम्भ है।

4. समभाव की आवश्यकता – आधुनिक युग में अवसाद (Depression) और तनाव आम हो गए हैं। श्रीराम का चरित्र ('मुखरागं समं जनाः...') हमें हर परिस्थिति में मानसिक संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देता है।

5. निष्कर्ष (Conclusion)–

महाकवि कालिदास कृत 'रघुवंश महाकाव्य' मात्र एक ऐतिहासिक वंशावली या काव्यात्मक कल्पना नहीं है, अपितु यह मानव जाति के लिए एक आचार–संहिता (Code of Conduct) है। अपने श्लोकों के माध्यम से कालिदास ने अत्यन्त सूक्ष्मता और काव्यात्मक लालित्य के साथ यह सिद्ध किया है कि सत्ता, शक्ति, और ज्ञान तभी तक वंदनीय हैं, जब तक वे धर्म और मानवीय मूल्यों से अनुप्राणित हों।

रघुवंश के पात्रों के माध्यम से त्याग, परोपकार, सत्य, विनय, कर्तव्यनिष्ठा, गुरु–भक्ति और आदर्श दाम्पत्य जीवन के जो चित्र उकेरे गए हैं, वे कालजयी हैं। राजा अग्निवर्ण का पतन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि मूल्यों से रहित जीवन अन्ततः विनाश की ओर ही ले जाता है। संक्षेप में, रघुवंश एक ऐसा महाकाव्य है जो मनुष्य को समग्रता में जीना सिखाता है। अतः आज के मूल्य–विहीन समाज को सही दिशा देने के लिए रघुवंश में निहित इन शाश्वत मानवीय मूल्यों का पठन–पाठन, मनन और आचरण नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ (References)

1. कालिदास कृत रघुवंशम् (संजीवनी टीका, मल्लिनाथ), चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
2. मिराशी, वासुदेव विष्णु, कालिदास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी।
4. त्रिपाठी, राधावल्लभ, कालिदास का साहित्य और दर्शन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

◈◈

ISSN : 2394-4366

शोध पत्र लेखकों को निर्देश

'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरेनशल रेफ्रीड/पियररिव्यूड रिसर्च जर्नल) है, जिसमें सभी उपविषयों के मौलिक शोध पत्र, शोध समीक्षा, विचार एवं लेखों आदि का प्रकाशन किया जाता है। शोधकर्ता हिन्दी, अंग्रेजी अथवा संस्कृत भाषा में अपने शोध पत्र भेज सकते हैं। शोध पत्र भेजते समय कृपया निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें–

◈लेखक अपना शोध पत्र **सर्वेश तिवारी 'राजन'** प्रबन्ध सम्पादक– 'अभिनव गवेषणा', के–444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर–208027 (उ.प्र.) को अथवा **super.prakashan@gmail.com** पर प्रेषित करें।

◈प्राप्त शोध पत्र जर्नल में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोध पत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोध पत्र का कोई भी भाग सम्पादक की अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है।

◈अपने शोध–पत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें– शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, निष्कर्ष एवं पुस्तक सन्दर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु शोधालेख पर विशेष ध्यान दें।

◈**शीर्षक** : शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पद, विषय, संस्था, पता जहाँ पर निवास एवं अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका दूरभाष, मोबाइल, ई–मेल पत्राचार की सुविधा हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें।

◈**सारांश** – सारांश कृपया शोध–पत्र का सारांश अधिकतम 200 शब्दों में दें।

◈**पाण्डुलिपि**– इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी जो 5 से 8 पृष्ठों तक होनी चाहिए। शोध पत्र में 7–8 पृष्ठ का (सारांश, शब्द संक्षेप, निष्कर्ष एवं सन्दर्भ सूची सहित) से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। आलेख प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने, इसका पूरा ख्याल रखा जाता है, फिर भी त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित री–प्रिन्ट प्राप्त कर सकता है।

◈**पुस्तक** – प्रकाशक का नाम, संस्करण, संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पृष्ठ संख्या दें।

◈**पत्रिका** – पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक एवं प्रकाशक का नाम, अंक, संख्या, माह, वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक व मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

◈**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची** – कृपया शोध पत्र में कम से कम 8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची अवश्य दें।

◈**समाचार पत्र**– समाचार पत्र के प्रकाशक, प्रकाशन तिथि, वर्ष व पृष्ठ संख्या का उल्लेख करें।

◈**इण्टरनेट** – वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्तःशीर्षक का उल्लेख करें।

◈**मानचित्र एवं सारणी**– मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोध पत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में अवश्य दें (उदाहरण, सारणी संख्या आदि)।

◈**विशेष**– कृपया अपना शोध पत्र ई–मेल करने के बाद फोन अथवा मोबाइल से अवश्य सूचित करें। शोध पत्र के साथ फोटो, ई–मेल एड्रेस भेजें। शोध पत्र हिन्दी, संस्कृत (कृतिदेव हिन्दी फान्ट 14) एवं अंग्रेजी (टाइम्स 12) में तैयार कर मेल करें। शोध पत्र प्राप्त होने के तुरन्त बाद, उसी दिन लेखक की मेल पर स्वीकृति, कवर, इंडेक्स व पेपर प्रेषित कर दिया जायेगा। **super.prakashan@gmail.com** से प्राप्त शोध पत्र हेतु ई–मेल/व्हाट्सअप से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व प्रबन्ध सम्पादक से मोबाइल/दूरभाष पर सम्पर्क अवश्य कर लें। रिसर्च जर्नल में लेख सम्मिलित करने का सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति का निर्णय ही अन्तिम व सभी को मान्य होगा।

◈**सुझाव** – लेखकों एवं पाठकों को यह अंक कैसा लगा, इस सम्बन्ध में अपने–अपने विचार अवश्य लिखें। इससे मुझे अपनी त्रुटियों को जानने और भावी योजना बनाने में सहायता मिलेगी।

◈**विनम्र निवेदन**– सभी सम्मानित सदस्यों से निवेदन है कि अपने माध्यम से संस्था में अधिकतम सदस्यों को पत्रिका परिवार से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

अभिनव गवेषणा Abhinav GAVESHNA

मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल

Multi Disciplinary Quarterly International Refreed/Peer Reviewed Research Journal

ISSN - 2394-4366

E-mail : super.prakashan@gmail.com

कार्यालय : सेक्टर के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027

सदस्यता फार्म

श्रीमान् सम्पादक महोदय,

'अभिनव गवेषणा'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल)

सेक्टर-के-444, 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 (उ. प्र.) भारत

महोदय / महोदया,

निवेदन है मैं / हमारा महाविद्यालय आपके 'सुपर प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित 'अभिनव गवेषणा' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड/पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल) परिवार का ······· वर्षीय / आजीवन / व्यक्तिगत / संस्थागत सदस्य बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ? मैं / हमारी संस्था 'सुपर प्रकाशन', विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-27 के नाम सदस्यता शुल्क ······················ रुपये नकद / मनीआर्डर / चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट खाता क्रमांक (सुपर प्रकाशन - 52570200000355) IFS Code No. BARB0BUPGBX बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक, शाखा- विश्व बैंक बर्रा (कर्रही) कानपुर-27 के नाम से दे रहा हूँ। ↑ → ZERO

नाम (श्री / श्रीमती) डॉ. : ....

पद का नाम (जहाँ वर्तमान में कार्यरत हैं) : ....

संस्था / निवास का नाम : ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिनकोड सहित) : ....

: ....

फोन / मोबाइल नं. : ....

स्थान व दिनांक : ....

- हस्ताक्षर

प्रबन्ध सम्पादक : सर्वेश तिवारी 'राजन'
मो. : 8896244776

सम्पादक : **डॉ. पंकज कुमार वर्मा**
मो. : 9335715562